भारतीय परम्परा में नारी और मातृत्व के पंचविध रूप

डॉ. हरवंशलाल ओबराय

स्वामी संवित् सुबोधगिरि

डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र

खण्ड 1 : राष्ट्रीय समस्याएं और इतिहास

खण्ड 2 : महापुरुष : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

खण्ड 3 : धर्म-दर्शन-संस्कृति-उत्सव-विज्ञान एवं मनोविज्ञान

खण्ड 4 : वेदान्त दर्शन की वैज्ञानिकता

खण्ड 5 : गीता दर्शन की सार्वभौमिकता

प्रकाशक एवं वितरक :
स्वामी संवित् सुबोधगिरि
श्री नृसिंह भवन
संन्यास आश्रम,
भक्तानन्द शिव मन्दिर
भीनासर 334403
बीकानेर (राजस्थान)
मो. : 09413769139

अन्य पुस्तक प्राप्ति स्थान :

- श्री सुशील कुमार ताम्बी
  प्रज्ञा साधना आध्यात्मिक पुस्तक केन्द्र
  A/3 आर्य नगर
  एन.के. पब्लिक स्कूल के पास
  मुरलीपुरा, जयपुर 302039
  फोन : 0141-2233765 मो. : 09829547773
- **ज्ञान गंगा प्रकाशन**
  पाथेय भवन,
  बी-19, न्यू कॉलोनी, जयपुर
  दूरभाष : 0141-2371563
- **अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना**
  आप्टे भवन, केशव कुंज, झण्डेवाला
  नई दिल्ली 110055
  फोन : 011-23675667
- **हिन्दू राइटर्स फोरम**
  129-बी, डी.डी.ए. फ्लैट्स (एम.आई.जी.)
  राजौरी गार्डन, नई दिल्ली 110027
- **जागृति प्रकाशन**
  श्री कृष्णानन्द सागर
  एफ-109, सेक्टर-27, नोएडा 201301
  फोन : 0120-2538101 मो. : 09871143768

ISBN 978-93-84133-03-0

प्रथम संस्करण : 2014 ई.

प्रतियां : 1100

मूल्य : पचासी रुपये मात्र

आवरण : गौरीशंकर आचार्य

मुद्रक :
सांखला प्रिंटर्स, विनायक शिखर
शिवबाड़ी रोड, बीकानेर 334003

BHARATIYA PARAMPARA ME NARI AUR MATRITVA KE PANCHVIDH RUP (Hindi)
Edited by Swami Samvit Subodhgiri ₹ 85

आशीर्वचन

भारतीय संस्कृति का आधार सनातन धर्म है। सनातन का अर्थ है जो आदि और अन्त रहित है। अतः यह धर्म अनादि काल से चला आ रहा है और अनन्त काल तक रहेगा। इस धर्म को अपनाने वाले को भी यह धर्म 'सनातन' की प्राप्ति करा देता है। ब्रह्म को ही वेदों में सत्य या सनातन कहा है। सनातन धर्म पर आधारित होने के कारण भारतीय संस्कृति भी सनातन संस्कृति है। भारतीय संस्कृति ओंकार-मूलक है। ओंकार ही ब्रह्म है, ओंकार ही आत्मा है, ओंकार ही जगत् है, ओंकार से भिन्न और परे किसी अन्य की सत्ता ही नहीं है। ओंकार से ही सारे वेद प्रकट हुए हैं। वेद अपौरुषेय हैं, अनन्त हैं, सनातन हैं। संस्कृति का विस्तार वेदों में प्रतिपादित कर्मकाण्ड, उपासना-काण्ड और ज्ञानकाण्ड के अनुसार हुआ। संस्कृति के संवाहक ऋषियों ने मानव मात्र के अभ्युदय और निःश्रेयस को प्रदान करने वाले जीवन-दर्शन और जीवन-विज्ञान को सारे विश्व में फैलाया। भारत-भूमि को इस संस्कृति-प्राकट्य और प्रसार के मूल-स्थान होने का गौरव प्राप्त है। इस संस्कृति-वीणा की दिव्य झंकार तो 14 भुवनों के आरपार होकर वैकुण्ठ, कैलास और मणिपूर व्यापिनी है।

अवतारों की लीलास्थली एवं ऋषियों की तपोभूमि भारत में संस्कृति का प्रवाह कभी अवरुद्ध नहीं हुआ। संकट के समय में जब इसका बाह्य रूप प्रक्षीण हुआ तब भी यह अन्तःपयस्विनी होकर सतत प्रवाहित होती रही।

प्रस्तुत ग्रंथ में संस्कृति की इस अमरता और इसके वैश्विक रूप का सम्यक् दर्शन होता है। प्रखर मनीषी और उद्‌भट विद्वान् प्रो. हरवंशलाल ओबराय एक चल-विश्वविद्यालय व चल-पुस्तकालय होने के साथ-साथ ब्रह्मविद्या के श्रेष्ठ विद्यार्थी भी थे। एक स्थान पर स्थिर होकर लेखन कार्य में संलग्न रहना उनके स्वभाव में नहीं था। उन्होंने स्वयं लिखने से अधिक लिखवाया और उससे भी अधिक प्रवचनों में अभिव्यक्त किया। उनके द्वारा अभिव्यक्त बहुमूल्य सामग्री को स्वामी श्री सुबोधगिरिजी ने वर्षों तक संभाल कर रखा। संन्यास के पूर्व वे अनेक वर्षों तक प्रो. ओबराय के शिष्य बन कर रहे। उन्होंने सत्-शिष्य बन कर प्रो. ओबराय की सेवा की, उपासना की और उनसे अध्यात्म, धर्म, संस्कृति, इतिहास आदि अनेक विषयों का प्रामाणिक एवं दुर्लभ ज्ञान प्राप्त किया। प्रो. ओबराय ने अपनी प्रखर प्रतिभा, अनुसंधानात्मक वृत्ति तथा संश्लेषक व विश्लेषक प्रज्ञा द्वारा भारतीय संस्कृति के अनेक अज्ञात पक्षों का पता लगाया था। उनकी बहुत कुछ सामग्री तो उनके पश्चात् बचाई नहीं जा सकी। किन्तु सुबोधगिरिजी ने अपने पास की सामग्री को तथा कई अन्य स्रोतों से भी उनकी रचनाओं को एकत्र करके उन्हें लोक कल्याण के लिये प्रकाशित करने के संकल्प को जीवित रखा। प्रभुकृपा से अब उनका संकल्प पूर्ण होने जा रहा है। यह प्रकाशन प्रो. ओबराय के प्रति उनकी सच्ची श्रद्धांजलि है। प्रभु से प्रार्थना है कि वे निरन्तर ज्ञानार्जन करते हुए ब्रह्मविद्या के आलोक को प्राप्त करें।

—परम पूज्य गुरुदेव स्वामी संवित् सोमगिरि

आओ! शिष्य बनें

भारत विश्वगुरु था। इसकी परा-अपरा विद्या को प्राप्त करने धरती के कोने-कोने से जिज्ञासु-मुमुक्षु इस पुण्य-भूमि में शिष्य-भाव से आते थे। इसी भूमि से ज्ञान-दीप ले त्यागी-तपस्वी-विद्वान् साधक, आचार्य विदेशों में जाते और ज्ञान-प्रकाश से वहाँ की संस्कृति के अँधियारे को दूर करते थे। इन ज्ञान-वितरकों के प्रेरक ऋषि थे, आत्मज्ञान ही इनका बल था, प्रभुप्रेम ही इनकी गति थी।

कालान्तर में भीषण युद्ध हुए—गृहयुद्ध भी व बाह्य आक्रमण भी। फलतः भारत की क्षात्र-शक्ति निर्बल हुई, बुद्धि-शक्ति अरक्षित हुई, अर्थ-तन्त्र ध्वस्त हुआ, लोक-जीवन दमित व अस्त-व्यस्त हुआ। ऐसे जर्जरित राष्ट्र का परतन्त्र होना स्वाभाविक था। भारत का स्थूल कलेवर पराजित हुआ था, मन व आत्मा नहीं। इसके स्थूल कलेवर में भी स्वातन्त्र्य-रक्त अल्पांश में प्रवाहित होता रहा था। सत्संग-स्वाध्याय, पर्व-परिवार, तीर्थ-तीर्थाटन आदि सांस्कृतिक संस्थानों द्वारा यह भारतीय संस्कृति प्राणन करती रही, मरी नहीं। किन्तु भीषण अत्याचारों के कारण इसका आत्मगीत दिशा-दिशा में मुखरित नहीं हुआ। कुछेक विभूतियों ने आविर्भूत होकर इसके आत्म-दर्शन का उद्घोष किया, किन्तु उसका संचार इसके सर्वांग में न हो सका। दीर्घ परतन्त्रता के पश्चात् प्राप्त तथाकथित स्वतन्त्रता भी दिखावे की सिद्ध हुई। इसकी आत्मा अभी भी मुक्त साँसों के लिये छटपटाती है। इसके पूत अभी भी याचक हैं, उच्छिष्टभोजी हैं, अन्धानुकरण में रत हैं। इस आन्तरिक परतन्त्रता से मुक्त होना ही होगा, क्योंकि इस संस्कृति का स्वधर्म ही आत्मोन्मुखी है, ईश्वरोन्मुखी है। इसके स्वभाव में चारों वर्णों का सामरस्य है। अपने स्वभाव की विरुद्ध दिशा में बहना इसके लिये भयावह है। किन्तु यह अपनी स्वदिशा में गतिमान कैसे हो? कैसे यह अपने विश्वगुरु पद को प्राप्त करे?

यह संस्कृति अपने गौरवपूर्ण पद को प्राप्त कर सके—इसके लिये प्रत्येक भारतीय को अपने स्वधर्म को पहचानना होगा। उसको लेकर उसे अपनी संस्कृति से एक लय में रहते हुए स्वकर्म करना होगा। उस स्वकर्म से उसे जगद्गुरु की शिष्यभाव से अर्चना करनी होगी। यों शिष्यभाव की अनगिन धाराएँ मिल कर एक प्रबल पवित्र प्रवाह बनेगा और तब फिर यह संस्कृति विश्वगुरु रूपिणी गंगा होगी, सृष्टि-मूल के गोमुख को पूर्णानन्द उदधि से जोड़ने वाली, मानव मात्र को तारने वाली भागीरथी होगी।

आओ! शिष्य बनें।

स्वात्म-संस्कृति के उन्नयन के लिये भगीरथ-प्रयास करें।

—परम पूज्य गुरुदेव स्वामी संवित् सोमगिरिजी महाराज

सम्पादकीय

भारतीय परम्परा में नारी का क्या स्थान है, उसको जानने के लिये सृष्टि के मूल में जाना होगा। काल के पार भी जाना होगा जहां गहरा सन्नाटा था, गहन मौन था, कुछ नहीं था, न शब्द, न स्पर्श, न रूप, न रस, न गंध। त्रिगुण सामरस्य की अवस्था में था। प्रकृति भी, महामाया भी ब्रह्म में लीन अवस्था में थी। महाप्रलय की अवस्था जब एक निर्गुण-निराकार ब्रह्म की ही सत्ता थी। फिर जब उसमें 'एकोऽहम बहुश्याम' का संकल्प उठता है, तब ब्रह्म अपनी शक्ति का स्मरण करता है और अपने आपको दो रूपों में पति-पत्नी के रूप में, शिव-शक्ति के रूप में ईश्वर और माया के रूप में विभक्त हो जाता है।

मम योनिर्महद्ब्रह्म, तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्।
सम्भवः सर्वभूतानां, ततो भवति भारत।। गीता-14/3

सर्वयोनिषु कौन्तेय, मूर्तयः सम्भवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रद पिता।। गीता-14/4

हे भारत! महद्ब्रह्म (त्रिगुणात्मक प्रकृति) मेरी योनि है, उसी में सृष्टि के लिये संकल्प रूप गर्भाधान करता हूं। उससे सब भूतों की उत्पति होती है। सारी सृष्टि में शिव-शक्ति का स्पन्दन चल रहा है, सृष्टि के कण-कण के अन्दर, जर्रे-जर्रे के अन्दर शिव-शक्ति स्पन्दित होती रहती है। इस प्रकार सारा जीव और जगत ईश्वर से प्रकट हुआ। अतः हम सब ईश्वर की संतान हैं। क्योंकि यही प्रतिकृति मानव में प्रकट होती है। मानव उसका अंकन करे, मूल्यांकन करे, उसी गर्भाधान का स्मरण करे, जब ईश्वर ने स्वयं अपनी प्रकृति में गर्भाधान किया था, उसमें प्रतिबिम्बित हुआ था। उसी का अनुगमन करने, अनुसरण करने के लिये हमको मानव जीवन प्राप्त हुआ है। इसलिये हम किसी गलत कार्य का परिणाम नहीं है। हम किसी बलात्कार का परिणाम नहीं है। हम एक पवित्र संकल्प को लेकर, अग्नि को साक्षी बनाकर, एक आघान को लेकर एक यज्ञ की प्रक्रिया के द्वारा हम धरती पर प्रसूत हुए हैं, हम भारतीय हैं, हम हिन्दू हैं।

सारी सृष्टि में शिव-शक्ति का स्पन्दन चल रहा है। ऐसा कोई भी पुरुष नहीं है जिसके अन्दर स्त्री न हो, ऐसी कोई भी स्त्री नहीं है जिसके अन्दर पुरुष न हो।

इसलिये अर्धनारीश्वर की कल्पना है। क्योंकि आत्मा के अन्दर न पुरुषत्व है और न स्त्रीत्व है। नर-नारी का जो भेद है वह आत्मगत न होकर शरीरगत है बुद्धि और भाव के स्तर पर है। आत्मा के अन्दर यह पुरुषत्व और स्त्रीत्व एक अध्यास के रूप में, एक कल्पना के रूप में, एक उपाधि के रूप में प्रकट होता है।

हमारी परम्परा में स्त्री और पुरुष यह दो व्यष्टि के रूप में, दो Individual के रूप में कभी सोचे नहीं गये। समाज की अवधारणा में परिवार एक लघुतम इकाई रहा है। जिसमें स्त्री और पुरुष, अर्धनारीश्वर की कल्पना हमारे यहां रही है। नारी और पुरुष अलग नहीं है, बल्कि एक समष्टि है, एक Unity है। एक इकाई है और वह इकाई समाज की सबसे छोटी इकाई है, जहाँ से सारी व्यवस्था शुरू होती है।

स्त्री और पुरुष को अलग समझने की जो बात आयी है, वह सेमिटिक परम्परा से, पश्चिम से। गॉड ने पुरुष (मैन) को अपनी ही 'इमेज' में बनाया। मैन का अकेले मन नहीं लगा। मन नहीं लगने की शिकायत God से की। God ने मैन को सुलाकर उसकी एक पसली निकाली और उसमें प्राण फूंक दिये। इस प्रकार ईसाइयत के अनुसार God ने 'मैन' की एक पसली खींचकर उसी से 'वूमैन' बनायी। वूमैन मैन के मन बहलाव के लिये बनायी बाद की रचना है। मैन के भीतर से एक उपांग के रूप में निकाली गयी, इसीलिए उसे 'वूमैन' कहा गया। 'वूमैन' यानी जो 'मैन' नहीं है, उसका केवल अंग है। उसमें आत्मा नहीं है। उसमें केवल साधारण मन और भावना होती है। ये मैन-वूमैन दोनों ज्ञान रहित थे। दोनों ही नंगे थे और उन्हें नंगेपन का बोध नहीं था। ईडन के बगीचे में सब कुछ खाने की छूट थी। केवल एक सेव का पेड़ जो ज्ञान का पेड़ है उसके फल को खाने की मनाही थी। शैतान सांप के रूप में आया और उसने ज्ञान के वृक्ष के फल को खाने के लिये उकसाया और हौवा उसके बहकावे में आ गयी, सेव को तोड़कर स्वयं खायी और फिर आदम को खाने दिया। खाते ही दोनों को नंगेपन का बोध हुआ। स्त्री-पुरुष के भेद का बोध हुआ। नंगे होने के कारण लज्जा आयी और वृक्ष की ओट में छिप गये और अपने गुप्तांगों को पत्ते से ढंक लिया। God को नहीं दिखने पर जब उन्हें पुकारा तो उन्होंने कहा हम यहां हैं। हमें लज्जा आ रही है, तब God ने समझ लिया। ज्ञान के वृक्ष के फल को खा लिया—तब उन्हें स्वर्ग से च्युत कर दिया और कहा अब सब परिश्रम से उपार्जित करना पड़ेगा, यहां सब सहज सुलभ था, और चूंकि हौवा शैतान के बहकावे में आयी इसलिये उसे प्रसव पीड़ा भोगने का शाप मिला।

ज्ञान के वृक्ष का फल खाने के बाद उन्हें अलगपने का बोध हुआ नहीं तो उसके पूर्व अबोधावस्था में थे, एक बालपन था, इस प्रकार ईसाइयत में ज्ञानी होना एक बड़ा अपराध है। और चूंकि वूमैन बाद की रचना है, पुरुष के मन बहलाव के लिये है, उसमें आत्मा नहीं है, उससे जैसी चाहे सेवा ली जा सकती है, और

मनमाने आरोप लगाकर उसे क्रूरतम ढंग से प्रताड़ित किया जा सकता है, दण्डित किया जा सकता है। यही कारण है कि यूरोप में कैथोलिकों एवं प्रोटैंस्टैंन्टों ने पांच शताब्दियों तक 90 लाख निर्दोष, सदाचारिणी, भावमयी श्रेष्ठ स्त्रियों को डायन और चुडैल घोषित कर जिन्दा जलाया, खौलते हुए कड़ाह में उबाला, पानी में डुबोकर मारा, बीच से जिन्दा चीरा, घोड़े की पूंछ से बंधवा कर सड़कों, गलियों में इस प्रकार दौड़ाया कि बंधी हुई स्त्री लहूलुहान होकर दम तोड़ दे। स्त्रियों को आंख के अलावा सारे देह को ढककर रखना पड़ता था।

ईसाइयत में काम शैतान है, पाप है, अपराध है। ईसाइयत में मातृत्व को बड़ी हेय दृष्टि से देखा गया है। वहां के साहित्यकारों ने मां को बड़ी-बड़ी गालियां दी हैं, तुम ही मुझे पाप के संसार में लाने वाली हो। वहां मां-पुत्र का सम्बन्ध पावन नहीं है। वहां विवाह भी न्यूनतम अपराध है। विवाह के पश्चात पति-पत्नी के समागम पर बड़े कड़े विधि निषेध थे चर्च के द्वारा। निर्बन्ध भोग का अधिकार केवल पादरियों को है। ईसाई धर्म में काम को अपराध समझकर उसे दबाने का, कठोर दमन का प्रयास किया गया है। वहां पुरुषों को यह सोचना सिखाया गया है, काम सम्बन्ध मानो दुष्कर्म है दुष्ट कर्म हो, अनिष्टकारी या विपत्तिदायक कर्म हो, ईविल है। अतः वे (अन्तर्मन में) स्त्री से डरते हैं एवं घृणा करते हैं, क्योंकि वही तो उस पुरुष को खतरनाक काम वासना के दलदल में घसीट ले जाती है, अतः यूरोप और अमरीका का ईसाई समाज काम सम्बन्धों के प्रति घृणा एवं भय से आक्रान्त है। मध्ययुग में यूरोप में एक बहुत बड़ा ईसाई सम्प्रदाय था। जिसने लाखों लोगों की जननेन्द्रियां कटवा डाली, स्त्रियों के स्तन कटवा डाले ताकि कामवासना से मुक्ति हो जाए। बहुतों ने आंखें फोड़ ली ताकि कोई सौन्दर्य उन्हें आकर्षित न कर सके, शरीर को कोड़े मारे, लहू बहाया ताकि शरीर कोई मांग न करे, रात-रात सोये नहीं ताकि सपना मन को काम विकार में न डाले। काम को पाप, शैतान, अपराध मानने का यह स्वाभाविक परिणाम था। ब्रिटेन में 19वीं शताब्दी तक अंग्रेज डाक्टर, पूरे अंग्रेजी समाज की सहमति से अंग्रेज लड़कियों का अंगभंग इस उद्देश्य से करते थे कि वे अतिशय काम सुख का स्वतः उपभोग न कर सकें। विक्टोरियन समाज में यह मान्यता पूर्ण प्रतिष्ठित थी कि काम भाव अशुभ है, दुष्टतापूर्ण है, ईविल है। अतः वह समाज अविवाहित कन्याओं के बर्बर अंगच्छेदन को उचित ठहराता था। फ्रायड धर्म के नाम पर ईसाइयत के ऐसे ही सन्तों से परिचित था। और उसमें यह धारणा पैठ गयी कि धर्म कामदमन सिखाता है। इसलिए भी वह धर्म विरोधी हो गया और धर्म को एक पागलपन, एक अंधविश्वास समझने लगा था जो विज्ञान के प्रकाश में स्वतः लुप्त हो जायगा।

इन त्रुटिपूर्ण अवधारणाओं एवं अत्याचारों एवं बंधनों से रक्षा के लिये पश्चिम में नारी आन्दोलन चला। परिणाम स्वरूप आज यूरोपीय स्त्रियों का ईसाई धारणाओं

और विश्वासों से कोई वास्ता नहीं है। यद्यपि अन्तर्धारा के रूप में शताब्दियों का प्रभाव अभी भी विद्यमान है। पर नारी मुक्ति, नारी जागरण के पश्चात् भी वहाँ नारी Sex symbol के रूप में ही देखी जाती है। उसके अतिरिक्त नारी का एक प्रतिशत भी कहीं कोई उपयोग नहीं है वहां की सभ्यता में। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त नारी एक Sex होती है, उसकी एक Sexual importance होती है और जैसे ही उसका क्षरण होने लगता है उसकी महत्ता घटती जाती है और एक समय महत्त्वहीन, शून्य हो जाती है। इसलिये जीवन भर यह प्रयास किया जाता है कि उसका Sex किसी तरह जीवित रहे। वह किसी तरह से उसके हिसाब से फिट बनी रहे तब तो वह महत्त्वपूर्ण है अन्यथा वह महत्त्वहीन हो जायेगी। वहां नारी का अन्य कोई भी उपयोग नहीं है। इसलिये वहां अपनी माता को छोड़कर बाकी सबको भावी पत्नी के रूप में देखा जाता है, पश्चिम के मनोवैज्ञानिक काम सम्बन्ध को उतना ही सहज, स्वभाविक मानते है, जितना प्यास लगने पर पानी पीना, भूख लगने पर भोजन करना, वैसे ही कामेच्छा होने पर किसी भी स्त्री या कन्या के साथ संग करना। इसमें कोई अपराध बोध की आवश्यकता नहीं है। इसलिये कुमारी कन्या का माता बन जाना, विवाह के पूर्व के सम्बन्ध विवाह के पश्चात के सम्बन्ध अपराध नहीं, मान्य है। परस्त्री गमन वहाँ अपराध नहीं है, सरल स्वभाविक क्रिया है। स्त्री के दो पक्ष हैं—एक कामिनी रूप और एक मातृत्व। पश्चिम में स्त्री केवल कामिनी है। भारत में इसके विपरीत है, अपनी पत्नी को छोड़कर सबको माता, दादी, नानी, मामी, मौसी, चाची, ताई, बहिन, पुत्र, भतीजी, भानजी, बंगाल में जन्मती बच्ची को मां पत्नी को वो मां के रूप में देखा जाता है तथा वर्ष में दो बार नवरात्रि के अवसर पर दस वर्ष तक की कुमारी कन्याओं का मां जगदम्बा का प्रतिरूप मानकर पूजा जाता है, यहां कामिनी रूप एक प्रयोजन विशेष के लिये कुछ काल तक है, पर वह माता तो अनन्त काल के लिये है, पत्नी तो वह एक की होती है, माता तो सबकी बन सकती है। पश्चिम में स्त्री का कामिनी रूप प्रमुख होने से वहां नारी को अमुक की wife कहकर पुकारा जाता है। भारत में मातृत्व की प्रमुखता होने से अमुक की माता कहकर पुकारा जाता है।

आज हम देखते हैं, पश्चिमी देशों में नारी Sex symbol है उसको कहीं भी हटाने की चेष्टा नहीं की गयी है क्योंकि वहां वह भोगवादी संस्कृति का एक हिस्सा है अतः उसको हटाया भी नहीं जा सकता। लेकिन उसके साथ-साथ यह चेतना जगी है कि नारी स्वातंत्र्य का क्या तात्पर्य है? तो नारी स्वातंत्र्य का तात्पर्य उसकी अर्थोपार्जन की शक्ति स्वतंत्र रूप से रहे, वह अर्थ का केन्द्र स्वतंत्र रूप से रहे, उसकी सारी की सारी शक्ति समाज केन्द्रित या परिवार केन्द्रित नहीं है, उसकी सारी की सारी चेतना, सारा का सारा सोच अर्थ केन्द्रित है। उसी के अनुकरण पर अपने देश में भी चाहने लगे हैं नारी आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बने।

सेमिटिक परम्परा और भौतिकवादी चिन्तन धारा के दो रूप हैं, व्यक्तिवादी चिन्तन धारा और समाजवादी चिन्तनधारा—इन तीनों के यहां प्रकृति को जगन् माता के रूप में न देखकर प्रतिद्वन्द्वी शत्रु के रूप में देखा है जो अपने भोगों को, वैभव को छिपाये रखती है, अतः उससे भोगों को छीनकर लेना पड़ता है, उसकी बाँह मरोड़कर, उस पर विजय प्राप्त करके ही भोगों और ऐश्वर्य को लेना पड़ता है। अतः प्रकृति हमारी भोगदासी है। इस दृष्टि ने जीव सृष्टि, मानव सृष्टि जिन आधारों पर खड़ी है, उन सबको प्रदूषित कर दिया है। पृथ्वी, अन्न, जल, वायु और आकाश हमारे जीवन का आधार है। रासायनिक खाद एवं कीटनाशक औषधियों के अत्यधिक प्रयोग से धरती बेहोश, बंजर और विषाक्त होती जा रही है, जल भी प्रदूषित, जहरीला और जल का स्तर नीचे जाता जा रहा है, वायु प्रदूषित, आकाश की ओजोन परत में छिद्र होने पर घातक विकिरण पृथ्वी पर आ रहे हैं। आज मानव ने अपने अस्तित्व पर ही संकट खड़ा कर लिया है। क्या यह उस मूर्ख की तरह नहीं है जो जिस डाल पर बैठा है उसी डाल को काटने में अपनी शेखी बघार रहा हो।

आज वहां व्यक्तिवादी जीवन दर्शन ने, भोगवादी जीवन दर्शन ने स्त्री और पुरुष दोनों को अर्थ और काम का दास बना दिया। आज वहां के जीवन की धुरी परिवार नहीं व्यक्ति है। व्यक्तिगत सुख, व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर इतना बल दिया गया कि परिवार जीवन ध्वस्त होता जा रहा है, समाज जीवन ध्वस्त होता जा रहा है, आज वहां के बच्चे मातृ-पितृ स्नेह, संस्कार, शिक्षा से वंचित, अपराध और नशे के शिकार हो रहे हैं, उनका सही ढंग से निर्माण न होने से जहां भी जायेंगे वहां अशांति, घृणा, द्वेष ही फैलायेंगे, आज वहां की जवानी चंचल है किसी भी समय तलाक में बदल जाती है, अब तो तलाक की भी आवश्यकता नहीं, बिना विवाह के जब तक मन मिले साथ रहें, फिर अलग हो जायं। वहां का बुढ़ापा सम्मानहीन, Old house में व्यतीत होने के लिये बाध्य है। इस प्रकार पश्चिम का मानव भीड़ रूपान्तरित होकर वहां वह अपने-आपको अकेला पाता है, न वह किसी का है और न कोई उसका है। इस प्रकार परिवार जीवन, समाज जीवन समाप्त होकर एक भीड़ में रूपान्तरित होता जा रहा है। तो जिस सभ्यता का बचपन स्नेह रहित बोझ तुल्य है, बुढ़ापा सम्मान रहित Old house में कटता है, जवानी अति चंचल कच्चे धागे से बंधी है, वह सभ्यता विकास की ओर नहीं सर्वनाश की ओर जा रही है, और वहां के चिंतक मनीषिवृन्द इससे चिन्तित हैं और उनकी दृष्टि भारत की ओर है।

मार्गरेट थैचर इंग्लैण्ड की प्रधानमंत्री। जब वे प्रधानमंत्री पद से मुक्त हुई तब एक भारतीय परिवार में एक सप्ताह रही। उसने कहा कि आने वाले समय में इंग्लैण्ड के समाज को अगर बचना है तो जितनी जल्दी हो सके भारतीय पारिवारिक मूल्यों को ग्रहण करने का प्रयत्न करना चाहिए। अमेरिका जैसे समृद्ध देशों में प्रवासी

भारतीयों के पारिवारिक जीवन के स्थायित्व और उनके बच्चों के पालन-पोषण व संस्कारों को देखकर वहां के समाजशास्त्री चमत्कृत हो गये। उन्होंने देखा कि अमेरिकी स्त्री-पुरुष केवल अपने सुख के लिये, अपनी वासनाओं की तृप्ति के लिए जीते हैं तो भारतीय दम्पती अपनी अगली पीढ़ी के विकास और सुख के लिये। वे उनको ऊंची से ऊंची शिक्षा दिलाने के लिये धन बचाते हैं। वे बार-बार तलाक देकर नये यौन सम्बन्धों की खोज में नहीं भटकते। वे अपने पारिवारिक जीवन में सुख और सन्तोष का अनुभव करते हैं। इसलिये भारतीय पारिवारिक जीवन उनके लिये अनुकरणीय बन गया है। अब वहां लोक संस्कार हेतु कभी 'परिवार वर्ष' कभी 'शिशु वर्ष' मनाया जा रहा है। पश्चिम के नारी मुक्ति आंदोलन का स्वर भी बदल रहा है। अब वहां की नारी स्वयं को 'भोग्या' और 'देह प्रलोभन' की वस्तु से ऊपर उठकर पारिवारिक जीवन में स्थायित्व और सुरक्षा के लिये सोचने लगी है।

भारत में स्त्री-पुरुष न एक-दूसरे से अलग है, न स्वतंत्र है और न एक-दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी हैं, न प्रतिस्पर्धी हैं, वरन् दोनों मिलकर एक इकाई बनते हैं, दोनों एक-दूसरे के परिपूरक हैं, एक-दूसरे पर अवलम्बित, निर्भर हैं। दोनों अपने-आप में अपूर्ण-अर्धाङ्ग हैं। दोनों मिलकर ही पूर्णाङ्ग बनते हैं इसलिये अर्धनारीश्वर की कल्पना है।

भारतीय संस्कृति के अनुसार परिवार को इकाई मानकर ही व्यक्ति-समाज एवं राष्ट्र का विकास हो सकता है। पश्चिमी संस्कृति की तरह व्यक्ति को इकाई मानने से न व्यक्ति का समुचित विकास हो सकता है, तब परिवार, समाज एवं राष्ट्र का विकास कैसे सम्भव होगा? भारतीय परम्परा में निरन्तरता और स्थायित्व का आधार परिवार है। फलस्वरूप भारतीय जीवन-पद्धति में परिवार अर्थात् गृहस्थाश्रम का सर्वोच्च महत्त्व है। जब हम परिवार का विचार करते हैं, तब मातृत्व के महत्त्व को समझना पड़ेगा। युवतियों को मातृत्व की उचित शिक्षा से विभूषित करना होगा। मातृत्व की उपेक्षा या अवमानना करके सामाजिक पुनर्रचना की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

भारतीय परम्परा में स्त्री-पुरुष की समानता का प्रश्न ही नहीं उठता। साधु टी.एल. वासवानी कहते हैं, नारी और पुरुष की बराबरी तो तब होगी, जब वे तराजू के भिन्न-भिन्न पलड़ों पर खड़े हों। तराजू के एक ही पलड़े पर चढ़ने से बराबरी कैसे होगी? कहने का तात्पर्य है, दोनों की अपनी-अपनी भूमिका है। कुछ क्षेत्र ऐसे हैं, जहां पुरुष की भूमिका प्रभावी है और कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जहां नारी की भूमिका प्रभावी है। दोनों अपनी-अपनी भूमिका निभाने से ही स्वस्थ व्यक्ति और समाज का निर्माण होता है। जीवन में दृढ़ता, साहस, अनुशासन, जोखिम उठाने का भाव, कठोरता का भाव पुरुष वर्ग से चाहे वह पिता के रूप में हो या भ्राता, पुत्र, मित्र आदि रूप में और जीवन में मधुरता, सरसता, सहजता, स्नेह, दया, माया, प्रेम,

करुणा, अहिंसा मातृवर्ग से चाहे वह मां हो या दादी, नानी, बहिन, पुत्री आदि। जिसके बहिन-बेटी नहीं होती उसके जीवन में शुष्कता-रूखापन आ जाता है।

भारतीय परम्परा में शरीर के रचना भेद (जिसमें मन, भाव और बुद्धि भी आ जाते हैं) के अनुसार दोनों के कार्यक्षेत्रों का बंटवारा है। स्त्री घर की सम्राज्ञी है। और बाहर का सम्राट पुरुष है। घर में पति या पुरुष वर्ग अतिथि है, बाहर में मातृवर्ग अतिथि है। घर में मातृ वर्ग सेवा देवें और बाहर पुरुष वर्ग।

सृजन के क्षेत्र में माता का स्थान ज्यादा प्रभावी है। ऐसे सृजन तो दोनों मिलकर करते हैं, पर इसमें माता की भूमिका प्रमुख है। रावण और कुम्भकर्ण दोनों के पिता तो विश्रवा मुनि हैं पर दोनों पर प्रभाव माता कैकसी का पड़ता है। प्रह्लाद के पिता तो हिरण्यकशिपु हैं पर प्रभाव माता कयाधु का पड़ता है। पह्लाद जब माता कयाधु के पेट में था, तभी से वह हरिभक्त बन जाता है। धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर के पिता तो वेदव्यासजी हैं पर उन पर प्रभाव अपनी-अपनी माताओं का पड़ता है। माता के भाव का प्रभाव ही मुख्य रूप से संतानों पर पड़ता है। फिर नौ माह मां की कोख में, और प्रसव के बाद मां की गोद में पलता है, अतः मां के ही आचार-विचार, खान-पान, वेश-भूषा का प्रभाव ही प्रभावी होता है। योगिनी मां है संस्कारी मां है विदुषी मां है तो अपने स्तनपान के साथ-साथ लोरी, भजन, गीत सुनाते-सुनाते अपना शील-चरित्र, ज्ञान अपने स्वभाव यानी सब-कुछ पिला देती है। उसकी चेतना को उर्ध्वमुखी बना देती है, दिव्य बना देती है।

सेमिटिक परम्परा में विशेषकर ईसाइयत में सृजन पाप है। काम शैतान है। भारतीय परम्परा में धर्म के अविरुद्ध सृजन स्वयं में ईश्वरीय कृत्य है। हमारे धर्म के विरुद्ध काम दण्डित होता है। धर्म के अनुकूल काम देव है, ईश्वरीय कर्म है। इसलिये भारतीय परम्परा में विवाह संस्कार है, गृहस्थ आश्रम है, ऋतु के अनुकूल काम सेवन गृहस्थ धर्म है। गर्भाधान संस्कार है। गर्भाधान संस्कार को समझने की आवश्यकता है। एक विराट् सत्ता जो अपने आपका अनुभव करना चाहता है। वही अपने आपको जीव, जगत्, ईश्वर के रूप में प्रकट करता है। उस महान् सत्ता को, पुण्यात्मा, दिव्यात्मा को, अनन्त पथ के पथिक को हम आह्वान करते हैं कि हमारे आंगन में आकर शिशु क्रीड़ा, बाल क्रीड़ा करने, किल्लोल करने, किलकारी मारने को आह्वान करते हैं। इसके लिए भाव की शुद्धि चाहिए, स्थान की शुद्धि चाहिए। हम जैसे-तैसे, जहां-तहां नहीं बैठते, उस स्थान को शुद्ध करते हैं, वहां आसन लगाते हैं, तब जाकर बैठते हैं। हम जैसे-तैसे भोजन नहीं करते, उसके लिए अनेक मर्यादाओं का पालन करते हैं। जब छोटी-छोटी बातों में इतनी सतर्कता बरतते हैं तो जीवन की इतनी बड़ी घटना है, जिसमें किसी पुण्यात्मा को बुला रहे हैं तो क्या उसके लिए भाव की शुद्धि, स्थान की शुद्धि नहीं चाहिए क्या? जिस भाव

एवं संकल्प के साथ स्त्री-पुरुष का समागम होता है वैसी ही जीवात्मा आकृष्ट होकर हमारे आंगन में क्रीड़ा करने आती है। अन्यथा कोई असुर आ जावें। माता मदालसा, माता कुन्ती, माता जीजाबाई आदि का उदाहरण हमारे सामने है। अतः हमारे अन्दर शुभ संकल्प, पवित्र संकल्प उदित हो इसके लिए गर्भाधान संस्कार है। गर्भाधान संस्कार के लिए वेद में मंत्र है। मैक्समूलर जिसने सारा जीवन वेदों के भाष्य में लगा दिया, जब यह अंश आया तो उसे अश्लील लगा। इसका अंग्रेजी में अनुवाद करने के स्थान पर लैटिन में अनुवाद किया। ताकि सर्वसाधारण इस स्थल को छोड़ देवें, नहीं तो वेद के नाम से जनता में गलत संदेश जायेगा। चूंकि वह ईसाई परम्परा में पला होने से जहां काम देव नहीं पाप है, शैतान है, विवाह भी न्यूनतम पाप है, अतः इसके महत्त्व को समझ नहीं पाया। हमारे यहां गर्भाधान पुण्य कार्य है, स्त्रीत्व की पूर्णता मातृत्व में है इसलिए हमारे प्रायः सभी देवी-देवता विवाहित हैं। ऋषि-मुनि विवाहित हैं। इसलिए समावर्त्तन संस्कार में गुरु-शिष्य को आदेश देता है प्रजातन्तु का छेदन मत करना। अतः जो धर्म में रहते हुए दाम्पत्य जीवन का सेवन करते हैं उसे हमारे शास्त्र ब्रह्मचर्य ही मानते हैं।

अतः काम हमारे यहां शैतान, पाप एवं अपराध नहीं जैसा कि ईसाइयत स्वीकारती है, इसलिए उनके यहां स्त्री के मातृत्व को बड़ी हेय दृष्टि से देखा गया है। वहां के साहित्यकारों ने मां को बड़ी-बड़ी गालियां दी हैं, तुम मुझे पाप के संसार में लायी हो। हमारे यहां मां-पुत्र का सम्बन्ध सबसे पावन है।

ईसाइयत ने काम को दबाने का प्रयास किया, जिसने उनके समाज में अनेक विकृति और कुण्ठाओं को जन्म दिया। यूरोप के पुरुषों और स्त्रियों का जीवन चर्च ने शताब्दियों तक नरक बना डाला था। और इस्लाम ने काम प्रवृत्ति को बहुत उभारा है, उसको सम्मानित किया है। इस्लाम में स्त्रियों के साथ बुरा व्यवहार इसलिये नहीं होता कि ईसाइयत के सदृश वे गंदी, सेक्सुअल प्राणी मानी जाती हैं। वरन् इसलिये होता है, क्योंकि इस्लाम में तो काम सम्बन्ध अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, वहां स्त्री पुरुष की सम्पत्ति है अतः उस सम्पत्ति का निर्बन्ध भोग उस स्त्री का स्वामी पुरुष ही करने का अधिकारी है। ईसाइयत की तरह इस्लाम भी कन्याओं का अंगच्छेदन करता रहा है, किन्तु इसलिये नहीं कि काम भावना अशुभ है, वरन् इसलिये कि स्त्रियों की काम भावना उनके स्वामी पुरुष की सम्पत्ति है। इस्लाम में जहां मुस्लिम स्त्री को अपने पति की खेती और जायदाद तक कहा गया है, वहां एक ओर तो उसकी सुरक्षा अपनी सम्पत्ति की तरह करने को कहा है ताकि कोई और उस पर अधिकार न कर सके, दूसरी और मुस्लिम पति को उसके मनचाहे भोग का असीमित अधिकार दिया गया है। यही कारण है कि मुगल बादशाहों के हरम में हजारों स्त्रियां होती थीं। फिर भी और-और की मांग एवं याद सदा बनती

रहती थी। मुगल दरबार में विकृत विलासिता का वातावरण रहता था। उनको देखकर विकृत, विलासिता राजपूतों में आयी। विकृत विलासमय जीवन इस्लाम की देन है। और आज की पाश्चात्य आधुनिक सभ्यताएं व्यक्तिवादी विचारधारा पर आधारित है, उसके उन्मुक्त उपभोग ने सारे समाज को व्यभिचार भवन बना दिया है और इसके कारण वहां अनेक विकृतियां निर्मित हो रही हैं। भारतीय परम्परा में एक प्रयोजन विशेष के लिये, एक समय विशेष तक धर्म के अनुकूल काम को स्वीकारा है, उसके पश्चात् उससे उपराम होने का, अपनी पत्नी के साथ भी मातृत्व भाव से देखने व रहने के आदर्श को स्वीकार किया गया है।

इस प्रकार भारतीय परम्परा में काम का मर्यादित महत्त्व है। इसके बिना कोई भी स्त्री माता नहीं बन सकती और कोई भी पुरुष पिता नहीं बन सकता। भारतीय संस्कृति में नारी को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। ईश्वर के बाद मां को ही स्थान दिया गया है। शक्ति पूजा में मां की आराधना ईश्वर के रूप में की जाती है। नारी की हमने मां लक्ष्मी, मां सरस्वती, मां दुर्गा के रूप में वंदना की है। नवरात्र के अवसर पर कुमारी कन्या का विधिवत पूजन करते हैं। बंगाल में जनमती बच्ची को भी मां के नाम से सम्बोधित किया जाता है। मनु भगवान् भी कहते हैं—'जहां नारियों का सम्मान होता है, पूजा होती है वहीं देव, धन, ऋद्धि-सिद्धि, कीर्ति का वास है।' विदेश यात्रा में स्वामी विवेकानन्द से पूछा, आप नारी को किस दृष्टि से देखते हो और उसे सर्वोच्च सम्मान कब मिलता है? तब स्वामीजी ने कहा था—हम नारी को मां के रूप में देखते हैं और उसे सर्वोच्च सम्मान पाने के लिए मां बनने तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है। पत्नी तो वह कुछ काल के लिए है। माता वह अनन्त काल के लिए है। पत्नी तो वह एक-की है पर वह माता सबकी हो सकती है।

मानव-जाति की प्रथम गुरु माता ही है। वह निर्माता के साथ परित्राता भी है। पत्नी के रूप में वह अर्द्धांगिनी है, घर की सम्राज्ञी है, बिना पत्नी के कोई भी यज्ञकर्म सम्पन्न नहीं हो सकता। बहिन और पुत्री के रूप में वह सदैव स्नेह की पात्र रही है।

एक बार गांधीजी से प्रार्थना सभा के पश्चात् प्रश्नोत्तर काल में एक सुशिक्षित युवती ने बापू से पूछा, हम स्त्रियों को अपने जीवन में कौन-सा आदर्श रखना चाहिये?

तब बापू ने उत्तर दिया, 'तुम्हें ही नहीं, संसार की किसी भी स्त्री को सीता का आदर्श रखना चाहिए।

तुरन्त युवती ने फिर खड़े होकर पूछा, 'जिस प्रकार आप हमें 'सीता' का आदर्श रखने को कहते हैं, क्या पुरुष वर्ग को भी 'राम' का आदर्श रखने को कहते हैं?

बापू के 'नहीं' कहने पर, उस युवती ने पुनः पूछा, 'जब आप हमें कहते हैं तो पुरुषों को क्यों नहीं कहते?

मुझे विश्वास है कि सीता के जीवन में से राम का निर्माण होता है। राम को बनाने के लिये अलग प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। बापू ने सुनिश्चित, विशेष महत्त्वपूर्ण उत्तर दिया। चर्चा समाप्त हुई।

अब देखें सीता के जीवन से राम का निर्माण किस प्रकार होता है इसे देखें—वाल्मीकि रामायण में राम द्वारा सीता त्याग करने के समय सीता के उद्गार लक्षणीय है—लक्ष्मण सीता को वन में छोड़कर उससे जब विदा लेने लगा तब सीता कहती है, 'लालाजी, राजा द्वारा मेरे त्याग का सन्देश आपने जैसे मुझे दिया वैसे ही रानी के नाते मेरा सन्देश भी आप उन्हें दीजिये। उन्हें कहिए कि प्रजानुरंजन के लिये आपने मेरा त्याग किया। मेरे सान्निध्य से आपके निष्कलंक जीवन को कोई कलंक लगे मुझे अच्छा नहीं लगता और इसलिए मेरा त्याग आपने किया। इसका मुझे दुःख नहीं। परन्तु एक बात ध्यान रखिये कि मेरे निष्कलंक जीवन का विश्वास होते हुए भी जिस प्रजा के अनुरंजन के लिये आपने मेरा त्याग किया है उस प्रजा के विषय में अपना कर्तव्य भली-भांति पूरा कीजिए। उसे न कर यदि आप मेरे लिए रोते बैठे तो वह मुझे अधिक दुःख होगा।

सीता को छोड़कर लक्ष्मण के वापस लौटने तक चार दिन राम राजसभा में नहीं गये थे। लक्ष्मण जब आया तब राम आंसू बहाते हुए बैठे थे। सीता का सन्देश सुनते ही राजसभा के लिए चलते हुए, लक्ष्मण का हाथ पकड़कर, राम ने कहा, 'लक्ष्मण, जो राजा अपना कर्तव्य भूलता है उसे गिरगिट की योनि प्राप्त होती है।

कर्तव्य तत्पर राम को दोष न देते हुए सीता ने उन्हें कर्तव्य की प्रेरणा देकर कार्यप्रवण किया। ऐसे लोकोत्तर सीता के जीवन में से राम का निर्माण होता है।

विश्व के इतिहास पर नजर डालने से हमारे सामने अनेक उदाहरण आ जाते हैं, जिनसे विदित होता है कि नारी ने भले अपना स्वतंत्र अस्तित्व नहीं बनाया परन्तु पुरुष की सहचरी रूप में वह सदैव प्रेरणास्रोत रही है। वह प्रेरणा चाहे मातृरूप में हो या पत्नी रूप में या भगिनी रूप में।

इतिहास गवाह है कि जिन महापुरुषों ने समय की शिला पर अपने पद चिह्न छोड़े हैं, उनके पीछे किसी-न-किसी रूप में नारी की प्रेरणा रही है। वेदकालीन ऋषि याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी स्वयं विदुषी थी। और याज्ञवल्क्य को महान् दार्शनिक बनाने में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान था। तुलसीदास को महान् बनने की प्रेरणा अपनी पत्नी रत्नावली से प्राप्त हुई। मां पुतलीबाई की बदौलत ही महात्मा गांधी आदर्शों के शिखरों पर सदा आरोहण करते रहे। वे अपनी महानता का श्रेय

माता पुतलीबाई को देते रहे हैं। छत्रपति शिवाजी में वीरत्व के संस्कार कहां से आए? जीजाबाई की लोरियों ने ही उनमें वीरत्व के संस्कार भरे। नेपोलियन के कर्तृत्व को उजागर करने का श्रेय मां लटेसियां को जाता है, बिस्मार्क की सफलता का श्रेय उनकी माता को जाता है। ऐसे अनेक वीर योद्धा हुए हैं जिन्हें युद्ध क्षेत्र में जाकर जूझने की, विजयी होने की प्रबल प्रेरणा उनकी पत्नियों ने दी है। हाड़ा रानी ने अपना मस्तक तक काटकर निशानी के रूप में भेज दिया था। विपथगामी हुए श्रद्धानन्दजी को पुनः सत्पथ पर लाने का श्रेय उनकी पत्नी को है। उन्होंने देखा उनकी पत्नी शिवदेवी उन्हें बिना भोजन कराये अन्न का दाना भी मुंह में नहीं डालती। एक बार शराब के नशे में डूबे हुए मुंशीरामजी घर पहुंचे। होश आने पर देखा कि सहधर्मिणी शिवदेवी अपने विपथगामी पति की शिशुवत् सेवा कर रही है। पत्नी के इस स्नेह-स्निग्ध व्यवहार को देखकर नारी के विविध रूपों वाली बात समझ में आई। सती नारी अपने पति के हित के लिये बड़े से बड़ा त्याग कर सकती है। इस कथन की सत्यता के अनुभव का दूसरा अवसर तब आया, जब मुंशीराम के शराब के बिलों को चुकाने के लिये शिवदेवी ने अपने स्वर्ण-कंगन पति को अर्पित कर दिये। पतिव्रता पत्नी के इस प्राज्ज्वल आदर्श को देखकर मुंशीरामजी (जो बाद में श्रद्धानन्दजी बने) की धारणा बनी कि 'वैदिक आदर्श से गिरकर भी जो सतीत्व धर्म का पालन पौराणिक समय में आर्य महिलाओं ने किया है, इसी के प्रताप से भारत भूमि रसातल को नहीं पहुंची और उसमें पुनरुत्थान की शक्ति अब तक विद्यमान है—यह मेरा निज का अनुभव है।' नारी सचमुच में ब्रह्म शक्ति है जो स्वयं झुककर अपने पति को उठा देती है। स्वयं झुककर अन्यों को उठा देना ब्रह्म शक्ति का स्वभाव है। हजारी प्रसाद द्विवेदीजी मेरी जीवन गाथा में लिखते हैं—

कुछ सलाहकारों ने मुझे कहा कि कोई ऐसी किताब लिखो जिससे टके सीधे हों। रुपयों का लोभ चाहे जो काम कराये। मैं उनके चकमे में आ गया। यूरोप और अमेरीका तक की प्रकाशित पुस्तकें मंगवाकर पढ़ी। फिर पुस्तक लिखी 'तरुणोपदेश'। मित्रों ने कहा अच्छी तो है पर सरसता नहीं। पुस्तक ऐसी होनी चाहिये जिसका नाम सुनकर और विज्ञापन मात्र पढ़कर ही खरीददार पाठक उस पर इस तरह टूटे जिस तरह गुड़ पर मक्खियों के झुंड के झुंड टूटते हैं। फिर मित्रों के प्रस्तावित अनुकूल पद्यात्मक पुस्तक लिख डाली। मित्रों ने खूब पीठ ठोकी। मैं भी हवाई किला बनाने लगा कि सुखी समृद्ध ठाठशाही जीवन जीने का।

परन्तु अभागों के सुख स्वप्न सच्चे नहीं निकलते। मेरे हवाई किले एक पल में ढह पड़े। मेरी पत्नी कुछ पढ़ी-लिखी थी। उससे छिपाकर ये दोनों पुस्तकें मैंने लिखी थीं। दुर्घटना कुछ ऐसी हुई कि उसने ये पुस्तकें देख लीं। देखी ही नहीं

उलट-पलटकर उसने पढ़ी भी, फिर क्या था उसके शरीर में कराल काली का आवेश हो आया। उसने मुझ पर वचन विन्यास रूपी इतने कड़े कशाघात किये, मैं तिलमिला उठा। उसने उन दोनों पुस्तकों की कापियों को आजन्म कारावास या काले पानी की सजा दे दी। वे उसकी संदूक में बंद हो गईं। उसके मरने पर ही उनका छुटकारा उस आजन्म कारावास से हुआ। छूटने पर मैंने उन्हें एकान्त सेवन की आज्ञा दे दी क्योंकि सती की आज्ञा उल्लंघन करने की शक्ति मुझ में नहीं। इस तरह मेरी पत्नी ने उस पंक पयोधि में डूबने से बचा लिया।

पत्नी ने आठ आने रोज तक की आमदनी से भी मुझे खिलाने-पिलाने और गृह कार्य चलाने का दृढ़ संकल्प प्रकट किया।

उस जमाने में कुछ छापना या किसी के जीवन चरित्र आदि प्रकाशित करना बुरी बात समझी जाती थी। दशा ऐसी होने के कारण मुझे कभी बड़े प्रलोभन दिये जाते थे—कोई कहता मेरा जीवन छाप दो, कोई कहता है भाषण छाप दो। इस प्रलोभनों का विचार करके मैं अपने दुर्भाग्य को कोसता और कहता कि जब मेरे आकाश महल को खुद मेरी पत्नी ने गिराकर चूर कर दिया तब भला ये घड़ियां और गाड़ियों को मैं कैसे हजम कर सकूंगा। नतीजा यह होता है कि बहरा और गूंगा हो जाता और सरस्वती में वही सामग्री जाने देता जिससे पाठकों का लाभ समझता। मैं सदा देखता रहता कि मेरे किसी काम से मुझे सत्पथ से विचलित होने का साधन प्राप्त न हो।

इस प्रकार हम देखते हैं मातृशक्ति चाहे माता रूप में हो या पत्नी या, भगिनी रूप में—अपने त्याग, तितिक्षा, सेवा, क्षमा, प्रेम, वात्सल्य द्वारा नर को महान् बना देती है, नारायण तक उठा देती है। इसलिये जब यक्ष द्वारा युधिष्ठिर से प्रश्न होता है—पृथ्वी से भारी, गरिमामयी क्या है? तो उत्तर आता है—माता। माता से बढ़कर और कुछ नहीं है। मेरे गुरुदेव स्वामी संवित् सोमगिरिजी महाराज अक्सर अपने प्रवचनों में कहा करते हैं, नारी शरीर में ईश्वरीय स्वभाव प्रकट होता है। नारी के भौतिक कलेवर को विराट् के पटल पर ले जाकर आप अनुभव करने का प्रयास करे तो सृष्टि का रहस्य आपके सामने उद्घाटित हो जायेगा। ब्रह्म जिस शक्ति को लेकर अखिल ब्रह्माण्ड को प्रकट करता है, उस शक्ति का प्रतिरूप स्त्री में आता है। उसका एकभाव उसकी एक भंगिमा, उसका एक स्वभाव नारी में प्रकट होता है। इसलिये हमारे शास्त्रों में कहा—यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः—जहां नारी की पूजा होती है, वहां देवता रमण करते हैं। यह मनुष्य रचित सिद्धान्त नहीं है, यह कास्मिक लॉ है। इसको समझना पड़ेगा।

एकमात्र भारतीय संस्कृति है, जो विज्ञान की हर कसौटी पर खरी उतरती है, न उसे आधुनिकता से डर है और न परहेज है। यह सदैव युग की आवश्यकताओं

के अनुसार अपने को ढालती रही पर पाश्चात्य अंधानुकरण से उसे अवश्य परहेज है। युग की आवश्यकता के अनुसार जीवन के विविध क्षेत्रों में जाये। अपने को पति प्रेम में आवृत रखते हुए, अपने शील और मातृत्व में सुरक्षित रखते हुए, बाहर के विविध क्षेत्रों में जाये। वह राजनीति में जाये, वह कम्प्यूटर सीखे, घर की आवश्यकता की पूर्ति के लिये अर्थोपार्जन करे, आवश्यकता पड़ने पर वह युद्ध के अन्दर भी जाये। परन्तु उसका मूल स्थान है, वह उसका स्वयं का शील है। स्वयं उसका घर है। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य है, वह मूलभूत शिक्षा उस बालक को प्रदान करना। एक व्यक्ति एक शिलाखण्ड को गढ़कर के एक मूर्ति बनाता है। परन्तु मां को तो एक चैतन्य खण्ड को, एक चैतन्य प्रवाह को सुसंस्कृत करना है। एक महान् कलाकार का, एक शिक्षाविद् का कार्य करना है। उस चुनौती को हमको स्वीकार करना पड़ेगा।

नारी के दो रूप हैं एक कामिनी रूप दूसरा मातृ रूप। मातृ रूप सदा वंदनीय है। पर कामिनी रूप कुछ काल के लिये है। पर पुरुष सदा के लिये उसके शब्द स्पर्श, रूप, रस, गंध में ही बंधा न रह जाये, अपने अन्य विकासों से, आध्यात्मिक विकास से, सर्वोच्च विकास से, पूर्णता के विकास से वंचित न रह जाय, इसलिये भारतीय शास्त्रों में कहीं-कहीं स्त्री के कामिनी रूप की निन्दा की है। कामिनी रूप कुछ काल के लिये है, एक प्रयोजन विशेष तक, उसके बाद उससे उपराम हो जाना चाहिये। पर वह दुर्बलतावश नहीं हो पाता है, इसलिये कामिनी रूप की निन्दा की है, ताकि उससे उबर कर जीवन अन्य ऊंचाइयों को छू सके। और स्त्री के लिये भी काम रूप की निन्दा है। वह भी सदा उससे बंधी न रहे। भारतीय शास्त्र ने मातृरूप की सदा वंदना की है, इस दृष्टि से ईश्वर के बाद मां को ही स्थान मिला है। संसार में सर्वप्रथम और सर्वपूज्य कोई है, तो वह माता है। दण्डी संन्यासी भी माता से भेंट होने पर उसकी परिक्रमा करके दण्डवत प्रणाम करे ऐसा शास्त्र विधान करता है। और माता भी अपने मातृत्व का घेरा परिवार तक सीमित न रखकर उसे विस्तृत करती जाये, ऐसी भारतीय परम्परा की अपेक्षा है।

कुछ माताओं और बहिनों की शिकायत रहती है कि हमारे शास्त्रों के अन्दर भी नारी के लिये कहा गया है, वह पतिव्रता होनी चाहिये। पुरुष के लिये नहीं कहा गया। यह तो भेदभाव की बात हो गयी। इस संदर्भ मेरे गुरुदेव सोमगिरिजी महाराज कहते हैं—नारी का महत्त्व समाज के अन्दर अधिक है और वह एक कोमल तत्त्व है, एक नाजुक तत्त्व है। उस नारी तत्त्व के अन्दर जरा भी प्रदूषण हो जाय तो पूरा का पूरा परिवार नष्ट, पूरा का पूरा समाज नष्ट। इसलिये नारी को एक सुरक्षा की आवश्यकता है। पुरुष का एक कदम डगमगा जाये तो स्त्री उसको सम्हाल लेती है। स्त्री अगर डगमगा जाये तो उसको कौन सम्हालेगा? यही एकमात्र दृष्टि है।

यह पक्षपात नहीं है। यह कोई ऐसा लाइसेंस नहीं दिया जाता कि पुरुष तो चाहे जैसा जीवन व्यतीत करे और सारा बंधन स्त्रियों के ऊपर। स्त्रियों को इस बात को समझना पड़ेगा। मैंने बालिकाओं के विद्यालय में जाकर कहा कि आंख का स्थान अलग होता है, हृदय भी कहे मैं अन्दर क्यों रहूं, मैं तो बाहर आना चाहूँगा, मेरे को भी अन्दर बांध करके रखा है। यह ठीक नहीं है। आपकी आंखें भी कहें कि मुझ पर पलकें क्यों? मैं भी हमेशा खुली रहना चाहूँगी। आंख का काम अलग है, हृदय का अलग है। इनको सुरक्षा चाहिये। पैर में कांटा चुभ जाये, तो कोई बात नहीं। सूई से निकाल लेंगे। आंख के अन्दर जरा-सा एक थोड़ा-सा कण भी पड़ जाये तो आंख के अन्दर कितनी तकलीफ हो जाती है। हमारी संस्कृति समाज की आंख है। वह नारी है। सारे समाज और संस्कृति का जो हृदय है, वह नारी है। इसलिये उसके अन्दर जरा भी दूषण आ जायेगा तो सारी मानवता नष्ट हो जायेगी।

नारी सुरक्षा को हमने सर्वोच्च महत्त्व दिया। नारी के अपमान को हमने कभी सहा नहीं। हमारे आर्ष प्रणीत दो ही इतिहास ग्रंथ हैं—रामायण और महाभारत। जब हमारे परदेशी भाई रावण ने नारी का अपमान किया तो उसको कुल कुटुम्ब सहित उखाड़ फेंका और रामायण रची गयी। और जब हमारे ही भाई ने नारी का अपमान किया तो उसको भी कुल कुटुम्ब सहित उखाड़ फेंका और महाभारत रची गई। नारी की सुन्दरता और जवानी और कोमलता ही उसकी दुश्मन बन जाती है, इसलिये उसकी सुरक्षा आवश्यक है। इसलिये भगवान् मनु कहते हैं, कुमारीवस्था में उसका रक्षक पिता है, युवावस्था में उसका रक्षक पति होता है, और वृद्धावस्था में उसका रक्षक पुत्र होता है। दुनिया में एक मजहब ऐसा भी है जो बड़ा ही नारी लोलुप है, उसने नारी जाति का बहुत ही अपमान किया है, उससे सावधान करने की आवश्यकता है ताकि वे उनकी लव (Love) जिहाद की शिकार न बने।

प्रस्तुत पुस्तक में मातृत्व के पंचविध रूप यथा जगन् माता—मां सरस्वती, मां लक्ष्मी और मां दुर्गा, भारत माता, अपनी-अपनी माता, गोमाता और गंगा माता को स्पष्ट किया गया है। भारतीय संस्कृति में स्त्रियों को सर्वोच्च सम्मान एवं स्थान प्राप्त होने से हर क्षेत्र में वेद काल से आज तक हर क्षेत्र में नारी रत्नों को उत्पन्न किया है, उसकी भी एक झांकी देखने को मिलेगी। पूर्व की भांति 'माँ फाउण्डेशन' ने इस पुस्तक का समस्त अर्थ-व्ययभार सहर्ष स्वीकार किया। यह संस्था प्रभु की कृपा से सदैव गतिशील बनी रहें। परम पूज्य गुरुदेव स्वामी संवित् सोमगिरिजी महाराज के आशीर्वाद एवं सांखला प्रिंटर्स के प्रिंटिंग कार्य में सहयोग से प्रकाशित हो रहा है।

शिवाकांक्षी

स्वामी संवित् सुबोधगिरि

मो. 09413769139

अनुक्रम

1.	नारी जाति की शिक्षा	21
2.	काम पुरुषार्थ	28
3.	वर-वधू	36
4.	मातृ-शक्ति	38
5.	स्त्रीत्व, मातृत्व	40
6.	पारिवारिक जीवन में केवल धार्मिक नियम ही प्रभावी होते हैं	44
7.	मातृ उपासना के त्रिविध रूप जगन् माता राष्ट्र माता व व्यक्तिगत माता	49
8.	गो माता	71
9.	मां गंगा	82
10.	पार्वती-शकुन्तला तपसा विजय	89
11.	माता अनुसूया	90
12.	रावण ऋषिपुत्र, वेदपाठी ब्राह्मण होते हुए भी असुर क्यों कहा गया?	91
13.	तुलसी और रामायण की महिला पात्र	93
14.	कुन्ती और गान्धारी	96
15.	माता जीजा बाई	102
16.	रानी अहल्या बाई	104
17.	भारत की जॉन ऑफ आर्क : रानी लक्ष्मीबाई	105
18.	स्वामी विवेकानन्द की धर्मबहिन : वीर बाला भगिनी निवेदिता	112
19.	डॉ. एनी बीसेंट	115
20.	श्री अरविन्द आश्रम की प्राण संचालिका पूज्य श्री माताजी	117
21.	श्री माँ का राष्ट्र को आह्वान	120
22.	काव्य-कानन के चिर वसन्त की अमर कोकिला सरोजिनी नायडू	130
23.	अनन्त शयनम् आयंगर	135

परिशिष्ट

24. संस्कार 139
25. पर्यावरण 140
26. मन 142
27. प्रारब्ध और पुरुषार्थ 143

नारी जाति की शिक्षा

मानव सृष्टिकर्ता की श्रेष्ठतम कृति है, किन्तु मानव में सृष्टिकर्ता ने जो योग्यताएं गुम्फित कर दी है, उन्हें तपस्या द्वारा विकसित करना, छिपी हुई श्रेष्ठताओं को प्रकट करना, यह मानव का साधना का कार्य है। मानव की इस साधना को शिक्षा का केन्द्र कहा जाता है। जिसके द्वारा मानव के अन्तर्निहित गुण सम्पदाएं प्रकाश में आती हैं। बिना शिक्षा के नर के अन्तर में सोये हुए नारायण सदा सोये ही रहते हैं। कभी हृदय मन्दिर में प्रकाशमान नहीं होते।

शिक्षा की परिभाषा

भारतीय मनीषियों ने कहा—**'सा विद्या या विमुक्तये।'** अर्थात् विद्या वही है जो मुक्त करे। वास्तव में मानव जब संसार में आता है तो अनेक प्रकार की पशु-प्रवृत्तियों से बंधा रहता है। आहार, निद्रा, भय, मैथुन, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध आदि ऐसी प्रवृत्तियाँ हैं, जो मनुष्य तथा पशु में समान हैं। अतः विद्या वही है जो हमें इन पाप-पूर्ण, पशु-प्रवृत्तियों से मुक्त करे। नर को पशुत्व से उठाकर नरत्व तक तथा नरत्व से देवत्व तथा ब्रह्मत्व तक पहुँचाने वाली, ज्ञान साधना का नाम ही विद्या है। भगवान् ने गीता में कहा है, 'न हि ज्ञानेन, सदृशं पवित्रमिह विद्यते अर्थात् ज्ञान के समान पवित्र वस्तु सारे त्रिभुवन में अन्य कोई नहीं है। वेद ने स्वयं कहा है—सत्यं ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्मम्। अर्थात् सत्य एवं अनन्त ज्ञान ही ब्रह्म है। इसका अर्थ है कि शिक्षा ज्ञानरूपी ब्रह्म की प्राप्ति के लिये ही ज्ञान साधना है। इसमें ज्ञान द्वारा ज्ञान की ही प्राप्ति है, साध्य और साधन दोनों ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ही है। अतः शिक्षा मानव जीवन की महानतम साधना एवं पावनतम तपस्या है।

प्रकृति-विकृति-संस्कृति

शिक्षा मानव का श्रेष्ठतम संस्कार है। यह नरपशु को संस्कारित करती हुई, उसकी पशु-प्रवृत्तियों का परिष्कार करती हुई उसे देवत्व एवं ब्रह्मत्व की ओर उठाती है।

यदि मानवरूपी नरपशु की शिक्षा द्वारा संस्कृति (परिष्कृति) पर ध्यान न दिया जाए तो स्वभावतः उसकी प्रवृत्ति विकृति की ओर उन्मुख होगी। गाय का

ताजा दूध अपनी प्राकृतिक अवस्था में अधिक देर तक नहीं ठहर सकता। उसे प्रकृति पर छोड़ देने से उसमें स्वभावतः विकृति आ जाएगी। दूध फट जाएगा, उसमें दुर्गंध आने लगेगी तथा कुछ दिन बाद उसमें कीड़े पड़ जायेंगे। अतः दूध को प्रकृति पर न छोड़कर उसकी संस्कृति की जाती है, उसे कुछ संस्कार देकर—गर्म कर, जावन लगा दही बनाकर, मंथन कर, नवनीत छाछ अलग कर मक्खन को ताप देकर उसका घृत बना लिया जाता है। यह घृत दूध का संस्कारित रूप है, इसमें विकार नहीं हो सकता। इसी प्रकार यदि नरपशु को बिना शिक्षा संस्कार के, उसको प्रकृति की दया पर छोड़ दिया जावे तो निश्चय ही उसमें विकृति आकर वह नरपशु, नरपिशाच बन जावेगा। जैसे कंस, हिरण्यकशिपु, नादिरशाह, तैमूर, चंगेज आदि हुए। शिक्षा नरपशु को नरपिशाच के विकार से बचाकर उसकी प्रवृत्तियों का परिमार्जन कर उसे मनुष्यत्व की गरिमा से विभूषित करती है, वह उसके दिव्य गुणों को जगाकर उसे देवत्व एवं नारायणत्व के महान् पद से मण्डित करती है। विश्वविजेता स्वामी विवेकानंद ने ठीक ही कहा है—शिक्षा केवल उस पूर्णत्व का प्रकटीकरण मात्र है जो तत्त्वतः पहले से ही मानव के भीतर निहित है।

राष्ट्रीय नवोत्थान में नारी शिक्षा का महत्त्व

भारतीय संस्कृति ने नारी शिक्षा को इतना महत्त्व दिया है कि नारी को माता का स्थान दिया तथा माता को मानवता का प्रथम गुरु माना। वास्तव में समूची मानव-जाति किसी माता के वात्सल्य रूपी अमृत को पीकर ही जीवित होती है, किसी माता के प्यार-दुलार में ही उसे प्रथम शिक्षा मंत्र मिलता है तथा किसी माता की लोरियों से ही इस अनन्त ज्ञान के संसार में उसके ज्ञानचक्षु खुलते हैं। अतः यह स्वाभाविक ही है कि एक समूची मानव-जाति को प्रथम शिक्षा मंत्र देने वाली नारी जाति स्वयं सुशिक्षित हो, विधिवत् संस्कारित हो। पुरुष के शिक्षित होने से केवल एक व्यक्ति ही शिक्षित होता है। नारी प्रथम गुरु होने के कारण मानव जाति को शैशव में जो प्रथम संस्कार देगी, उसकी अमिट छाप मानवता के अन्तःकरण पर सदा रहेगी तथा इस प्रकार सुशिक्षित-संस्कारित नारी समूची मानव जाति को कल्याण के मंगलमय-पथ पर चला सकने में समर्थ होगी।

इतिहास के यशोमन्दिर में नारी का स्थान

भारत के इतिहास निर्माण में भी नारियों ने बड़े-बड़े महामनीषियों को अपने ज्ञान के प्रकाश से विस्मित कर दिया। महर्षि जनक के दरबार में जहाँ दार्शनिकों का महासम्मेलन जुटा हुआ था, महान तत्त्वद्रष्टा महर्षि याज्ञवल्क्य जब गृहस्थी से उपराम हो अपनी सम्पत्ति दोनों पत्नियों को देकर वन में जाने लगे तो धर्मपरायण धर्मपत्नी मैत्रेयी ने कहा—इस सब सम्पत्ति को पाकर यदि मैं अमरत्व नहीं पा

सकती तो व्यर्थ है। अतः अमरत्व पाने के लिये मैं भी साधना ही करूँगी। वेदकाल में ब्रह्मवादिनी लोपामुद्रा अनेक वेद मंत्रों की द्रष्टा हुई। महामाता विदुला ने युद्ध भूमि से विमुख हुए अपने क्षत्रिय पुत्र को पुनः क्षात्रधर्म का उपदेश देकर विजयी होने का गौरव दिलाया। वीर माता कुन्ती ने अपने वीर पुत्रों (पाण्डवों) के लिए संदेश भेजा। यदर्थं क्षत्राणी सूते स कालोऽयंसमागतः' अर्थात् जिस कार्य के लिये क्षत्रिय माताएं पुत्र पैदा करती हैं वह काल अब आ गया है। मदालसा की एक लोरी

शुद्धोऽसि, बुद्धोऽसि निरजनोऽसि,
संसार माया परिवर्जितोऽसि।

के द्वारा उसके पुत्र ब्रह्मज्ञानी बन गये थे। अनुसूया ने स्वयं जनकनन्दिनी सीता को पातिव्रत्य धर्म का उपदेश दिया तथा अपने पातिव्रत्य के प्रताप से स्वयं ब्रह्मा, विष्णु और महेश को शिशुरूप में वात्सल्यमयी लोरियाँ सुनाई।

महान् गणितज्ञ भास्कराचार्य की सुपुत्री लीलावती संसार में सर्वप्रथम अंकगणित का ग्रंथ लिखने के कारण अमर हो गई। सम्राट अशोक की पुत्री संघमित्रा इतनी विदुषी थी कि लंका में भारतीय संस्कृति की विजय-वैजयन्ती फहराने के लिये गई। महाकवि कालिदास के विद्वान् बनने से पूर्व ही उनकी धर्मपत्नी विद्योत्तमा अलौकिक विदुषी थी, जिन्होंने कालिदास जैसे जड़मूर्ख को अपनी विद्वत्ता की ठोकर मारकर उन्हें ज्ञान के संसार में जगा दिया। सम्राट हर्ष की बहिन राजश्री, महापण्डित मण्डन मिश्र की भार्या उभय भारती आदि भारत की बड़ी श्रेष्ठ, संस्कारित देवियाँ थीं। रानी पद्मिनी, गढ़ मण्डल की देवी भवानी, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, शिवाजी की जननी जीजाबाई, सरोजिनी नायडू, माँ शारदा, श्री श्री माँ आनन्दमयी आदि देवियों के कारण भारत का मुख विश्व भर में उज्ज्वल हुआ। आचार्य मिश्र की विदुषी पत्नी भामती जिसके नाम पर वेदान्त का नाम भामती भाष्य है, यम को अपनी विद्वत्ता एवं तर्कशक्ति से जीतने वाली सावित्री, कविराय गिरधर की कवयित्री पत्नी जिसकी कुण्डलियों में गर्भित नीतिधर्म कोटि-कोटि लोगों का पथ प्रदर्शक बना तथा आधुनिक काल में रहस्यवाद की सर्वश्रेष्ठ कवयित्री महादेवी वर्मा भारतीय महिलाओं के लिये आदर्श रूप है। यह देवियों की श्रेष्ठ शिक्षा और संस्कार का प्रताप है।

आधुनिक शिक्षा पद्धति में परिष्कार की आवश्यकता

शिक्षा द्वारा भारत की आत्मा का दर्शन : आधुनिक भारतीय शिक्षा का कोई सांस्कृतिक अधिष्ठान नहीं है। दुर्भाग्य से ब्रिटिश गुलामी के काल से जो विदेशी शिक्षा पद्धति भारतीय जनमानस पर लादी गई उसकी गुलामी से भारत अभी तक मुक्त नहीं हुआ है। अतः भारत के युवक एवं युवती वर्ग को विदेशी विचारों एवं विदेशी माध्यम वाली शिक्षा देकर यूरोप का मानसिक दास बनाया जा रहा है।

भारतीय शिक्षा भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठतम आदर्शों पर अधिष्ठित होनी चाहिए। भारत में शिक्षा पाने वाले भारतीय शिक्षार्थियों को भारत की आत्मा का साक्षात्कार होना चाहिए। अन्यथा उनको मिलने वाली शिक्षा व्यर्थ है। विशेष रूप से नारी शिक्षा के लिये यह परमावश्यक है कि देवियों को ऐसी शिक्षा दी जाए जिससे उन्हें अपनी संस्कृति भगवती का साक्षात्कार हो जाये तथा वे संस्कृति के पावनतम आदर्शों की सुधा का आकण्ठ पान कर के भारतीय संस्कृति की साकार देवी बन जावें। इस प्रकार की सुशिक्षा द्वारा संस्कारित नारी ही देश के सांस्कृतिक पुनर्निर्माण का सजीव सूत्र होगी।

इतिहास दर्शन द्वारा इतिहास निर्माण की प्रेरणा

आधुनिक शिक्षा में विशेष रूप से नारी शिक्षा में भारत के सच्चे इतिहास को पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाना चाहिये। उस इतिहास में देवियों का क्या योगदान रहा इस पर विशेष बल दिया जाए? लड़के तथा लड़कियों दोनों को एक समान सिकन्दर के हमले से लेकर अंग्रेजों के विदेशी राज्यों तक के आक्रमणों तथा युद्धों का लम्बा किस्सा सुनाने से किसी बालक एवं बालिका का राष्ट्रीय स्वाभिमान नहीं जागता, इस देश के इतिहास के प्रति असीम प्रेम नहीं उमड़ता तथा पढ़ने वाले छात्र-छात्रा को इतिहास के पावन यशोमन्दिर में अपना-अपना इष्टदेव स्वतः नहीं मिल जाता, जिसका आदर्श उनकी आंखों में सदा झूलता रहे तथा जिसकी पूजा वे जीवन भर अपने कर्मों के फूलों से कर सकें। इतिहास का पाठ यदि हमारे छात्र-छात्राओं में इतिहास निर्माता बनने की उमंग नहीं पैदा कर सकता तो वह केवल तोता-मैना के काल्पनिक किस्से के समान बिल्कुल निरर्थक है।

नारी के गुण एवं स्वभाव के अनुकूल विषय

नारी शिक्षा के लिए विषयों के चयन में भी बड़ी सावधानी बरतने की आवश्यकता है। स्कूल, कॉलेजों में जो विषय लड़कों को पढ़ाये जाते हैं वही लड़कियों को पढ़ाया जाना अन्यायपूर्ण है।

स्त्री तथा पुरुष की प्रकृति में कुछ मौलिक अन्तर है—

1.	बालकों का शरीर बलिष्ठ एवं कठोर होता है। वे शारीरिक श्रम अधिक कर सकते हैं। बालकों में बल अधिक होते हुए भी सहनशीलता कम होती है।	बालिकाओं का शरीर सुललित एवं कोमल होता है। उनकी ललित कलाओं एवं गृहकार्य में रुचि होती है। बालिकाओं में सहनशीलता एवं कार्य तत्परता अपेक्षाकृत अधिक होती है।
2.	बालक की रुचियाँ बाह्य क्षेत्र में अधिक होती है।	बालिकाओं की रुचियाँ अधिकांशतः गृह-केन्द्रित होती है।

3. बालक के लिये संघर्ष ही जीवन है। बालकों की रुचियाँ गणित एवं विज्ञान जैसे कठोर विषयों में अधिक होती है। — बालिकाएं साधना को जीवन का सार मानती है। बालिकाओं की रुचियाँ साहित्य, काव्य, संगीत, चित्रकला आदि ललित कलाओं में अधिक होती है।

4. बालक अपने बड़े पुट्ठों से काम अधिक कर सकता है अतः मशीनों का काम, प्राविधिक शिक्षा तथा भुजाओं का परिश्रम पसन्द करता है। — बालिका छोटे पुटठों का काम अधिक अच्छा कर सकती है इसलिये वह कसीदाकारी के काम, बुनना, सितार बजाना, चित्रकला, अंगुलियों की कोमल एवं लचकीली गति से होने वाले काम बालक की अपेक्षा अधिक अच्छा कर सकती है।

5. बालक बहिर्मुखी होने से सामाजिक क्रान्ति, राजनीति, व्यवसाय तथा तज्जनित आन्दोलन, अशान्ति पसन्द करता है। — बालिका अन्तर्मुखी होने से शान्त, एकान्तप्रिय, निर्माणशील, धर्मपरायण, मानव के विकास में, प्रयत्नशील तथा संस्कृति संरक्षण में तत्पर होती है।

6. युवक अपनी काम वासनाओं के प्रदर्शनों पर काव्य, उपन्यास लिख सकता है। वह अपनी वासना के गीत गाता फिरता है। — नारी लज्जा रूपी भूषण में विभूषित है। भारतीय नारी शरीर प्रदर्शन को नीचता निर्लज्जता मानती है।

उक्त तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि बालक को जो विषय— प्रेम, काव्य, विज्ञान, राजनीति, गणित आदि पढ़ाये जाते हैं, वे बालिकाओं पर भी थोपना नारी शिक्षा के साथ बड़ा भारी अन्याय होगा।

पुरुष पतंग के समान आकाश में स्वच्छन्द उड़ना चाहता है, नारी डोरी के समान उसे मर्यादा के तन्तु से बांधे रहती है। पुरुष विश्वव्यापक होने की चाह में कहीं विशृंखलित एवं विखण्डित न हो जाये इस हेतु नारी गृह केन्द्रित रह कर उसकी स्वच्छन्दता पर अंकुश रखती है। सृष्टि की रचना में बाह्य तथा आंतर दोनों शक्तियों की आवश्यकता है। रथ के दोनों पहिये समान रूप से सुदृढ़ सुनिर्मित रहें तभी यात्रा मंगलमय होगी।

सहशिक्षा

पाश्चात्य शिक्षा का सबसे बड़ा पाप जो आज भारत को सर्वनाश की ओर ले जा रहा है, वह है—युवक एवं युवती को एक साथ एक कक्षा में बैठ कर,

एक ही विषय (जैसे कीट्स का, वायरन का, नग्न शृंगार काव्य) पढ़ाना। भारत में विद्यार्थी का एक ही नाम सर्व प्रसिद्ध था—ब्रह्मचारी। ज्ञान रूपी ब्रह्म की साधना करने वाला, ब्रह्म में ही विचरण करने वाला ब्रह्मचारी ही सच्चा विद्यार्थी हो सकता है। अतः शिक्षा के काल में किसी युवती के साथ बैठकर (सहशिक्षा द्वारा) ज्ञान साधना करना, कितना हानिप्रद हो सकता है, यह स्पष्ट ही है। पश्चिम इस पाप के फल को भोग रहा है। पश्चिम के अंधानुकरण से भारत का तो सर्वनाश ही हो जायेगा।

शिक्षा का माध्यम

भारतीय नारी के लिए शिक्षा का माध्यम अनिवार्य रूप से भारतीय भाषा ही होना चाहिये। नारी पर ही यह उत्तरदायित्व है कि माँ बनकर वह मानव को जिस भाषा में लोरियाँ सुनावें वही उस मानव की मातृभाषा बन जावे। अतः यह नितान्त आवश्यक है कि बालिकाओं को प्राथमिक शिक्षा मातृभाषा में ही दी जावे, ताकि वे भी माता बनकर उसी मातृभाषा के माध्यम से मानव-जाति को संस्कारित कर सके। आज छोटे-छोटे बालक-बालिकाओं को विदेशी भाषा के माध्यम से शिक्षा देने का एक अत्यन्त दूषित एवं घातक प्रचलन दिखाई देता है। इससे बालक-बालिका को भारतीय संस्कार से वंचित होकर विदेशी भाषा के शब्दों के अत्याचार का शिकार बनना पड़ता है। प्रत्येक भाषा के साथ उस जाति के संस्कार तथा मनोभाव अनिवार्य रूप से जुड़े रहते हैं। अतः विदेशी भाषा के पठन-पाठन से भारतीय बालक-बालिकाओं का हृदय एवं मस्तिष्क विदेशी बन जाते हैं। भारतीय बालिकाओं को मातृभाषा, हिन्दी एवं संस्कृत का भी व्यवहार योग्य ज्ञान होना चाहिए ताकि वे अपने भारतीय साहित्य के रत्नों को स्वयं पहचान सकें तथा भावी पीढ़ियों की झोलियाँ भी उन रत्नों से भर सकें।

पुराणकथाओं का चमत्कारी प्रभाव

भारतीय जनमानस सदा रामायण, महाभारत आदि पुराणकथाओं से उर्वर रहा है। भारतीय माताएं अपने शिशुओं को राम, कृष्ण, भीम, अर्जुन, हरिश्चन्द्र, दधीचि, श्रवण, ध्रुव, प्रह्लाद की गाथाएं लोरियों के रूप में सुना-सुनाकर इतिहास निर्माण का कार्य करती रही हैं। अतः भारतीय बालिकाओं के हृदय को पुराणगाथाओं की सुधा से परिपूरित करना परम महत्त्वपूर्ण है। इसी से जाति का भविष्य सुरक्षित होगा।

बालिकाओं को योग्य शारीरिक शिक्षा

बालिकाओं को योग्य शारीरिक शिक्षा दी जानी चाहिये ताकि आवश्यकता पड़ने पर वे आत्मरक्षा के साथ-साथ देश व समाज की रक्षा भी कर सकें।

भारतीय बालाएं ज्ञान-साधना के क्षेत्र में विश्व के किसी अन्य राष्ट्र की देवियों से पीछे न रहे, वे भारतीय संस्कृति की जीवन्त प्रतिमा बनकर राष्ट्र की भावी पीढ़ियों को संस्कृति सुधा का पान करा सके।

सच्ची शिक्षा वह है जो मानव को तुच्छता से, पशुता से, जड़ता से, स्वार्थ से और कमीनेपन से मुक्त कर सके। जो व्यक्ति आजकल की परिभाषा में शिक्षित होकर भी स्वार्थ, पशुता और कमीनेपन से मुक्त नहीं हो सकता वह सच्चे अर्थ में शिक्षित नहीं है। संस्कृति विहीन शिक्षा तो मात्र कुशिक्षा ही है।

—प्रो. हरवंशलाल ओबराय

पर भारत में अंग्रेजों या ईसाई मिशनरियों द्वारा स्थापित शिक्षा की विडम्बना गांधीजी एवं स्वामी विवेकानन्दजी के शब्दों में देखें—

जब वे (मिशनरीज) हमारे बालकों को शिक्षित करते हैं तब वे पूर्णतया उनके आत्मविश्वास को ही नष्ट नहीं करते बल्कि सभी प्रकार के आत्म सम्मान को भी नष्ट करते हैं।

—गांधीजी

जब बालक विद्यालय जाना प्रारम्भ करता है, तब वह प्रथम पाठ पढ़ता है कि उसके पिता मूर्ख है, दूसरा उसके दादा पागल है, तीसरा उसके सभी गुरु पाखण्डी हैं चौथा उसकी सभी अध्यात्मिक पुस्तकें झूठी हैं। और जब वह 16 वर्ष का होता है तब वह नकारात्मक सोच लिये जीवनहीन तथा आधारहीन व्यक्तित्व का स्वामी बनता है।

—स्वामी विवेकानन्द

काम पुरुषार्थ

सामान्यत: काम शब्द कामना के अर्थ में प्रयोग होता है। यह कामना खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने, सुनने, स्पर्श करने, सोने, विश्राम करने, धनोपार्जन करके यश पाने आदि की कोई भी कामना हो सकती है। इसे तीन प्रकार की मुख्य कामनाओं में विभाजित किया जा सकता है।

(1) पुत्रैषणा,

(2) वित्तैषणा और

(3) लोकैषणा।

काम का रूढ़ अर्थ कामवासना (Sex instinct) प्रचलित हो गया है। इसे ही सभ्य भाषा में पुत्रैषणा कहा जाता है। क्योंकि भारतीय संस्कृति में गृहस्थाश्रम गृहस्थ धर्म है, इसलिए काम का वास्तविक उद्देश्य पुत्र-प्राप्ति ही है। भारतीय संस्कृति में पुत्रैषणा का स्थान है किन्तु केवल भोग विलास के लिए भोगैषणा का स्थान नहीं। कामना और एषणा का अर्थ इच्छा है। वासना का अर्थ है वह वस्तु जिसमें मन वास करे। जब मन सौन्दर्य का चिन्तन करते-करते उसी में बसने लगता है या धन का चिन्तन करते-करते उसी में रम जाता है, तब मन की इस वृत्ति को वासना कहते हैं। इच्छा के बार-बार पैदा होने पर और मन के इच्छा का दास बन जाने पर वासना कही जाती है।

स्त्री-पुरुष के परस्पर आकर्षण को काम कहा जाता है। वास्तव में इन्द्रियों के प्रति प्रत्येक विषय का आकर्षण कामना ही है। किन्तु स्त्री-पुरुष के सहवास की कामना को सभ्य भाषा में कोई नंगा शब्द नहीं देकर काम ही कह दिया गया है। स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध कई प्रकार के हो सकते हैं—

(1) पिता-पुत्री का सम्बन्ध—यह शुद्ध स्नेह, संरक्षण एवं कर्तव्यभावना पर टिका हुआ सम्बन्ध है।

(2) माता-पुत्र का सम्बन्ध—यह पवित्र प्रेम, कर्तव्यभावना, माता द्वारा संरक्षण और पुत्र द्वारा पूजा की भावना पर आश्रित सम्बन्ध है।

(3) बहन-भाई का सम्बन्ध—यह परस्पर पवित्र प्रेम, नैतिक आचरण, निष्काम सेवा एवं निःस्वार्थ सहानुभूति का सम्बन्ध है।

(4) पति-पत्नी का सम्बन्ध—यह गृहस्थाश्रम को चलाने के लिए श्रेष्ठ संतान प्राप्तकर समाज का ऋण चुकाने के लिए पंच महायज्ञों द्वारा सबका कल्याण करने एवं श्रेष्ठ तीन आश्रमों को आधार देने के लिए सहधर्म का कर्तव्य-सम्बन्ध है।

(5) प्रेमी-प्रेमिका का सम्बन्ध—यदि स्त्री-पुरुष बिना किसी मर्यादा के बंधन के एक-दूसरे के प्रति आकर्षण रखते हैं तो मानव की उस दुर्बलता को प्रेमी-प्रेमिका सम्बन्ध कहा जाता है। भारतीय धर्मशास्त्र या आचारशास्त्र इसकी अनुमति नहीं देता। किन्तु मानव की सहज दुर्बलता होने के कारण साहित्य में कवियों ने नायक-नायिका के भेदों में ऐसे प्रसंगों की चर्चा की है। मनु भगवान् ने तो यहां तक लिखा है कि बेटे के युवा हो जाने पर उसे अपनी माता या विमाता के साथ एक शय्या पर नहीं बैठना चाहिए। काम ऐसी विचित्र अग्नि है जो युवा स्त्री-पुरुष की निकटता का ईंधन मिलते ही उत्तेजित हो उठती है। अतः युवा भाई-बहिन एवं परिचित स्त्री-पुरुषों को बहुत मर्यादा के साथ व्यवहार करना चाहिए। युवा छात्र-छात्राओं की सहशिक्षा भारतीय परम्पराओं के प्रतिकूल है। घी और अग्नि को पास-पास रखने से कभी भी विनाश की ज्वाला भड़क सकती है। नीतिकारों ने कहा है—

'यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धं न करणीयं न चरणीयम्'

अर्थात् चाहे हमारा आचरण शुद्धभावना से हो किन्तु वह यदि लोकविरुद्ध हो तो उसे नहीं करना चाहिए, उसका आचरण कभी नहीं करना चाहिए। विवाहित पति-पत्नी भी यदि खुले बाजार में परस्पर प्रेम-लीला करते चलें तो अशोभन एवं कामोत्तेजक प्रसंग बन जाएगा। दुर्भाग्य से पश्चिमी देशों में प्रेमी-प्रेमिका की स्वच्छन्द प्रेम लीला तथा विवाहितों की निर्लज्ज कामकेलि खूब चलती हैं।

व्यभिचार—कामवासना का सबसे घृणित रूप व्यभिचार है। Physical contact without love is essence of prostitution. Physical contact with love and responsibility is the essence of marriage. Pure love without physical contact is the essence of devotion.

बिना वास्तविक प्रेम के शारीरिक संयोग केवल भोग विलास मात्र के लिए 'सम्भोग' वेश्यावृत्ति का सार है। जो कामी किसी कामिनी के साथ कामवासना की पूर्तिकर जीवनभर के लिए उससे प्रेम करने अथवा उसका उत्तरदायित्व निभाने के लिए प्रस्तुत नहीं है वह वेश्यागिरी द्वारा नारी का शोषण मात्र कर रहा है। शोषण का अर्थ है दूसरे व्यक्ति को अपने स्वार्थ के लिए केवल साधन मात्र बना लेना

तथा उसे साध्य न मानना। जिस प्रकार जूता हमारे लिए साधन मात्र है। घिस जाने या फट जाने पर उसे फेंककर दूसरा जूता खरीद लिया जाता है। इस प्रकार किसी नृशंस अधिनायक के लिए कोई गुलाम मजदूर साधन मात्र है। काम करते हुए यदि आरा मशीन से भुजा कट जाती है तो बेदर्द मालिक उसकी कोई चिन्ता न कर एक दूसरा गुलाम मजदूर काम पर लगा देता है। उसी प्रकार व्यभिचारी व्यक्ति व्यभिचार या बलात्कार का शिकार बनने वाली नवयुवती को केवल साधन मात्र बनाकर अपनी कामवासना की पूर्ति करता है। इससे उसके स्वस्थ जीवन एवं सामाजिक प्रतिष्ठा पर क्या कुप्रभाव पड़ता है इसकी उसे तनिक भी चिंता नहीं रहती। नारी के क्षत-विक्षत हो जाने, बहुत चिन्ताजनक-हालत में पड़ जाने अथवा मर जाने पर वह नए जूते के समान नई कामिनी खोज लेता है। यह मानवता का घोर तिरस्कार है। जो वेश्या यह धंधा करती है वह भी पुरुषों के अर्थ व स्वास्थ्य का शोषण ही करती है। उन्हें जीवन भर सच्चा प्रेम किसी ग्राहक से नहीं रहता। इसलिए व्यभिचार मानवता के माथे पर कलंक है।

व्यभिचार, व्यभिचार की चेष्टा, बलात्कार, बलात्कार की चेष्टा, नारी का अपहरण, सभ्य कहलाने वाले परिवारों में कदाचार, पश्चिम की भौतिकवादी सभ्यता में आधी रात को Night क्लबों में शराब पीकर परायी स्त्रियों की बगल में हाथ में हाथ डालकर स्त्री-पुरुषों का एक दूसरे से लिपटकर नाचना, Nude क्लब में नग्न स्त्री-पुरुषों का निर्लज्ज नृत्य, फैशनों में नंगापन, साहित्य में नग्नता, संगीत में अश्लीलता, नग्न स्त्रियों के चित्रों के कैलेण्डर, एलबम आदि, चलचित्रों में नग्नता एवं निर्लज्ज कामक्रीड़ा सभी कुछ व्यभिचार के ही भिन्न-भिन्न प्रकार हैं। जिस प्रकार बिना वास्तविक प्रेम के स्त्री-पुरुष का शारीरिक संयोग व्यभिचार कहलाता है। यदि उनके शारीरिक संयोग में प्रेम व उत्तरदायित्व का भाव संयुक्त हो जाए तो वह विवाह या गृहस्थाश्रम माना जाएगा।

ब्रह्मचर्याश्रम व गृहस्थाश्रम

भारत के ऋषियों ने पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति हेतु व्यक्तिगत जीवन के विकास के लिए चार आश्रमों तथा सामाजिक जीवन के विकास के लिए चार वर्णों की रचना की। ब्रह्मचर्य आश्रम जीवन की सुन्दर, संस्कारयुक्त, विद्या-विभूषित व चरित्रमण्डित, ज्ञानावलोकित, स्वास्थ्यशक्तिपूरित तैयारी है। गृहस्थाश्रम, ब्रह्मचर्याश्रम में सीखे हुए धर्ममर्यादा के आधार पर काम और अर्थ की प्राप्ति की साधना है। जैसे छोटा पौधा जब तक पूरा वृक्ष नहीं बनता तब तक उसका रस-संचय का काल रहता है, उस काल में वह जितना रस संचय कर लेगा इसी के आधार पर आगे चल कर उसमें पूर्ण फूल लगेंगे। अतः ब्रह्मचर्याश्रम में (विद्यार्थी जीवन में) व्यक्ति जैसा स्वास्थ्यरस, शक्तिरस, ज्ञानरस और धर्मरस का संचय

कर लेगा उसी के आधार पर विश्व में उसके जीवन का भवन खड़ा होने वाला है। यदि ब्रह्मचर्य काल में ही उसने ज्ञान ब्रह्म, वीर्य ब्रह्म और धर्म ब्रह्म का संचय नहीं किया तब गृहस्थाश्रम में आने पर बिना धर्म के अंकुश के उसका अर्थ अनर्थ बन जाएगा और उसका काम, भोग बन जाएगा—

धर्मविहीनं कामं भोगं
संयमहीनं कामं रोगम्।

जो पौधा रससंचय के समय धीरज खोकर शीघ्र ही फल पैदा करने की चेष्टा करता है उसका फल भी कमजोर होगा, कम होगा और कीड़ा लगा हुआ होगा और वह वृक्ष भी जल्दी समाप्त हो जाएगा। गृहस्थाश्रम के काम और अर्थ के उत्तम फल ब्रह्मचर्य के धर्मरस संचय पर निर्भर करते हैं। जिस पौधे को उचित खाद-पानी मिलता है जिसका पोषण उत्तम ढंग से होता है, वही उत्तम फल दे सकता है। ब्रह्मचर्य से भ्रष्ट व्यक्ति कभी सफल गृहस्थ नहीं बन सकता। जिसका ब्रह्मचर्य नष्ट है उसका ब्रह्मचर्य भ्रष्ट है। उसका गृहस्थ जीवन भी नष्ट होगा।

गृहस्थाश्रम एक धर्म है। केवल पश्चिम के दृष्टिकोण का एक Social contract भर नहीं है। यदि विवाह को केवल सामाजिक ठेका मान लिया जाए तब उसमें धर्म, ईश्वर या समाज मर्यादा पर कोई विचार नहीं रहता। ठेका दो व्यक्तियों के बीच होता है, वह दोनों में से किसी की इच्छा से तोड़ा जा सकता है। जैसे आर्थिक मामलों के ठेके होते हैं उसी प्रकार से विवाह को भी एक लेन-देन या ठेका मान लेना गृहस्थ धर्म का अपमान है। भारतीय परम्परा में विवाह एक कभी न टूटने वाला धर्मबंधन है।

ठेका परस्पर के स्वार्थों की पूर्ति हेतु एक व्यापारिक समझौता है। किन्तु गृहस्थ धर्म ईश्वर और समाज को साक्षी मानकर निःस्वार्थ कर्तव्यपालन की प्रतिज्ञा है।

पश्चिम में विवाह को एक साझीदारी Partnership माना जाता है, किन्तु भारत में यह साझीदारी न होकर सहधर्म है। पत्नी, जीवनसंगिनीमात्र न होकर सहधर्मिणी बन जाती है। यदि किसी पुरुष के साथ कोई स्त्री किसी कर्मशाला में काम करती है तब सहकर्मिणी होगी। यदि साथ-साथ पढ़ती है तो सहपाठिन् होगी। यदि साथ-साथ यात्रा करती है तो सहगामिनी होगी। संग रहती हो तो वह संगिनी होगी। यदि साथ-साथ व्यवहार करती है तो साझीदार होगी। किन्तु साथ-साथ धर्मपालन करती हो तो वह सहधर्मिणी होगी। भारतीय विवाह में पति और पत्नी मिलकर साथ-साथ पंच महायज्ञों एवं समस्त कर्तव्यों एवं धर्मों का पालन करने का व्रत लेते हैं।

वे काम के सहचर नहीं धर्म के संगी हैं। अत: उनकी सांसारिक सुखोपभोग की सारी कामनायें धर्म पर आधारित, धर्म से अनुमोदित तथा धर्मपालन के लिए ही है। पश्चिम में विवाह काम का लाइसेंस बन जाता है, किन्तु भारत में विवाह धर्म के मांगलिक प्रकाश में कामवासना का पावन परिष्कार है। यह कर्तव्य के राजमार्ग से होकर धर्मदेवता के पावन मन्दिर की दिव्य यात्रा है।

पश्चिम में विवाह को Sex relation कामसम्बन्ध माना जाता है। किन्तु भारत में विवाह कामसम्बन्ध न होकर धर्मसम्बन्ध है।

जहां ब्रह्मचर्य एक स्वतंत्र आश्रम के रूप में प्रतिष्ठित है, वहां ब्रह्मचर्य एक दैवीय गुण है जो सभी आश्रमों में परमोपयोगी है। जो गृहस्थी होकर भी संयम से चलता है वह गृहस्थाश्रम में ब्रह्मचर्य का पालन करता है। इसी प्रकार वानप्रस्थ और संन्यास में भी ब्रह्मचर्य की बड़ी महत्ता है। भारत में विवाह कामवासना की पूर्ति का लाइसेंस नहीं है वरन् कामवासना के परिष्कार का अलौकिक प्रयोग है। गृहस्थाश्रम में पति-पत्नी के यौनसम्बन्धों में धर्मोनुमोदित मर्यादा रहती है। स्वच्छन्द एवं निर्बन्ध यौनाचार की अनुमति गृहस्थाश्रम में भी नहीं है। उससे रज-वीर्य का नाश होकर स्वास्थ्य, मनःशक्ति, बुद्धि, तेज, ओज सभी का विनाश हो जाता है।

वीर्य एक ब्रह्मशक्ति है जो मूलाधार के पास एक कुण्डलित (सर्पिल Spiral) कुण्डली मारी हुई सर्पिणी के समान सुप्त पड़ रहती है। जिस प्रकार कुण्डली मारी हुई सर्पिणी छोटी-सी दिखती है किन्तु कुण्डली खुलने पर उसकी असली लम्बाई का ज्ञान होता है। जिस प्रकार एक तार का चक्राकार स्प्रिंग या Spiral छोटा दिखाई देता है किन्तु खुलने पर उसकी लम्बाई का पता चलता है, उसी प्रकार जो एक विराट् शक्ति हमारे मूलाधारचक्र में कुण्डलित पड़ी रहती है उसे कुण्डलिनी शक्ति कहते हैं। वह वीर्य ही वीरता का मूल मंत्र है। जिसने वीर्य रक्षा नहीं की वह दुर्बल पामर कभी वीर नहीं बन सकता, शारीरिक बल का विकास कर गुण्डा भले ही बन जाए। वीरता तन और मन की वह शक्ति है जो वीर्य की रक्षा से विकसित होती है और मानव को अलौकिक कृत्य करने में समर्थ, इतिहास निर्माता एवं मानवता का परित्राता बना सकती है। महावीर (हनुमान) दुधमुँहें बच्चे के रूप में एक बार अपनी माता अंजनी के हाथ से एक पत्थर की शिला पर गिर गए और शिला चूर-चूर हो गई। जब राम-रावण युद्ध में हनुमान ने रावण को एक घूँसा मारा तो रावण रथ से नीचे जा गिरा। तब अंजनी माता ने अफसोस किया कि यदि मेरे दूध में अधिक बल होता तो हनुमान के एक घूँसे से रावण का प्राणांत ही हो जाता। वीर माता वीर पुत्रों की निर्माता होती है।

माता निर्माता भवति

हनुमान निश्चय ही रावण को मार सकते थे किन्तु मर्यादा की दृष्टि से श्रीराम के हाथ से रावण का संहार उचित जानकर उन्होंने रावण का अपने हाथ से संहार नहीं किया। वीर्य के बल से ही वज्र के अंगों वाले महावीर बजरंगबली बने। भीष्म पितामह का तनबल, मनोबल, प्रतिज्ञाबल, युद्धबल और बुद्धिबल सभी कुछ वीर्य का ही वरदान थे। महाराणा प्रताप, शिवाजी अपने चरित्रबल से ही इतिहास में अमर वीर बनकर पूजित हुए। गुरु तेगबहादुर ने विवाह के बाद लगभग 20 वर्ष तक तपस्या करके एक पुत्र उत्पन्न किया गुरु गोविन्द सिंह जिसने वीरता और बलिदान की एक अभूतपूर्व मर्यादा स्थापित कर दी। स्वामी विवेकानन्द, रामतीर्थ, दयानन्द आदि अपने ब्रह्मचर्य के बल से ही आत्मविजय और आध्यात्मिक विश्वविजय करने में समर्थ हुए। इस प्रकार बिना वीर्य रक्षा के कोई वीर नहीं बन सकता।

जिस प्रकार पानी का प्रवाह प्रायः नीचे की ओर ही होता है और पानी का फव्वारा ऊपर की ओर उठाने के लिए वायु के नोदन का उपयोग करना पड़ता है। उसी प्रकार सामान्य व्यक्ति अधोरेतस होता है। उसका वीर्य नीचे की ओर बहकर नष्ट होता रहता है। यदि किसी 6 खण्ड के भवन में सबसे नीचे के नल खुले हों तो ऊपर के खण्डों में पानी कैसे चढ़ेगा? नीचे के नल बंद करने से ही पानी ऊपर चढ़ सकता है। यदि पानी में दबाव कम हो तो वायु के नोदन से पम्प का प्रयोग कर पानी को ऊपर चढ़ाया जाता है। उसी प्रकार मानव शरीर में जो वीर्य शक्ति नीचे की ओर बहकर नष्ट हो जाती है उसे संयम एवं इन्द्रियनिग्रह द्वारा पतन से रोककर ऊपर उठाने का प्रयास किया जाता है। शरीर के भीतर में षड्चक्रों के अष्ट मण्डलों में धीरे-धीरे वीर्य शक्ति ऊपर उठती है। उसे ऊपर उठाने में प्राणायाम के द्वारा प्राणवायु के नोदन की शक्ति से सहायता ली जाती है। जिसकी वीर्य शक्ति ऊपर की ओर उठती है उसे ऊर्ध्वरेतस कहते हैं। मिट्टी का तेल यदि धरती पर बिखरा हो तो उसे जलाने पर साधारण-सा प्रकाश होता है। ढिबरी में तेल बाती के माध्यम से तनिक ऊपर उठता है इसलिए कुछ प्रकाश होता है। लालटेन में कुछ अधिक प्रकाश होता है। किन्तु जब पैट्रोमैक्स में उसी तेल को पम्प करके वायु के नोदन से ऊपर उठाया जाता है तब वही तेल अत्यन्त उज्ज्वल, प्रखर प्रकाश देने लगता है। वीर्य शक्ति ऊपर उठने से मन को जाग्रत् करती है, बुद्धि को प्रकाशमान करती है। सूक्ष्म तत्त्वों को समझने वाली अत्यन्त निर्मल बुद्धि को प्रज्ञा कहते हैं। ऊपर उठती हुई वीर्यशक्ति प्रज्ञा को तेजस्वी बना देती है। तेज और ऊपर उठकर ओज में परिवर्तित हो जाता है। ब्रह्मरंध्र में पहुंचकर यह शक्ति त्रिकालदर्शिनी प्रज्ञा बन जाती है।

कुण्डलिनी-शक्ति वह शक्ति है जो तपस्या के द्वारा शक्तिमान से मिलना चाहती है। मानव शरीर का मेरुदण्ड एक मेरु (पर्वत) है। इसमें लगभग 30-32 अस्थियां एक के ऊपर एक टिकी हुई हैं। जैसे पर्वत पर शिलाओं पर शिलायें टिकी होती हैं। इस पर्वत के सहारे शक्ति (पार्वती) तपस्या करती हुई धीरे-धीरे ऊपर उठती है। इस कुण्डलिनी-शक्ति के ब्रह्मरन्ध्र में पहुंचने पर शिव-शक्ति का मिलन हो जाता है। उस समय योगी जो अनहद नाद सुनते हैं वह शिव-पार्वती के विवाह के बाजे हैं। उस शिव की बरात में पंच महाभूत, भूतगणों के रूप में बराती बनकर आते हैं। समस्त देवता भी इस दृश्य का आनन्द लेते हैं और पुष्पवृष्टि करते हैं। यह प्रकृति-पुरुष का मिलन, शिव-शक्ति का संयोग, शिव-पार्वती का दिव्य विवाह एक आध्यात्मिक अलंकार एवं जीवन में सर्वोच्च साधनासिद्धि का सुन्दर चित्र है।

भारतीय विवाह में वर-वधू को यही आशीर्वाद दिया जाता है कि शिव-पार्वती के अखण्ड अविभाज्य मिलन के समान तुम्हारा सती-स्वामी का मिलन हो। अत: भारतीय विवाह संसार के सब कर्तव्यों की परिपूर्ति के साथ-ही साथ अन्त में सर्वोच्च पद प्रभुप्राप्ति के लिए आध्यात्मिक साधना है। इसे विवाह के आठ प्रकारों में सर्वोच्च ब्राह्म-विवाह कहा जाता है। वसिष्ठ-अरुंधती, शिव-पार्वती, श्रीरामकृष्ण परमहंस एवं शारदा माता का विवाह ऐसी आध्यात्मिक साधना में परस्पर सहयोग करने वाला ब्राह्मविवाह ही था।

सबसे बड़ी पूंजी जो माता-पिता अपने बच्चों के लिए उत्तराधिकार के रूप में छोड़कर जा सकते हैं, वह है चरित्र की। यौनाचार में पवित्रता (Chastity)—जहां पश्चिम में विवाह कामवासना पर आधारित है वहां भारतीय विवाह सदाचार व सतीत्व पर आधारित है। ऐसे पावन गृहस्थाश्रम की वाटिका में ही महापुरुषरूपी फूल खिलते हैं—

पिता यस्य सदाचारी माता यस्य पतिव्रता।
कांचन कामिनीं दृष्ट्वा न तस्य चलति मनः।।

अर्थात् जिसके पिता सदाचारी हैं और माता पतिव्रता है ऐसे पवित्र दम्पती की जो संतान होगी उसका मन कांचन और कामिनी को देखकर चलायमान नहीं होगा। इसलिए सदाचारपूर्ण गृहस्थी सारी मानवता को चरित्रवान बनाने की कुंजी है। इसकी तुलना में पश्चिम की भौतिकवादी कामपरायण सभ्यता में जो कांचन और कामिनी की अंधी भूख, नंगा नाच नाच रही है उसका चित्रण निम्न प्रकार से किया जा सकता है—

पिता यस्य कदाचारी माता च पतिवंचिका।
कांचन कामिनी दृष्ट्वा तस्य हि चलति मनः।।

भारतीय संस्कृति धर्म और मोक्ष पर अधिक बल देती है तो पाश्चात्य सभ्यता अर्थ और काम पर ही अधिक बल देती है। भारतीय संस्कृति में अर्थ और काम को उचित स्थान दिया गया है किन्तु उसे धर्म और मोक्ष के सिर पर नाचने की अनुमति नहीं दी गई। उन्हें धर्म के शासन में रहकर धर्म की सेवा करते हुए मोक्ष मार्ग में सहायक होना है। इसी दृष्टिकोण से पवित्र गृहस्थी मोक्ष की सुदृढ़ सीढ़ी बन जाती है।

गृहस्थाश्रम ही समाज में चारित्र्य-पावित्र्य एवं स्थायित्व का आधार है। बच्चे सदाचारी माता-पिता से चारित्र्य के संस्कार पाते हैं। वे पवित्र विचार और पवित्र आचार अपने बड़ों से ही सीखते हैं। इस दृष्टिकोण से जहां सदाचारी माता-पिता अपनी भावी संतानों को सदाचार का संस्कार देकर समाज, राष्ट्र और विश्व मानवता का सुन्दर निर्माण करते हैं वहां कामुक एवं स्वार्थी माता-पिता अपनी भावी संतानों को चोर, लम्पट, ठग एवं कदाचारी बनाने का सामाजिक पाप कर रहे हैं।

A family is the noblest cradle of all social and moral virtues.

एक परिवार समस्त सामाजिक एवं नैतिक सद्‌गुणों के शिक्षण का सबसे श्रेष्ठ पालना है। मनुष्य जब संसार में आता है तब अपने साथ पशुप्रवृत्तियों को लेकर आता है। ये पशुप्रवृत्तियां मनुष्य की प्रकृति है। यदि किसी भी जीवित वस्तु को उसकी प्रकृति पर छोड़ दिया जाता है तो वह विकृति की ओर ले जाती है। इसलिए उसका परिष्कार करना उसकी संस्कृति की आवश्यकता होती है—

संस्काराः परिष्कारः मानवमानसशोधकाः।
तेषां परम्परा श्रेष्ठा संस्कृतिरित्यभिधीयते।।

अर्थात् मानव मन का परिष्कार एवं शोधन करने वाले जितने भाव या कार्य हैं वे सब संस्कार कहलाते हैं। उन्हीं संस्कारों की दिव्य परम्परा का नाम संस्कृति है। क्योंकि प्रत्येक मानव का जन्म किसी न किसी परिवार में होता है इसलिए उसके संस्कारों की श्रृंखला भी परिवार से प्रारम्भ हो सकती है। सबसे प्रथम माता-पिता द्वारा उत्तम संतान के लिए पवित्र संकल्प पुंसवन संस्कार कहलाता है। माता-पिता के संकल्प की छाप बच्चे के मन पर पड़ती है। माता कुंती ने पुत्र प्राप्ति के लिए जैसा-जैसा संकल्प किया वैसे-वैसे गुणों वाले पुत्र प्राप्त किए। माता जीजाबाई ने अपने पवित्र दृढ़संकल्प के आधार पर शिवाजी जैसा धर्मरक्षक वीर पुत्र प्राप्त किया तथा बाद में शैशव के संस्कारों से उसका समुचित विकासकर इतिहास परिवर्तन का चमत्कार कर दिखाया।

वर-वधू

एक आदर्श गृह में वधू का आगमन होने पर उस गृह की चेतना के मेहंदी रच जाती है। वधू आती है, रजनी-गन्धा बन कर, रात की रानी बनकर, प्रेम की निर्झरी बन कर, माधुर्य की हिलोर बन कर। उसके आने पर घर के छोटे शिशु से लेकर पोपले मुँह वाले दादा-दादी में प्रेम की लहरियाँ उठने लगती हैं। घर में आशीर्वाद, आनन्द व प्रेम का वर्षण होने लगता है। वह आती है उस घर की स्वप्न-चेतना को इन्द्रधनुषी बनाती हुई, उस गृह की वंश-बेल को पुष्पित करती हुई। वह आती है उस वर के हृदय की गहराई में स्थित उस द्वार को खोलने के लिए, जिसे अन्य कोई नहीं खोल सकता, खोल कर हृदय में बस जाने के लिए।

वधू के आने से वर का प्रेम वधू के साथ स्वाभाविक रूप से बहेगा। इससे बुद्धिमती माँ को ईर्ष्या न करके नई परिस्थिति में स्वयं को थोड़ा अलग करके अपने कर्तव्यों को नये तरीके से व नवीन उत्साह से निभाते रहना चाहिये।

विवाह संस्कार के समय, अग्नि की साक्षी में एवं कुटुम्बियों की उपस्थिति में वर द्वारा बोले गये सप्त-पदी के मन्त्र विमर्शनीय हैं। उनका भावार्थ है—

'मैं विष्णु-रूप तुझे साथ ले चल रहा हूँ—अन्न के लिए—सर्जनात्मक कर्म के लिए, ऊर्जा-प्राप्ति के लिए, भौतिक सुखों के लिए, आत्म-सुख के लिए, वनस्पति-जगत् व प्राणी-जगत् को—विराट को अपनाने के लिए, ऋतुओं के साथ क्रीडा करते हुए साथ-साथ काल से परे चले जाने के लिए; हे सखे! मेरे साथ सात पद चल कर पूर्ण मित्रभाव को प्राप्त कर तथा सब प्रकार से मेरा अनुसरण कर।'

पति-पत्नी एक दूसरे का परस्पर रक्षाकवच होते हैं। दो विपरीत धाराओं के परस्पर मिलने से प्रथम में थोड़ा मधुर संघर्ष होता है फिर थोड़े अन्तराल में परस्पर एक हो जाते हैं। ऐसे ही पति-पत्नी में थोड़ी भिन्न-भिन्न विचार परम्परा और संस्कार परम्परा होने से प्रथम में मधुर संघर्ष हो सकता है फिर कुछ अन्तराल में दोनों को एक मन—एक प्राण—एक आत्मा हो जाना चाहिए।

वर-वधू परस्पर एक-दूसरे के लिए दर्पण हैं—सँवरने के लिए, वर-वधू एक-दूसरे के लिए महाकाव्य हैं—अक्षर-अक्षर पढ़ते हुए परम-अर्थ को जानने के

लिए। वर वधू में प्रविष्ट होकर उसकी आत्मा का स्पर्श करते हुए, परम प्रेमास्पद परमानन्द स्वरूप स्वात्मा का साक्षात्कार कर ले और वधू वर में प्रविष्ट होकर उसकी आत्मा का स्पर्श करते हुए परम प्रेमास्पद, परमानन्द स्वरूप स्वात्मा का साक्षात्कार कर ले—यह परम प्रयोजन है दाम्पत्य जीवन का।

पति-पत्नी की एक-दूसरे की काम-इच्छा के बिना रति-क्रिया में प्रवृत्ति अधर्म है; विवाहेतर सम्बन्ध तो आत्म-द्रोह है। गृहस्थी जितना अधिक निरंकुश रति-क्रिया करेगा उतना-उतना पति-पत्नी का परस्पर प्रेम घटता जाएगा और यह एक-दूसरे के प्रति घृणा का रूप भी ले सकता है।

निरंकुश काम-इच्छा की पूर्ति मनुष्य को इन्द्रियों का दास बनाती है। यह दासता मनुष्य को बेचैन, असंतुष्ट, चिड़चिड़ा, क्रोधी, अशान्त, दुःखी और अधोगामी बना देती है।

गर्भाधान-संस्कार, सन्तान प्राप्ति, दाम्पत्य जीवन के रहस्य को समझने के लिए गीता के चौदहवें अध्याय के तीसरे श्लोक के अर्थ पर मनन करना चाहिये।

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत।।

हे अर्जुन! मेरी महत्-ब्रह्मरूप मूल-प्रकृति सम्पूर्ण भूतों की योनि है अर्थात् गर्भाधान का स्थान है और मैं उस योनि में चेतन समुदायरूप गर्भ को स्थापन करता हूँ। उस जड़ चेतन के संयोग से सब भूतों की उत्पत्ति होती है।

कन्या-भ्रूण हत्या, पुत्र की अपेक्षा पुत्री से तुच्छ व्यवहार, पुत्री को शिक्षा से वंचित रखना, बाल-विवाह, दहेज की प्रथा, विधवाओं से उपेक्षा का व्यवहार आदि कुरीतियाँ भारतीय संस्कृति में आई हुई विकृतियाँ हैं, इनका निर्मूलन अविलम्ब होना चाहिये।

परम पूज्य गुरुदेव स्वामी संवित् सोमगिरिजी की
पुस्तक 'जीवन रहस्य' से साभार

मातृ-शक्ति

भारतीय संस्कृति को आत्मसात् कर जीने वाली योगिनी माँ शिशु को दूध पिलाते-पिलाते उसे सत्य-शील-सदाचार के संस्कारों को पिला देती है। माँ द्वारा प्रदत्त घुट्टी शिशु-चेतना के लिए संजीवनी बूटी का काम करती है। माँ अपनी दृष्टि से, स्पर्श से, सहलाने से, चुम्बन से शिशु को दिव्य बनाती रहती है। अपनी लोरी में अनहद नाद को व्यक्त करती है, माँ। अपने गीतों में, भजनों में, संस्कृति के स्नेह को, शिव-शिवा की कृपा को अवतरित करती है और शिशु के अधरों-कपोलों में उषा के रंग भरती है, माँ। गंगा सी माँ शिशु को तरल गीत गाती नहलाती है। दिगम्बर शिव से शिशु को वस्त्राभूषण से अलंकृत करती है, दृष्टि न लगे इसलिए कृष्णटीका लगाती है, माँ। अमावस से अंजन ले उसकी आँखों में लगाती है, माँ। अपने लाडले की आँखों में सूर्य की रोशनी भरती है, माँ। माँ उसका परिचय करवाती है—क्षितिजों से, आकाश की नीलिमा से, तारों से, चन्दामामा से, मेह (बादल) बाबा से, दामिनी से, उमड़ती घटाओं से, समीर के सरसराने से, आँधी-तूफान से। बच्चे को नंगा नहाने देती है—वर्षा की रिमझिम में, हवाओं को, धूप-चाँदनी को उसे दुलराने देती है, माँ। भोर से, मध्याह्न से, साँझ से, रात से, ऋतुओं से, कोयल की कुहुक से, मोर के नर्तन से, पक्षियों के कलरव से, कुत्ते से, बिल्ली से, बन्दर से, चींटी से, मच्छर-मक्खी से, तितली से, भौंरों से, जुगनू से एक वरेण्य, विस्मयान्वित संबंध से शिशु को जोड़ देती है, माँ। दादा-दादी, नाना-नानी, मामा-मामी, काका-काकी, मौसा-मौसी, फूफा-फूफी, भाई-बहिन, पड़ोसी सबको उसके मन-मंदिर में बसा देती है, माँ। माँ ही बताती है कि गाय माता है, धरती माता है, गंगा माता है, गीता माता है, हर बालिका, हर स्त्री जगदम्बा का प्रतिरूप है। माँ उसका प्रभु के विविध रूपों से परिचय कराती है। माँ घुटनों के बल चलते हुए को ऊँचे आकाश की ओर उठाती है। माँ, उसे ज्योतिर्मय सन्मार्ग पर आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है उसकी अंगुली थाम कर। माता-पिता, भाई व कुटुम्ब-जनों के प्रेममय, रस-मय, मर्यादापूर्ण वातावरण में शिशु का विकास होने लगता है। ऐसी शास्त्रीय, संस्कृतिमय देख-भाल से बालक की कुण्ठायें हटती हैं, ग्रन्थियाँ खुलती हैं, उसकी चेतना ऊर्ध्वमुखी हो जाती है।

भोग लगने के पश्चात् भोजन करना, बाँट कर खाना, मूक प्राणियों को भोजन देना, प्राणियों के कष्ट को दूर करना, आदि-आदि बहुत सी धर्मपूर्ण बातें नन्हा बालक देखकर, सुनकर सीखने लगता है।

भारतीय संस्कृति से ओत-प्रोत अभिभावक बालक को विद्या के आदर्श मंदिर में भेजते हैं—पाश्चात्य संस्कृति से जोड़ने वाले विद्यालय में नहीं भेजते। आदर्श विद्यालय के आचार्य भी बालक-किशोर के शारीरिक, नैतिक, बौद्धिक व आध्यात्मिक विकास हेतु सदा प्रयत्नशील रहते हैं।

इस प्रकार किशोर अवस्था में आते-आते बालक-बालिका भारतीय संस्कृति के जीवन दर्शन के संस्कारों को दृढ़ता से धारण करने लगते हैं। वेद-उपनिषद्, पुराण, मनुस्मृति, रामायण, महाभारत, गीता से उसका सम्बन्ध जुड़ने लगता है।

ब्रह्म, गौरी-शंकर, लक्ष्मी-नारायण, सरस्वती, गायत्री, सावित्री, ब्रह्मा, सीता-राम, राधा-कृष्ण, गणेश, कार्तिकेय, हनुमान आदि देव रूप किशोर की बुद्धि को दिव्य बनाने लगते हैं।

राम-कृष्ण का दुष्ट-दलन, धर्मरक्षक, संस्थापक रूप किशोर में शौर्य भरता है, हरिश्चन्द्र, रन्तिदेव, जनक, लव-कुश, विक्रमादित्य से लेकर, प्रताप-शिवाजी, लक्ष्मीबाई, दुर्गावती, सुभाषचन्द्र, भगतसिंह, वीर सावरकर आदि के चरित्र किशोर के अन्तःकरण में सत्य, त्याग और बलिदान का संस्कार भरते हैं।

मैत्रेयी, गार्गी से लेकर मीरा, लल्लेश्वरी, आण्डाल, शंकराचार्य, तुलसी, सूर, रामकृष्ण परमहंस आदि के चरित्र किशोर के हृदय में प्रभु-भक्ति का संचार करते हैं।

इस पवित्र भारतीय भूमि से जुड़ता हुआ, इस सनातन संस्कृति को अपनाता हुआ किशोर युवा होने लगता है। मातृमान, पितृवान, आचार्यवान युवक अपने जीवन के परमलक्ष्य (परमेश्वर प्राप्ति अर्थात् आत्म-साक्षात्कार) का निर्धारण कर अपने अध्ययन में, अपनी प्रतिभा को निखारने व प्रकट करने में प्रमाद नहीं करता। देव, पर्यावरण, संस्कृति, राष्ट्र, धर्म, कुल आदि सबके प्रति अपने कर्तव्य का निश्चय कर, उनको पूरा करने में सदा तत्पर रहता है।

ऐसा दृढ़ बलिष्ठ, शिष्ट संस्कृत, उत्साह से परिपूर्ण कर्तव्यनिष्ठ युवक ही जीवन-भर साधना करता हुआ समाज के तथा राष्ट्र के अभ्युदय और निःश्रेयस का निमित्त बनता है।

परम पूज्य गुरुदेव स्वामी संवित् सोमगिरिजी की
पुस्तक 'जीवन रहस्य' से साभार

स्त्रीत्व, मातृत्व

विश्व-वाङ्मय का पावनतम नाम 'माता' ही है तथा मानवीय संबंधों में पावनतम संबंध भी माता का ही है। भगवान् मनु ने कहा है कि दस उपाध्याय मिलकर एक आचार्य के तुल्य होते हैं। सौ आचार्य मिलकर एक गुरु के तुल्य होते हैं। हजार गुरु मिलकर एक पिता के तुल्य होते हैं। दस हजार पिता मिलकर भी एक माता की तुलना नहीं कर सकते।

माता की इस अलौकिक महत्ता के कारण ही वेद में धरती पर जीवित देवों की पंक्ति में सर्वप्रथम 'मातृ देवो भव' का उपदेश दिया गया है। तदुपरांत ही 'पितृ देवो भव', 'आचार्य देवो भव' एवं 'अतिथि देवो भव' का उपदेश है। इसी मातृमहिमा के कारण हमने पूज्यतम वस्तुओं, व्यक्तियों, संबंधियों, प्रतीकों एवं तत्त्वों को माता का सम्मानजनक संबोधन (ओहदा) दिया, यथा—दुर्गा माता, पार्वती माता, लक्ष्मी माता, सरस्वती माता, गायत्री माता, गंगा माता, गीता माता, भारत माता, गौ माता, सती माता, शक्ति माता इत्यादि। स्वयं भगवान् के लिए भी हम गाते हैं, 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव।' भगवान् पहले स्थान पर माता ही है, पिता तो दूसरे स्थान पर है। श्री रामकृष्ण परमहंस कहते थे—'हे भगवान्! मैं किस नाम से आपको संबोधित करूँ? मानव के शब्दकोश में माँ से बढ़ कर पवित्र शब्द कोई दूसरा नहीं है, जिससे मैं आपको पुकारूँ। अतः मैं शिशु के समान आपको माँ-माँ कह कर ही पुकारता हूँ।'

बाला क्षुधार्ता जननीम् स्मरन्ति।

माता रूप में परम तत्त्व की उपासना का रहस्य यह भी है कि माँ वात्सल्य-मूर्ति है। वह अपने सुपुत्रों एवं सत्पुत्रों पर तो कृपा बरसाती ही है, किन्तु अपने कुपुत्रों के उद्धार हेतु उन्हें भी उस वात्सल्य से वंचित नहीं करती। माँ के कठोर अनुशासन में भी वात्सल्य छिपा रहता है। भगवान् शंकराचार्य ने ठीक ही कहा है—

कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।

पुत्र कुपुत्र भले ही हो जाय, माता कभी कुमाता नहीं होती। स्वामी विवेकानंद ने लिखा है—'सारी दुनिया द्वारा ही क्यों स्वयं अपने द्वारा भी तिरस्कृत कपूत के

भी होंठ जब सूखने लगते हैं तो वज्र से वज्र हृदया माता के उर से भी वात्सल्य की अमृतधारा उसी प्रकार फूट निकलती है जैसे हिमालय को चीरकर गंगा नदी फूट निकलती है।' निष्काम कर्मयोग की मूर्ति—स्वामी रामतीर्थ ने अमरीका के भोगवादी लोगों को कहा—'आप कहते हैं कि भारत का निष्काम कर्मयोग पश्चिम के अत्याधुनिक अर्थपरायण विज्ञानवादी देशों में सफल नहीं हो सकता। आपके घर में ही एक यज्ञमय जीवन की मूर्ति, निष्काम कर्मयोग की साक्षात प्रतिमा विराजमान है, जिसके बिना न आप का अस्तित्व बचेगा, न आपके परिवार का, न समाज का और न देश का। वह है आपकी माता जो स्वयं कष्ट सह कर आपको गर्भ में धारण करती है, स्वयं भूखी रहकर आपका पालन-पोषण करती है, सब को खिलाने के पश्चात् स्वयं खाती है, स्वयं गीले में, मल-मूत्र में लेटकर बच्चे को सूखे में सुलाती है। अपने प्राणों को जोखिम में डालकर शिशुओं को रोग, संकट, क्लेश और दुर्घटना से बचाती है। सचमुच, जिस दिन माता स्वार्थी बन जायेगी, उस दिन सारी मानवता मर जायेगी। एक भी मानव माँ के त्याग के बिना बचने नहीं पावेगा। माँ निष्काम कर्मयोग की मूर्ति है।

जगत्-जननी—माता जगत्-जननी है। सारी मानवता माँ की कोख से ही जन्म लेती है। अतः माता सारे जगत् की जननी है। मोहवश कोई अपनी माँ और पराई माँ, अपनी संतान व पराई संतान का भेद करते हैं, किन्तु विवेक से देखें तो अनेकता में एकता के दर्शन होंगे तथा सारे जगत् की अनेक दिखने वाली माताएँ एक ही जगज्-जननी-जगदम्बा, भवानी का रूप प्रतीत होंगी।

नारीत्व ही सृष्टि का आधार—नारीत्व की वास्तविक महिमा मातृत्व के कारण ही है। मातृत्व में ही नारीत्व पूर्ण विकसित होता है। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा है—अगर धरती के सारे नर मर भी जावें तो भी सृष्टि चलती रहेगी, क्योंकि कुछ माताओं के गर्भ में बच्चे बीजरूप में अंकुरित हो रहे होंगे, उनसे पुनः सृष्टि आगे विकसित हो सकेगी। किन्तु यदि संसार की नारी जाति का अंत हो जाता है तो सारी सृष्टि का अंत आ ही जायेगा।' नर केवल बीजवपन करता है मानव जाति को अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित, सुफलित करने की शक्ति तो नारीत्व, किंवा मातृत्व में ही है।

पश्चिम ने नारी को भोग्या माना है, भारत ने पूज्या माना है। 'मातृवत परदारेषु।'—में दूसरों की स्त्रियों को, पर-नारी को माता के समान आदर देने का उपदेश भारत ने दिया है, किन्तु श्री रामकृष्ण परमहंस तो मातृत्व के इतने अनन्य उपासक हो गये थे कि स्वयं अपनी विधिवत् परिणीता धर्मपत्नी को भी माता भवानी के रूप में पूजने लगे। अन्य गृहस्थी भी चाहे अपनी पत्नी को सीधे माता कह कर नहीं संबोधन करते, किन्तु उसे अपनी प्रिया, प्रियतमा, पत्नी, वाइफ

(wife), डार्लिंग (darling) न पुकार कर अपने बच्चों की माँ (रामू की माँ, श्यामू की माँ आदि) कह कर संबोधन करते हैं। नारीत्व मातृत्व में ही पूजित-सम्मानित होता है।

माता दीक्षाता भवति—मानव जाति की प्रथम गुरु माता ही है। वही अपने शिशु को प्रथम संस्कार देती है। वही पवित्र जीवन और धर्म का प्रथम मंत्र देने वाली दीक्षाता है। मदालसा जैसी माताएँ अपने शिशुओं को लोरियाँ सुनाकर ब्रह्मज्ञानी बना देती है।

शुद्धोऽसि रेतात् न तेऽस्ति नाम्, कनं हि ते कल्पनया धुनैव।
पंचात्मकं देहमिदं ज तेऽस्ति, जैवास्य ते रोदिषि कस्य हेतोः।।

'हे तात्! तू तो शुद्धात्मा है, तेरा कोई नाम नहीं है। यह कल्पित नाम तो तुझे अभी मिला है। यह शरीर भी पंचभूतों का बना है। न यह तेरा है, न तू इस का है, फिर किसलिये रो रहा है?'

माता विदुला, माता कुन्ती, माता जीजाबाई, माता सुभद्रा आदि ने अपने बच्चों को जीवन की प्रथम लोरियों से ही तेजस्वी बना दिया था।

माँ की संकल्प शक्ति—माता के संकल्प में महान् शक्ति छुपी हुई है। फ्रांस की एक महिला ने घरों के द्वारों पर विदेशियों के आक्रमण की तलवारों के प्रहार-चिह्न देखकर सोचा—क्या मेरे देश में ऐसा वीर नहीं जनम ले सकता है, जो फ्रांस की शक्ति की धाक संसार में बिठा दे? उसी माँ के गर्भ से नेपोलियन बोनापार्ट का जन्म हुआ। जर्मनी के भिन्न-भिन्न राज्यों को बिखरा हुआ देखकर एक जर्मन नारी के मन में विचार आया कि क्या मेरे देश को एक करने वाला कोई वीर नहीं होगा? उसी के गर्भ से बिस्मार्क का जन्म हुआ जिसने जर्मन राष्ट्र के एकीकरण का चमत्कार कर दिखाया। जीजाबाई के संकल्प से ही शिवाजी का जन्म हुआ। सरोजिनी नायडू ने लिखा है—'The Hand that rocks the cradle shocks the whole world'. माता का जो हाथ पालने को झुलाता है वह सारी दुनिया को हिला सकता है। उस माता के संस्कारों से जो बालक विकसित होगा वह अपनी कर्तृत्व शक्ति से दुनिया को हिला देगा।

माता निर्माता भवति—माता मानव जाति का निर्माण करने वाली है। सबसे अधिक कोमल संस्कारक्षम शिशु मानस पर वह जिन आदर्शों एवं सिद्धान्तों की छाप डाल देती है वे जीवन भर नहीं मिट सकते। बालक माता से ही मातृभाषा सीखता है, वह दिन-रात माता के आचार-विचार, व्यवहार को देखकर अनेक शिक्षाएं प्राप्त करता है। माता कुन्ती ने भगवान् श्रीकृष्ण के माध्यम से अपने वीर, वनवासी, धर्मात्मा-पुत्रों को संदेश भेजा—'यदर्थं क्षत्राणी सूते स

कालोऽयंसमागतः', 'जिस उद्देश्य के लिए क्षत्रिय माता पुत्र उत्पन्न करती है वह काल आ गया है।' माता जीजाबाई ने शिवाजी को कहा—'यदि तू मेरा पुत्र है तो कल प्रातःकाल तक सिंहगढ़ का किला जीत कर उससे हरा झंडा हटा कर भगवा झंडा फहराता हुआ दिखाओ, अन्यथा तुम्हें पुत्र नहीं मानूंगी।' शिवाजी ने बड़ा जोखिम उठा कर भी नानाजी जैसे विश्वासी सैनिक का बलिदान देकर भी, रातों-रात माता के वचन को पूरा कर दिखाया।

माता परित्राता भवति—माता केवल बच्चों का निर्माण ही नहीं करती, वह उनका परित्राण भी करती है। माता चाहती है कि एक बार उसे माँ कहने के पश्चात् अगले जन्म में पुत्र को किसी अन्य नारी को माँ न कहना पड़े। बच्चा इसी मानव जन्म में मुक्त हो जाये। यदि वह छोटी योनियों में गिर गया तो किसी कूकरी-शूकरी को माँ बनाने से माता का पद लांछित हो जायेगा।

पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई।।
नतरु बांझ भली बादि बिआनी। राम बिमुख सुत तें हित जानी।।
मानस 2/74/1

'यो मा तारयति सैव माता।' जो मुझे तार दे, वही माता है।।

सतीत्व का तेजस्वी स्वरूप—मातृत्व बिना पवित्र सतीत्व के पूजित नहीं बन सकता। रामायण में भगवान् राम ने लक्ष्मण को उपदेश दिया है—

'पिता यस्य सदाचारी, माता यस्य पतिव्रता,
कांचन कामिनीम् दृष्टवा तस्य न चलति मनः।

'जिसके पिता सदाचारी हों तथा माता पतिव्रता हो उनकी संतान का मन कामिनी एवं कंचन को देखकर चलायमान नहीं होता। यदि माता सती ही न होगी तो बच्चों को क्या सत्य सिखायेगी। अतः मातृत्व सतीत्व के चारित्र्य पावित्र्य से ही मंडित होकर पूजनीय बनता है।

'अपनी संतानों के लिये धन की अपेक्षा सच्चरित्रता की विमल सम्पत्ति छोड़कर जाना ही माता-पिता का कर्तव्य है।'

—प्लेटो

पारिवारिक जीवन में केवल धार्मिक नियम ही प्रभावी होते हैं

व्यक्ति और समाज दोनों लौकिक जीवन के दो पृथक् एवं अलग-अलग बिन्दु हैं। दोनों में से किसका महत्त्व अधिक है और किसका कम, इस पर समाजशास्त्रियों में पुराने समय से शास्त्रार्थ चल रहा है। समाज की उपेक्षाकर व्यक्ति को ही पूरा महत्त्व देने से व्यक्ति स्वार्थी बन जाएगा और व्यक्ति को भुलाकर समाजवाद के रेले-ठेल में व्यक्ति व्यक्तित्वहीन हो जाएगा। आवश्यकता इस बात की है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व का भी पूर्ण विकास हो तथा समाज के हितों की भी रक्षा हो। न व्यक्ति समाज को ठुकरा कर स्वार्थी बने और न समाज की भीड़-भाड़ में व्यक्ति अपना व्यक्तित्व ही खो बैठे।

व्यक्ति और समाज दोनों को जोड़ने वाला सूत्र है परिवार। परिवार में व्यक्ति स्वाधीन रहते हुए भी अन्य सदस्यों के प्रति कर्तव्यपालन एवं उत्तरदायित्व का प्रशिक्षण पाता है। अतः परिवार नैतिक एवं सामाजिक जीवन-मूल्यों का सुन्दरतम पालना है। परिवार के झूले में झूलता हुआ व्यक्ति धीरे-धीरे एक सामाजिक प्राणी बनता है। अतः परिवार की उचित शिक्षा व्यवस्था में व्यक्ति एवं समाज दोनों का कल्याण निहित है।

परिवार के सदस्यों को बचपन से ही सदाचार और नेकी के संस्कार कहाँ से मिलेंगे? वेद ने कहा है—मातृ देवो भव। (माता को देवता मानो), पितृ देवो भव। (पिता को देवता मानो)। आचार्य देवो भव (आचार्य को, गुरु को, उस्ताद को देवता मानो)। इस तरह बच्चे को सबसे पहली शिक्षा अपनी माँ की गोदी में मिलती है। वेद की तरह कुरानशरीफ माँ-बाप के एहसान को मान कर उनकी इज्जत करने का उपदेश देता है।—'व बिडल् वालिदैनि इहसानन्....(माता-पिता के साथ नेकी करो)। भारत के ऋषियों ने कहा है—' माता निर्माता भवति' अर्थात् माँ ही इन्सान की सबसे बड़ी निर्माता है। सरोजिनी नायडू का कथन है—'The Hand that rocks the cradle shocks the whole world' अर्थात् 'माता का जो हाथ बच्चे के पालने को झुलाता है वह सारी दुनिया को हिला सकता है।

असल में माँ-बाप द्वारा दी गई शिक्षा के आधार पर ही इन्सानी जिन्दगी की बुनियाद का निर्माण होता है। इसलिए परिवार में मिलने वाली शिक्षा का महत्त्व, उसकी अहमियत जिन्दगी में सबसे ज्यादा है।

शिक्षा का उद्देश्य ही मनुष्य को संस्कारित करना है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि बचपन में दो साल की उम्र से पांच साल की उम्र तक बच्चों में एक ईर्ष्या-अवस्था (Jealousy Age) होती है। उस समय भाई-बहिन एक-दूसरे से छोटी-छोटी बात पर लड़ते-झगड़ते हैं। यदि बहिन को खिलौना या मिठाई मिलती है तो भाई ईर्ष्यावश रोने-चिल्लाने लगता है कि उसे वह चीज क्यों नहीं दी गई। कई बार भाई बहिन की मिठाई छीन लेता है या खिलौना तोड़ देता है। बहिन के रोने पर वह उसे और चिढ़ाता है। तब माँ उसे समझाती है कि बहिन तो देवी होती है उसे छेड़ना, तंग करना पाप है। तब धीरे-धीरे वही भाई परिवार के संस्कारों से संस्कारित हो ऐसा कर्तव्यपरायण बन जाता है, कि वह बड़ा होकर बहिन के लिए अपनी जान और जायदाद को कुर्बान कर देता है।

शिक्षा का सबसे सरल, सहज और स्वाभाविक माध्यम है—धर्म शिक्षा। धर्म का अर्थ ही है—कर्तव्य। जैसे देश की रक्षा करना कर्तव्य है, खुदा की बन्दगी करना कर्तव्य है, दीन-दुःखी की खिदमत करना कर्तव्य है, इसी तरह खुदा की बन्दगी, दीन-दुःखी की सेवा, देश की रक्षा ये सब धर्म ही माने जाते हैं। आजकल सैक्यूलर (धर्मनिरपेक्ष) शिक्षा का और वैज्ञानिक शिक्षा का बड़ा बोल-बाला है। लेकिन माँ-बाप का अदब, खुदा की बन्दगी, इन्सानी हमदर्दी, चरित्र की मजबूती और समाज की सेवा करनी चाहिए, यह कौन से साइंस के उसूल से सिद्ध किया जा सकता है? बुद्ध की अहिंसा, महावीर की जीवदया, ईसा का प्रेम और हजरत मुहम्मद का भ्रातृ-भाव का संदेश, किसी साइंस की लेबोरेट्री से साबित होने वाली चीज नहीं है। ये धर्म के शाश्वत सिद्धान्त हैं जिन्होंने आज तक मानवता को जीवित रखा है। 'If Religion has saved mankind in the past, it would not poison it in future.'

यदि धर्म ने आज तक मानवता को जीवित रखा है तो वह भविष्य में इसे जहर देकर मार नहीं डालेगा। भारतीय मनीषियों ने कहा है—

मातृवत् परदारेषु, परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु, यः पश्यति स पश्यति।।

अर्थात् जो दूसरी स्त्रियों को माँ-बहिन के समान इज्जत देता है, जो दूसरों की दौलत को मैला जैसा गलीज समझता है या खाक जैसा बेकार समझता है, जो

दूसरों की जान को अपने जीवन के समान ही प्यारा समझता है वही सच्चा इन्सान है जिसे ईश्वर ने देखने की सही नजर दी है। कुरानशरीफ में लिखा है—

वमन् अह्याहा

फक अलमा अह्याऽन्नास जमीअन : (कुरानशरीफ 5/35)

'जिसने एक मनुष्य को जिलाया, उसने मानो सारी मानव जाति को जिलाया।'

मानवता को जिन्दा रखना, इन्सान की सेवा करना, खालिक की और खल्क की सेवा करना, इस तरह इन्सान को खुदा तक से मिला देना यही धर्म का उद्देश्य और जीवन का लक्ष्य है। अतः धर्म को जीवन से अलग कर देने से धर्म निष्प्राण हो जायेगा और इन्सानियत मर जायेगी। इसलिए विज्ञान और सैक्यूलरिज्म की तरक्की के साथ इन्सान की इन्सानियत मरती जाती है और वह जालिम दरिन्दा बनकर सोए हुए बेगुनाह इन्सानों पर एटम बम गिराकर मानवता का हत्यारा बन रहा है। मौलाना रूमी की चेतावनी हम सुनें—

तू बराए वस्ल करदन आमदी,
न बराए फस्ल करदन आमदी।

तुझे भेजा था ए इन्सान, बन्दों को मिलाने को,
न भेजा था, कि मानवता, की हस्ती ही मिटाने को।

वेद में प्रार्थना है—'अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्' अर्थात् 'हे परमेश्वर, हमें सुपथ पर, नेकी के रास्ते पर ले चलो। कुरान शरीफ ने इसी भाव को गुंजाया है—

'एहदेनस् सिरातल् मुस्तकीम'

अर्थात् 'या खुदा, हम सब को सीधी राह दिखला'।

यही भाव अन्यत्र है—'Lead Kindly light'

धर्म वही दिव्य कृपा पूर्ण प्रकाश है जो लड़खड़ाती हुई दुर्बल मानवता को भी महानता की ओर, सदाचार की ओर, सत्य की ओर, खुदा की ओर, परब्रह्म परमेश्वर की ओर ले जाता है। यदि बचपन में पारिवारिक जीवन में उस दिव्य प्रकाश का मार्गदर्शन नहीं मिला तो सारी इन्सानियत अपने लक्ष्य से भटक कर हैवानियत की ओर पतित हो जायेगी। धर्म शिक्षा तो सारी इन्सानियत के लिए एक समान ही है। खुदा की बन्दगी, इन्सान की सेवा, हक परस्ती, नेकी, सदाचार, ईमानदारी इत्यादि मजहब-सम्प्रदाय धर्म के ही अंग हैं। धर्म एक है, मजहब अनेक। जैसे धर्म सागर के समान है और मजहब भिन्न-भिन्न नदियों के समान है। नदी पार करने के लिए अनेक घाट एवं अनेक नौकाएं होती हैं। सभी से नदी

पार हो सकती है। अतः नौकाओं को आपस में टकराने की जरूरत नहीं है, न डांड उठाकर लोगों को इस बात पर झगड़ना चाहिए कि कौन नौका कितनी बड़ी या छोटी है और कितनी नई या पुरानी है। किसी भी नौका पर शान्ति से बैठोगे तो संसार नदी के पार हो जाओगे। यदि आपस में झगड़ते रहोगे तो सिर-फुटव्वल भी होगा, नौकाएं भी टूटेंगी और नदी पार न कर डूब जाओगे।

मजहब का अर्थ ही है इन्सान का हजब करने वाला, इन्सान को चमकाने वाला, उसका परिष्कार करने वाला, उसको सुधारने वाला। इसलिए मनुष्य को चमकाने वाले, उसकी इन्सानियत को फरिश्तों जैसा रोशन करने वाले, मजहब का कानून मानवता के मंगलमय विकास के लिए परम अनिवार्य ही है।

मनुष्य को सियासी कानून (राजकीय विधि) द्वारा कभी भी ईमानदार नहीं बनाया जा सकता। राजदण्ड में भय है और डर से इन्सान के अन्दर का भगवान् नहीं जाग सकता, लेकिन धर्म के आत्मस्वीकृत मर्यादा के नियम से इन्सान बिना किसी पुलिस के डण्डे के अपने-आप नेकी की राह पर चलने लगता है। इसलिए भ्रष्टाचार मिटाने के लिए बचपन से ही धार्मिक शिक्षा जरूरी है। रामायण जिन पारिवारिक जीवन-मूल्यों का भण्डार है क्या किसी सरकार के हुक्म से उन्हें सिखाया जा सकता है? क्या सरकारी हुक्म से किसी बेटे को आज्ञाकारी, किसी भाई को त्यागी, किसी स्त्री को सती और किसी प्रजा को ईमानदार बनाया जा सकता है? मेरे बुजुर्ग दोस्त डॉ. अब्दुल लतीफ इस्लामिया कॉलिज, लाहौर में थे। वे रोजाना रामायण पढ़ते थे। वे कहते, 'यह हमारा हिन्दुस्तानी तमद्दुन है। बिना रामायण जैसे आदर्शों के परिवार उजड़ जायेंगे और हमारा समाज नष्ट हो जायेगा।'

प्रसिद्ध क्रान्तिकारी रामप्रसाद बिस्मिल की दूसरे क्रान्तिकारी अश्फाक उल्ला से बड़ी दोस्ती थी, वे उसे अपना छोटा भाई मानते, उसे अपने घर ले जाते और उसे लक्ष्मण कहकर पुकारते। सब की नजर में वह राम-लखन की जोड़ी बड़ी प्यारी थी। वे घर पर साथ खाना खाते, साथ खेलते, साथ देशभक्ति के तराने गाते और अंत में दोनों साथ-साथ फाँसी पर भी चढ़ गये। एक बार अश्फाक उल्ला के पेट में भीषण दर्द हुआ, वे बेहोश हो गये, वे राम-राम चिल्लाने लगे। लोगों ने कहा—'अल्लाह-अल्लाह बोलो।' किन्तु वे राम-राम ही चिल्लाते रहे। जब रामप्रसाद बिस्मिल पहुँचे तो वे उठकर उनके गले से लिपट गये और कहा—'अब मेरा राम आ गया है।' इस दृश्य को देखकर लोगों को रामायण में वर्णित लक्ष्मण की बेहोशी के बाद राम से मिलने की बात याद हो आई। यह हमारी संस्कृति हमारी नस-नस में है। इसने सब के दिलों को जोड़ा है। अश्फाक और बिस्मिल के दिलों को एक बना दिया है, पूरे देश को एक बना दिया है। क्या किसी सैक्यूलर कानून या साइंस के सिद्धान्त से इन्सानों का दिल जोड़ा जा सकता है। पवित्र कुरान

में लिखा है—'अल्लाह ने सब के दिल एक कर दिए हैं। सब के दिलों के भीतर मुहब्बत भर दी है। तुम सारी दुनिया की दौलत खर्च कर देते तो भी सबके दिलों को एक न कर पाते, लेकिन अल्लाह ने सब में मुहब्बत भर दी। बेशक अल्लाह सर्व-समर्थ है, सर्वज्ञ है।'

अन्त में लाला लाजपत की अमर वाणी हम स्मरण रखें—

मेरा मजहब हक परस्ती,
मेरी मिल्लत कौम परस्ती,
मेरी इबादत खल्क परस्ती,
मेरी अदालत मेरा अन्तःकरण है।
मेरी जायदाद मेरी कलम है।
मेरा मन्दिर मेरा दिल है।
और मेरी उमंगें सदा जवान हैं।

। विद्या धर्मेण शोभते।

विद्या धर्म से शोभायमान होती है।

× × ×

दुनिया के महान् धर्मों का 40 वर्षों तक अध्ययन करने के दौरान मुझे इतना पूर्ण, इतना वैज्ञानिक, इतना दार्शनिक और इतना आध्यात्मिक दूसरा कोई धर्म नहीं मिला जितना वह धर्म जिसे हिन्दू धर्म के नाम से जाना जाता है। आप इसे जितना अधिक जानेंगे उतना ही अधिक प्यार करेंगे और जितना ही अधिक समझेंगे उतना ही इसका आदर करेंगे।

—ब्रिटिश आयरिश महिला, डा. एनी बीसेंट

मातृ उपासना के त्रिविध रूप जगन् माता राष्ट्र माता व व्यक्तिगत माता

हमारी शास्त्र परम्परा, गुरु परम्परा, संत परम्परा, हमारी बोध परम्परा, हमारा स्वयं का अनुभव यह स्वीकारता है कि सृष्टि में एक ऐसी सत्ता है जो सारी सृष्टि को उत्पन्न करती है, पालन करती है और फिर अपने में लय कर लेती है। उस परम सत्ता को हम ईश्वर के नाम से जानते हैं। जब 'एकोऽहम बहुश्याम' का संकल्प उसमें उठता है तब इन तीनों कार्यों को अपनी योगमाया या ब्रह्मशक्ति के द्वारा करते हैं, उसे आद्याशक्ति या जगन् माता कहते हैं। उससे अपना नाता जोड़ने के लिये, अपना आत्मीय सम्बन्ध स्थापित रहने के लिये, उसकी उपासना परमपिता ईश्वर के रूप में या जगन् माता या माता-पिता के रूप में यानी अर्धनारीश्वर के रूप में करते हैं।

हम सब जानते हैं पिता कठोर हृदय व स्वभाव का होता है, उसके पास पहुँचना कठिन होता है पर माता का हृदय कोमल व स्वभाव सहज होता है। उसके पास पहुँचना सरल होता है। स्वामी विवेकानन्दजी कहते हैं, कोई दुष्ट-से-दुष्ट कुपुत्र जब सारे संसार से तिरस्कृत हो जाता है, उसके ओष्ठ सूखने लगते हैं, तब कठोर-से-कठोर वज्र हृदया माता का वात्सल्य पुत्र को देखकर उमड़ पड़ता है। इस प्रकार माता के पास सरलता-सहजता से पहुँचा जा सकता है। इसलिये ईश्वर की पूजा माता या देवी के रूप में करते हैं। वही देवी शक्ति जब सृष्टि को प्रकट करती है तो उसे सरस्वती कहते हैं, सृष्टि के पालन करने वाली शक्ति को लक्ष्मी कहते हैं, और सृष्टि को अपने में लीन करने वाली शक्ति को ही पार्वती, गौरी, शिवा, उमा, दुर्गा, भवानी, जगदम्बा, काली, चण्डी, जगधात्री कहते हैं। इस प्रकार जगन् माता को हम मुख्यतः तीन रूपों में मां सरस्वती, मां लक्ष्मी एवं मां दुर्गा के रूप में पूजते हैं। इसी शक्ति को श्रद्धा धी, विद्या, ज्ञान, आत्मा आदि सभी कुछ कह डाला गया है।

यह जगत् की आद्या शक्ति है। इसी में सभी देवी की शक्तियां समाविष्ट हैं। चण्डी में आता है कि मां की हुंकार मात्र से ही निशुम्भ का निधन हो गया।

तब राजा शम्भु सामने आता है। तब वह देखता है, मां दुर्गा के शरीर से ही इन्द्र की इन्द्राणी, कार्तिक की कौमारी, वाराह की वाराही, वरुण की वारुणी, ब्रह्मा की ब्रह्माणी, विष्णु की वैष्णवी, शिव की शिवाणी शक्ति प्रकट होकर चारों तरफ से घेरकर उस पर हमला कर रही है। तब वह घबराकर मां से कहता है हिम्मत है तो अकेले-अकेले लड़ो। एक साथ चारों तरफ से घिरवाकर क्यों मरवा रही हो। तब मां कहती है—अरे दुष्ट! ये शक्तियां मुझसे अभिन्न हैं, मुझसे ही प्रकट होती हैं, मुझमें ही वास करती है और मुझमें ही लय प्राप्त करती है, यह मेरी विभूतियां हैं और देख मेरे एक ही विराट रूप में समायी हुई हैं। किसी की मुझसे पृथक सत्ता नहीं है। जिस प्रकार गीता में पहले भगवान की विभूतियों का वर्णन हुआ है फिर सबको एक ही भगवद्—सत्ता के विराट रूप में, समष्टि रूप में समायी हुई दर्शाया गया है।

इस प्रकार सारी सृष्टि में एक ही सत्ता का खेल चल रहा है। सृष्टि में शक्ति और शक्तिमान एक और अभिन्न है। जैसे मिट्टी और मिट्टी के विकार मिट्टी से बने पात्र गिलास, कटोरी, थाली आदि एक और अभिन्न है, स्वर्ण और स्वर्ण के बने अलंकार—अंगूठी, हार, पायजेब आदि एक और अभिन्न हैं, जल और जल से बने विकार—यथा नदी, तालाब, बावड़ी, फेन बुदबुदा, बर्फ, भाप आदि एक और अभिन्न हैं। आकाश एवं उससे बने विकार (घटाकाश, मठाकाश, महाकाश एक और अभिन्न है। मिट्टी ही, स्वर्ण ही, जल ही, आकाश ही अपने आपको नाना नाम-रूपों में अभिव्यक्त कर रहा है, प्रकट कर रहा है, खेल-खेल रहा है, लीला कर रहा है। वैसे ही ब्रह्म ही अपने आपको नाना नाम-रूपों में प्रकट कर रहा है, लीला कर रहा है। वस्तुतः जगत की सत्ता है ही नहीं केवल मात्र ब्रह्म की ही सत्ता है। जिस प्रकार रज्जु की ही सत्ता है, सर्प की अलग से पृथक सत्ता नहीं है, केवल अज्ञान के कारण, मंद अंधकार के कारण उसकी पृथक से सत्ता भास रही है, जब ज्ञान होता है, बोध होता है, तब ब्रह्म की ही, चेतन की ही एकमात्र सत्ता शेष बचती है। यही अनुभूति स्वामी विवेकानन्दजी को श्रीरामकृष्ण परमहंस की कृपा से हुआ।

आज विज्ञान ने अणु-परमाणु का विश्लेषण करके अन्त में क्या पाया—Radio active energy ही शेष बचती है। आज भौतिकवाद का महल ढह चुका है। बट्रेण्ड रसेल कहते हैं, भौतिकवाद का भवन जिन ईंटों पर खड़ा है वह कच्ची प्रमाणित हुआ है। Material उसे कहते हैं जो स्थान घेरे और वजन रखे। Energy में दोनों ही बातें शेष नहीं रहती। इसलिये बर्ट्रेंड रसेल ने कहा—भौतिकवाद का महल सदा के लिये ढह चुका है। अब Materialism के स्थान पर Energism का सिद्धान्त प्रस्तुत किया जा रहा है। इसमें सर्वसम्मति है। पर Energy का स्वरूप क्या है, इसमें वैज्ञानिकों में ऊहापोह है। भौतिकवादी इसे भौतिक ही मानते हैं,

बर्ट्रेंड रसेल इसे उभयात्मक मानते हैं। पर कुछ चोटी के वैज्ञानिक इसे आध्यात्मिक या चेतन स्वरूप वाली मानने लगे हैं। जिसमें सरजेम्सजीन, आइंस्टाइन, श्रोडिंजर, एडिंगटन, कोपरा आदि। आज पश्चिम का विज्ञान वेदान्त की ड्योढ़ी पर, मन्दिर के गर्भ गृह के द्वार पर खड़ा है। जिस दिन विज्ञान Energy के स्वरूप को चेतन या चेतनामय मान लेगा, अनुभूति कर लेगा उस दिन से विज्ञान की स्वतंत्र सत्ता शेष नहीं बचेगी, वह पूर्व की भांति दर्शन की एक शाखा में परिणत हो जायेगी।

जगन् माता की उपासना में 'मां' को ईश्वर मानकर की जाती है। मां ही पिता तक पहुंचने का द्वार बनती है। मां के माध्यम से पिता तक हम सरलता से पहुंच जाते हैं। मां की उपेक्षा करके कोई परमपिता या परम लक्ष्य तक नहीं पहुंच सकता। इस युग की दो प्रमुख घटनाओं को स्मरण कर सकते हैं—तोतापुरी और स्वामी विवेकानन्द की घटना को। तोतापुरी निर्गुण-निराकार ब्रह्म के उपासक थे। मायायुक्त ईश्वर या माया या आद्या शक्ति को वे सर्वथा त्याज्य मानते थे। श्रीरामकृष्ण परमहंस देव को मां काली की भक्ति करते देखकर उसकी हंसी उड़ाया करते थे। जब तोतापुरी ने कहा मैं तुझे अद्वैत वेदान्त की दीक्षा दूंगा। तो उन्होंने कहा मां से आज्ञा लेनी पड़ेगी। उन्होंने सोचा कोई सचमुच की मां होगी। पर जब देखा पत्थर की मूर्ति मां काली से आज्ञा मांग रहे हैं तो उन्हें अचम्भा हुआ और बाल सुलभ प्रयास समझा। तोतापुरी का गठा हुआ लम्बा-चौड़ा पहलवान शरीर था। तीन दिन से अधिक कहीं रुकते नहीं थे। पर यहां श्रीरामकृष्ण परमहंस जैसा अनोखा शिष्य पाकर 11 माह रुक गये। वे बीमार पड़े। चिकित्सा प्रारम्भ हुई। पर बीमारी बढ़ती गई। तब शरीर त्यागने के लिये रात्रि में गंगा में प्रवेश किया पर डूबने लायक पानी कहीं नहीं मिला। वापस लौट आये। तब रामकृष्ण देव ने कहा आद्या शक्ति (मां) की कृपा के बिना शरीर नहीं त्याग सकते और तोतापुरी को भी आद्या शक्ति मां का आभास हुआ और उसको मानने के लिये बाध्य हुए तथा जगन् माता के प्रति श्रद्धानत हुए। यही हाल स्वामी विवेकानन्द का था। पश्चिमी दर्शन के अध्ययन और ब्रह्म समाज से सम्पर्क के कारण उन्हें निर्गुण-निराकार ब्रह्म की बात समझ में आती थी। सगुण-साकार, सगुण-निराकार या ब्रह्म शक्ति या आद्या शक्ति की बात समझ में नहीं आती थी। अचानक पिता का देहावसान हुआ। घर में आर्थिक संकट उपस्थित हुआ, प्रतिदिन के भोजन के भी लाले पड़ गये और बहुत प्रयास करने पर भी प्रतिभाशाली नरेन्द्र को एक नौकरी नहीं मिल सकी। हार-थककर रामकृष्ण परमहंस देव के पास पहुँचे और निवेदन किया आपकी बात मां मानती है, मां से प्रार्थना कर मेरे घर का आर्थिक संकट दूर करवाइये। रामकृष्ण देव जी ने कहा तू मां को नहीं मानता है, इस बात की सजा तुझे मिली है। जा आज मां से जो मांगेगा वह तुझे मिलेगा, ऐसा मेरा आशीर्वाद है। मां के दरबार में

मां के भव्य दिव्य, चिन्मय रूप को देखकर नरेन्द्र के मुख से यही निकला मां मुझे ज्ञान, भक्ति, वैराग्य दे, अपने चरणों में स्थान दे, क्या मांगने आया यह भूल ही गया। रामकृष्ण देवजी के दोबारा भेजने पर भी यही स्थिति रही। तिबारा उसे अपने घर की दीनावस्था ध्यान में तो थी पर मां के भव्य-दिव्य चिन्मय रूप के सामने यह बात बहुत तुच्छ प्रतीत हुई और पुनः ज्ञान, भक्ति, वैराग्य ही मांग पाये। तब श्रीरामकृष्ण परमहंस ने आशीर्वाद स्वरूप कहा, जा तेरे घर में मोटे अन्न-वस्त्र का अभाव न रहेगा। इसके पूर्व वे भी मां की सत्ता को मानने के लिये तैयार नहीं थे।

भक्ति माता के तुल्य है, ज्ञान पिता के सदृश है। भक्ति के सभी अधिकारी हैं, पर ज्ञान का अधिकारी बनने के लिये साधन चतुष्टय का होना आवश्यक है। पर भक्ति के लिये ऐसी कोई योग्यता की अपेक्षा नहीं है। एक वैष्णव कहता है, राजा उग्रसेन का पौरुष ही क्या था? ध्रुव की उम्र ही क्या थी, सुदामा के पास कौन-सा धन था, कुब्जा के पास सुन्दरता ही क्या थी, विदुर का जन्म ही कैसा था, शबरी के पास वैभव ही क्या था, पर भगवान ने सबको अपनाया। जैसे हम अपने ही घर में देखते हैं, बच्चा जब गंदा होता है, पिता की गोद पाना चाहता है, पिता छिः छिः, दूर हट, दूर हट और उसकी मां को पुकारता है। उसकी मां जब उसे शुद्ध करके, सजा-धजा करके, श्रृंगार करके लाती है तो पिता अपना सिंहासन छोड़कर लपककर उसे उसकी मां से छीनकर अपनी गोद में ले लेता है।

माया भी दो प्रकार की है—अविद्या माया और विद्या माया। अविद्या माया कुलटा स्त्री की तरह है, जो संसार चक्र में भटकाने वाली, संसार के बंधन में बांधने वाली है। विद्या माया उस सती स्त्री की तरह है, जो संसार चक्र से निकालकर परब्रह्म के चरणों में ले जाने वाली—ब्रह्म विद्या में ले जाने वाली है। वह अपने प्रति अनुरक्त अन्यों के प्रति विरक्त करती है, समय विशेष, प्रयोजन विशेष के पश्चात् वह अपने से भी विरक्त कर देती है। इसलिये दुर्गा सप्तशती में साधक मां से प्रार्थना करता है—

पत्नी मनोरमां देहि मनोवृत्तानुसारिणीम्।
तारिणीं दुर्गसंसार सागरस्य कुलोद्भवाम्।।

मन की इच्छा के अनुसार चलने वाली मनोहर पत्नी प्रदान करो, जो दुर्गम संसार सागर से तारने वाली तथा उत्तम कुल में उत्पन्न हुई हो। गृहस्थाश्रम में हम एक मधुर सम्बन्ध को स्वीकारते हैं, संसार सागर से पार पाने के लिये। गृहस्थाश्रम में फंसने और बंधने के लिये नहीं है, वरन् स्वयं के प्रेम का विस्तार करने के लिये, स्वयं के खिलने-खिलखिलाने के लिये है, अन्यों के खिलने-खिलखिलाने में सहयोग करने के लिये, स्वयं को खोलने एवं अन्यों को भी बंधनमुक्त करवाने

के लिये है, जीवन-काल में पति-पत्नी मिलकर प्रभु लाभ करने, आत्म लाभ करने, पूर्णता प्राप्त करने के लिये हैं।

धर्म के अनुकूल शास्त्रीय गृहस्थाश्रम एक दुर्ग के समान है, जिसमें सुरक्षित रहते हुए अपने शत्रु यथा काम-क्रोध-लोभ-मद-मात्सर्य पर विजय प्राप्त करते हैं। इसमें माता-पिता, पत्नी, बच्चों, भाई-बहिन, दादा-दादी सबसे सहयोग प्राप्त होता है। और संन्यास खुले मैदान में अकेले इन शत्रुओं से लड़ना होता है। अतः दुष्कर है और यह उन्हीं के लिये शक्य है, जिनकी पूर्व जन्मों की साधना है और साधना का परिपाक होने के पूर्व शरीर छूट गया है अतः वर्तमान में योगभ्रष्ट के रूप में जन्म लिया है।

विद्या भी दो प्रकार की है—अपराविद्या और पराविद्या। सांसारिक अभ्युदय के लिए अपराविद्या आवश्यक है और निःश्रेयस की प्राप्ति के लिये पराविद्या आवश्यक है। जो केवल अपने को अपराविद्या तक सीमित कर लेता है, वह संसार के बंधन में पड़ा रहता है। पर जो अपरा विद्या के साथ-साथ पराविद्या को स्वीकारता है वह अपरा यानी भौतिक विद्या से संसार सागर में अच्छी तरह रहता है और पराविद्या यानी आध्यात्मिक विद्या के द्वारा संसार सागर से पार हो परम लक्ष्य आत्मा का, पूर्णता का लाभ करता है।

हमारी अपराविद्या यानी सारी भौतिक विद्या के आधार में पराविद्या यानी ब्रह्म विद्या थी। अतः सारी भौतिक विद्या उपासना का, परमार्थ का रूप ले लेती थी। व्यवहार ही परमार्थ में परिणत हो जाता था। अपराविद्या के आधार में ब्रह्म विद्या होने से हमारे यहाँ विज्ञान या भौतिक विद्या ये परपीड़क न बनकर जन-जन की सेवक बनी। प्रकृति की भी पोषक व संवर्धक बनी। हम अपराविद्या के कारण वैभव सम्पन्न राष्ट्र रहे हैं, इसलिये सोने की चिड़िया कहलाते थे और पराविद्या के आधार पर ज्ञान सम्पन्न राष्ट्र रहे हैं और जगद्गुरु कहलाये।

राष्ट्रमाता

भारत एक सनातन राष्ट्र है, इसकी सीमाएं भी प्राकृतिक हैं, इसकी संस्कृति सनातन है। इसके मूल में वेद हैं, ऋषि हैं, ईश्वर है। भारतीय परम्परा के अनुसार वेद सनातन अपौरुषेय और अनन्त है। इसलिये वेद का काल मीमांसा के जितने भी प्रयास हुए हैं, वह असफल सिद्ध हुए हैं। मैक्समूलर तथा उनके शिष्य मैक्डॉनल 1400 ईसा-पूर्व तथा जैकोबी 4500 ईसा पूर्व बतलाते हैं। लोकमान्य तिलक ने ओरायन नामक ग्रंथ में सिद्ध किया कि वेद अन्तर्साक्ष्य के आधार पर वेद में वर्णित 'अग्राहयण नक्षत्र' का काल ज्योतिष गणना के आधार पर ईसा से कम से कम सात हजार वर्ष पूर्व सिद्ध होता है। और प्रति दस हजार वर्ष के चक्र के पश्चात

पुनः वही स्थिति आ जाती है। अतः वेद मंत्रों का काल आज से 9 हजार वर्ष पूर्व सिद्ध हो जाता है। उससे पहले कितने 10-10 हजार वर्ष के कालचक्र बीते होंगे, इस पर शोध की आवश्यकता है। डॉ. अविनाशचन्द्र घोष द्वारा अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'ऋग्वैदिक इण्डिया' में ऋग्वेद का काल वेद में वर्णित भूगर्भशास्त्र के आधार पर 25000 से 50000 ईसा पूर्व सिद्ध करते हैं। काल की इतनी भिन्नता संसार के किसी ग्रंथ में नहीं पायी जाती। स्पष्ट है वेद के काल गणना के सारे प्रयास असफल सिद्ध हुए हैं। और अब तो राम सेतु के प्रकटन ने भी वेद की सनातनता पर अपनी मुहर लगा दी है। जब राम सेतु का काल 17 से 23 लाख वर्ष माना जा रहा है, और यह सर्वसम्मत तथ्य है कि रामायण काल में वेद प्रतिष्ठित थे। हमारी ऋषि परम्परा भी सनातन है। भारत ने जब भी आंखें खोली अपने को विकसित राष्ट्र के रूप में पाया। क्योंकि ब्रह्माजी ने पहले मानसिक सृष्टि की।

मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः। गीता 10/6

पहले चार (सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार) फिर ऋषियों को प्रकट किया उसके बाद मैथुनिक सृष्टि प्रारम्भ हुई। इस प्रकार ऋषि भी सनातन है और ईश्वर तो सनातन सत्य है ही।

सभ्यता का केन्द्र यूनान नहीं भारत

पाश्चात्य विद्वानों का विचार है सभ्यता यूनान के एथेन्स नगर से प्रारम्भ हुई जो सुकरात, प्लेटो तथा अरस्तू की स्मृतियों से प्रसिद्ध है तथा यूरोप के भिन्न-भिन्न नगरों को सभ्यता का दान देने के बाद वह लहर अमेरीका में पहुंची। उसे अंतिम दान देकर फिर वह सभ्यता की धारा सदा के लिये विलुप्त हो गई। इस प्रकार पश्चिमी लोगों को भ्रान्ति है कि सभ्यता का क्षेत्र एथेन्स से हालीवुड तक ही है तथा उसे अन्य किसी प्रदेश की सभ्यता का अंश भी उसे प्राप्त नहीं हुआ।

वास्तव में यूनान के एथेन्स नगर का नाम यूनान के जिस राष्ट्रीय महाकवि होमर के साथ अविभाज्य रूप से जुड़ा हुआ है, वह राष्ट्रीय महाकाव्यों का गायक स्वयं भारतीय महाकाव्यों से प्रभावित, प्रेरित और संचालित था। होमर भारत के महाकवि सूरदास के समान दोनों नेत्रों से विहीन प्रज्ञाचक्षु होकर एथेन्स नगर की सीढ़ियों पर बैठा हुआ अपने हृदय के गुम्फित भावों को काव्य कलिकाओं में प्रकट करता जाता था। उसके दो प्रसिद्ध महाकाव्य हैं—इलियड और ओडिसी। यूरोपीय साहित्य में होमर के इलियड और ओडिसी का वही स्थान है जो भारतीय एवं एशियाई साहित्य में राम कथा और महाभारत कथा का है। होमर का काव्य शताब्दियों तक यूनानी शिक्षा का आधार रहा है और पेशेवर चारण (काव्योपजीवी) पूरे देश का भ्रमण करते हुए होमर की काव्य रचनाएं गा-गाकर सुनाया करते थे

और यूनान के साहित्यकार होमर से अपनी कथावस्तु ग्रहण करते रहे हैं। होमर की रचनाएं इतनी उत्कृष्ट कोटि की थी कि पूर्ववर्ती गाथा-साहित्य लुप्त हो गया। वह होमर का इलियड स्वयं रामायण से प्रभावित एवं प्रेरित है। तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट होता है इलियड रामायण का ही अनुकरण और अनुवाद है। रामायण के कथानक के समान इलियड में भी रानी के आग्रह पर राजा पुत्र को वनवास देता है। उसके साथ छोटा भाई और पत्नी भी चल पड़ते हैं। वन में एक राक्षस उनकी पत्नी उठा लेता है। नायक वनवासी लोगों से मित्रता कर उसकी सेना सजाकर युद्ध की तैयारी करता है। राक्षस का राज्य एक द्वीप में है। नायक दो बार दूत भेजता है। अन्त में युद्ध होता है। राक्षस का एक बंधु नायक का भक्त होता है। राक्षस का कुल समेत नाश होता है। इस प्रकार यूनान का इलियड रामायण का अनुवाद है। सुकरात का भारत के एक मनीषी से वार्तालाप यूनानी इतिहासकारों द्वारा भी प्रमाणित तथ्य है। अरस्तू का सिकन्दर से भारत से भगवद्गीता और एक संत लाने का आग्रह, सिकन्दर का भारत के दार्शनिकों से वार्तालाप, प्लेटो की विचारधारा पर भारतीयता की छाप, सभी विश्व विश्रुत तथ्य है। यूनानी जब भारत में आए तो कपास देखकर विस्मित हुए। कहा—भारतीय क्या विचित्र लोग है। ये पौधों पर रुई उगाते हैं। तब तक उन्होंने न गन्ना देखा था, न खाण्ड चखी थी। गन्ने का रस निकलता देखकर बोले—भारतवासी भी अजीब लोग हैं, ये लकड़ियों को निचोड़कर शहद निकालते हैं। दुनिया जीतने की इच्छा रखने वाले यूनानियों ने न कपास का कपड़ा पहना था, न खाण्ड चखी थी तथा संभवतः इस्पात (Steel) भी नहीं देखा था। पोरस से सन्धि के समय सिकन्दर को 20 पौण्ड (10 सेर) फौलाद का उपहार दिया तो सिकन्दर भी विस्मित हो गया। स्पष्ट है सभ्यता का केन्द्र यूनान नहीं भारत है।

अमेरीकन इतिहासकार विलडूरेन्ट ने अपनी यात्राओं में अमेरीका की नार्थ कोरेलइना यूनिवर्सिटी में यह पाठ पढ़ाते हुए देखा कि यूनान ही विश्व सभ्यता की जननी है। उसने प्रतिवाद किया—मानव सभ्यता की आदि जननी भारत है न कि यूनान। इस पर एक रोचक वाद-विवाद छिड़ गया। उसने पूछा—2300 वर्ष पूर्व जब सिकन्दर की विश्व विजय की आकांक्षा थी तो उसने यूनान से, जो यूरोप का एक भाग है, अन्य यूरोपीय देशों की ओर प्रयाण क्यों नहीं किया। इसके उत्तर में वहां के अध्यापक ने कहा—इसका कारण हम नहीं जानते हैं। मैंने हंसकर कहा—बेचारा सिकन्दर इन देशों का अभियान तो तभी कर सकता था, जब इन देशों का कहीं कोई अस्तित्व होता। उस समय तक लगभग सारे यूरोप में मनुष्यों और पशुओं का कच्चा मांस खाने वाले, असभ्य, नंगे, बर्बर लोगों का निवास था। जिनकी चर्चा करना तक भी यूनानी इतिहासकारों ने अपनी लेखनी का अपमान समझा।

चौथी शताब्दी तक इंग्लैण्ड तो रोमन साम्राज्य का गुलाम था। उस काल की लैटिन भाषा के कोश में आंग्ल, एंग्लो आदि शब्दों का अर्थ ही गुलाम किया जाता था। इंग्लैण्ड के लोग रोम के बाजारों में गुलामों की तरह बिकते थे। उन्हें नग्न-अर्ध नग्न रूप में मण्डी में बैठाकर क्रय-विक्रय किया जाता था।

मास्को में प्रकाशित Ancient History Davier द्वारा लिखित An outline of the History of world तथा C या O Stephenson द्वारा लिखित Mediaeval History के अनुसार रोम गुलामों पर सबसे अधिक अत्याचार करने वाला साम्राज्य था। वहां अन्य गुलामों के समान अंग्रेज गुलामों को भी रोमन अमीरों के द्वार पर गले में जंजीर बांध कर कुत्ते की तरह बैठाया जाता था। उन्हें गलियों या चौराहों में सोना पड़ता था। उनसे अपराध होने पर उन्हें समुद्र में मगरमच्छ के सामने जीवित ही डाल दिया जाता था। और उनके निरपराध होने पर उन्हें खुले गोलाकार क्रीड़ाक्षेत्र (Stadium) में हिंस्र पशुओं से अथवा गुलामों को आपस में शस्त्रों से लड़वाकर मनोविनोद किया जाता था। हार जाने पर उनको मारकर उनके शव को रथ के पीछे फंसाकर घसीटा जाता था।

यूरोप के अंधकार युगीन इतिहास का एक पुराना मानचित्र मिला है ई. पू. 6 शती का। जिसमें धरती को एक गोल थाली जैसा दिखाया गया है तथा उसमें यूरोप और एशिया का बेढब चित्र ऊपर-नीचे दिखाया गया है। उसमें इंग्लैंड का कोई संकेत नहीं।

बाइबिल में धरती को चपटा मानने के कारण गलैलियो, जीनो तथा ब्रूनो आदि वैज्ञानिकों द्वारा धरती को गोल कहने के कारण सताया गया, जीवित जलाया गया। भारत के वेद में भूगोल शब्द का प्रयोग भूमि के गोल होने का प्रमाण है।

इसलिये भारत ही विश्व सभ्यता का केन्द्र है। हमारा इतिहास सृष्टि के प्रारम्भ से शुरू होता है। पश्चिम ने जो भ्रम फैलाया आर्य बाहर से आये हैं। अब तो सिद्ध तथ्य है आर्य भारत के ही मूलवासी हैं और यहां से मनु के जलप्लावन के समय सारे यूरोप के देशों में फैल गए। मनु के जलप्लावन की घटना विश्व प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटना है, जिसका उल्लेख भारतीय ईरानी, यहूदी, ईसाई, इस्लामी, बेबिलोनी, मिस्री, यूनानी, चीनी तथा चाल्डिया के प्राचीन ग्रंथों में पाया जाता है। मनु के जलप्लावन के समय तत्कालीन आर्यावर्त्त हिमालय से विंध्याचल तक जल में डूब गया था। उस समय आर्य जाति के बहुत से सदस्यों ने अफगानिस्तान, ईरान के रास्ते से जाकर एशिया एवं यूरोप की सीमा पर सबसे ऊंचे पर्वतशिखर ऐलबरुण (काकेशस पर्वत) की छाया में शरण ली। यहां आर्यों के बीजों की रक्षा हुई भयंकर जल प्रलय के समय, उसे आर्यानाम् बीजम कहा गया। तथा आजकल अजरबेजान कहलाता है। जलप्लावन के बाद अजरबेजान से आर्यों की शाखा पुनः

लौटकर भारत में आयी तथा एक शाखा वहीं से आगे यूरोप और मध्य एशिया के विभिन्न देशों में जा बसी। यहां से भारतीय संस्कृति का विस्तार प्रारम्भ हो जाता है। क्योंकि उस समय हमारे पास एक राष्ट्रीय लक्ष्य था—**'कृण्वन्तोविश्वमार्यम्'** का। भारत के आर्यों की एक शाखा ईरान में बस गई जो पारसी कहलाये उसके द्वारा भी भारतीय संस्कृति का विशेषकर सूर्य पूजा का प्रसार विश्व के देशों में हुआ। ईसाइयत से पूर्व आर्यावर्त्त से आयरलैण्ड तक मित्र सूर्य पूजा प्रचलित थी। अर्नेस्ट रेनन (Ernest Renan) ने कहा, यदि ईसाइयत का प्रसार यदि अपने इतिहास के उषाकाल में रुक जाता तो सारा संसार सूर्य पूजक होता है।

इसलिये विल डूरेन्ट स्पष्ट रूप से कहता है—भारत ही हमारी जाति की जन्मस्थली थी और संस्कृत ही हमारी यूरोप की सब भाषाओं की जननी है। भारत हमारे दर्शन की जननी था, हमें अरब के माध्यम से प्राप्त गणित-ज्ञान की जननी था, बुद्ध के माध्यम से ईसाई आदर्शों की जननी और ग्राम पंचायत परम्परा द्वारा आत्मानुशासन और लोकतंत्र की जननी था। भारत अनेक दृष्टियों से सारे विश्व की माता है।

इसी बात की पुष्टि में क्रूजर (Creuzer) भी कहते हैं—यदि पृथ्वी पर कोई ऐसा देश है, जो स्वयं को 'मानव जाति का पालना' होने की घोषणा करने का अधिकारी है अथवा प्रारम्भिक सभ्यता का द्रष्टा है, जिसकी सभ्यता की किरणों ने प्राचीन विश्व के सभी भागों को आलोकित किया है, जिसके ज्ञान के वरदान ने मनुष्य को 'द्विज' बनाया है, अथवा प्राकृत से संस्कृत किया है, तो वह देश वास्तव में भारतवर्ष है।

स्पष्ट है भारत अग्रजन्मा एवं 'सा प्रथमा संस्कृति विश्ववारा' होने से वेद भगवान का आदेश है—'कृण्वन्तेविश्वमार्यम्' सारे संसार को श्रेष्ठ, महान्, सज्जन, आर्य बनाओ। और मनु भगवान् का आदेश हैं विश्ववासियों को—एवं एवं चरित्रं शिक्षेरन् पथिव्यां सर्क मानवाः। अपने-अपने चरित्र व आचरण की शिक्षा भारत से ग्रहण करें। यह पौराणिक नहीं ऐतिहासिक तथ्य है, भारत प्रथम से ही विश्व मनीषा के लिये आकर्षण का केन्द्र रहा है आशा और मार्गदर्शन का केन्द्र रहा है। भारत की शिक्षा ग्रहण कर एवं भारत आकर अपने को धन्य एवं कृत-कृत माना। जो कि ऊपर लिखित विल डूरेन्ट, क्रूजर आदि के कथन से भी स्पष्ट है। अतीत में विश्व का गुरु भारत था और भविष्य का भी गुरु भारत ही होगा। विश्व में भारत का सांस्कृतिक साम्राज्य पहले फैला फिर कहीं-कहीं आर्थिक, व्यापारिक एवं राजनीतिक विस्तार भी हुआ। पूर्व में फिजी द्वीप समूह, उत्तर में साइबेरिया पश्चिम में मैक्सिको, बोलेविया, पेश्व एवं ग्वेटेमाला तथा दक्षिण में ऑस्टिक द्वीप तक भारतीय संस्कृति की प्रसार हुआ था। आज भी विश्व के इतिहास से चार

पर्दे हटा दिये जाए—यथा ईसा से पूर्व यूरोप, मुहम्मद से पूर्व अरब, कोलम्बस से पूर्व अमेरीका तथा फिलीप से पूर्व फिलिपाइन तो आपको सारे विश्व में भारतीय संस्कृति की झलक मिलेगी।

हमारे राष्ट्र जीवन का आधार वेद—

अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में कहा गया है—

माता भूमिः पुत्रो अहं पथिव्याः

अर्थात् भूमि मेरी माता है, मैं उसका पुत्र हूं। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त विराट राष्ट्र पुरुष की वंदना की गयी है—

'ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमि ँ सर्वत स्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशांगुलम्।।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
उरु तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां ँ शूद्रो अजायत।।'

विराट् राष्ट्र पुरुष के हजारों सिर, आंखें, पैर भूमि के अन्दर तथा बाहर बतलाए गए हैं। उसके मुख, हाथों, उदर तथा पैरों से क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र की उत्पत्ति दी गई है। इसमें विराट राष्ट्र पुरुष की स्पष्ट झलक है।

ऋग्वेद (10, 192, 2) में कहा है—

संगच्छध्वं सं वो मनांसि जानताम्
देवाः भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।

हम सब कदम-से-कदम मिलाकर चलें, सब मिलकर विचार-विमर्श करें, एक मन हो जाएँ। बुजुर्गों का कहना है कि मनुष्य से देवत्व प्राप्त करने का यही रास्ता है।

वाल्मीकि रामायण की किसी टीका में भगवान् श्रीराम ने मातृभूमि के प्रति अनन्य भक्ति को स्वर्ग से महान् माना है—

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी

अर्थात् जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर है। विष्णु महापुराण में देश प्रेम एवं भारत-भक्ति का वर्णन करते हुए लिखा है—

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूयः पुरूषाः सुरत्वात्।।

युगों-युगों से यही भावना बार-बार भारत के अनेक ऋषियों, मुनियों, चिन्तकों, लेखकों, सुधारकों, सन्तों तथा भक्तों ने व्यक्त की है।

भारत में राष्ट्र एक सांस्कृतिक इकाई है।

पश्चिमी राष्ट्र राजनीतिक इकाई से बनता है। यूरोप के रूस से लेकर आयरलैण्ड तक संस्कृति लगभग समान है। पूरे यूरोप का भूखण्ड लगभग भारत जितना ही है फिर भी बीसियों राष्ट्र हैं और नये राष्ट्र बनने की सम्भावना सदा बनी रहती है। भारत में सन् 1947 तक ब्रिटिश शासन में साढ़े पांच सौ रियासतें थी। उससे पूर्व भी देश में हजारों छोटे-बड़े राज्य रहे होंगे। मारवाड़, मेवाड़, चोल-चालुक्य आपस में लड़ते रहते थे। राज्य तो अनेक थे किन्तु संस्कृति एक होने के कारण राष्ट्र एक था।

भारत की राजनीतिक एकता चाहे अनेक बार खंडित होती रही है। किन्तु, हमारी सांस्कृतिक एकता सनातन काल से अभेद्य रही है। वास्तव में उत्थान-पतन के अनेक झंझावातों में तथा विदेशी आक्रमणों के प्रचण्ड बवण्डरों में भारत को सदा एक बनाये रखने वाली यह सांस्कृतिक एकता ही उसकी संजीवनी शक्ति है।

भाषाएँ बांटती हैं, संस्कृति जोड़ती है। राजनीति तोड़ती है, संस्कृति जोड़ती है। जातियां बांटती हैं, संस्कृति जोड़ती है। वर्ण आश्रम, जाति-उपजाति, प्रदेश, वेश-भूषा, आर्थिक स्तर आदि को संस्कृति ने जोड़ रखा है। भारतीय समाज नगरवासी, ग्रामवासी और वनवासी तीन स्तरों पर विकसित हुआ है। किन्तु, सभी स्तरों पर एक ही महान् संस्कृति का स्वर्णिम-सूत्र पूरे समाज को एकात्मता में बांधने में सहायक सिद्ध हुआ है। अतः राष्ट्र की एकता का स्वर्णिम-सूत्र संस्कृति ही है। यह सूत्र टूटते ही भारत खण्ड-खण्ड हो जाएगा।

जो संस्कृति अपने देश में समन्वय का स्वर्णिम-सूत्र है, वही संस्कृति भारत के सांस्कृतिक दिग्विजय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की प्राणधारा है। संस्कृति के स्वर्णिम-सूत्र ने ही भारत को जगद्गुरु के सिंहासन पर बिठाया है। सांस्कृतिक सम्बन्ध हृदयों का बंधन है जिसे काल के थपेड़े तोड़ नहीं पाते। इसलिये यदि समस्त दक्षिण-पूर्व व उत्तर एशिया के पचासों देश भारत को पुण्यभूमि मानकर भारत के कपिलवस्तु, गया, हरिद्वार की धूलि को मस्तक पर चढ़ाते हैं; यदि फिजी, गियाना, मारीशस, सूरीनाम, ट्रिनीडाड के लोग गंगास्नान के लिए हजारों मील दूर से भारत की यात्रा पर आते हैं, और हिन्दी को राष्ट्र भाषा का सम्मान देते है। इंडोनेशिया के मुसलमान रामलीला-कृष्णलीला को राष्ट्रीय महोत्सव के रूप में मनाते हैं; अपने देश में सबसे पहले अन्तर्राष्ट्रीय रामायण सम्मेलन रखते हैं, जापान का प्रधानमंत्री भारत की धूल को अपने मस्तक से लगाता है, तो केवल सांस्कृतिक सम्बन्धों के कारण ही।

भारत एक सांस्कृतिक राष्ट्र के साथ-साथ धार्मिक राष्ट्र है। भारत एक धर्म-प्रधान राष्ट्र होने से स्वदेश एवं स्वधर्म एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। यहां

देवभक्ति और देशभक्ति की एक अखण्ड अभिन्न परम्परा रही है। वेद से लेकर विवेकानन्द साहित्य तक सर्वत्र देवभक्ति और देशभक्ति साथ-साथ चली है। देश और धर्म को भिन्न-भिन्न मानने से देश की सेवा धर्मपूर्वक नहीं हो सकेगी और परलोक की उपेक्षा होगी, देश की उपेक्षा करके धर्मपालन हमें इहलोक में उत्थान न दे सकेगा जैसा कि हम मध्ययुग में पाते हैं। मध्ययुग में संत देश के प्रति उदासीन थे। यदि धर्म से राजनीतिक बेहोशी फैलती है, राष्ट्र के प्रति उदासीनता आती है तो उससे क्या लाभ? यदि धर्मसाधना से देश लुट जाए तो वह साधना किस काम की? शास्त्र का मत है—'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।' जिससे इहलोक का अभ्युदय, परलोक में मोक्ष की प्राप्ति हो, वही धर्म है। अतः भारत में राजनीति धर्म का एक अंग है। इसे राजधर्म, श्रेष्ठ धर्म कहा है। बिना धर्म के राजनीति वेश्या के समान हो जायेगी। अतः भगवान् राम-कृष्ण जहां धर्म के रक्षक हैं वहां राष्ट्र निर्माता भी हैं? गीता का अवतरण राष्ट्ररक्षा और धर्मरक्षा दोनों के लिए हुआ है।

भारत में देशभक्ति ही सर्वोच्च धर्म है तथा भारतभक्ति ही भगवान् की भक्ति भी सिद्ध होती है। चारों धामों की तीर्थयात्रा के धार्मिक कृत्य से राष्ट्रीय एकता का जो चमत्कार हिन्दू धर्म ने कर दिखाया वह विश्व इतिहास में अद्वितीय है। तीर्थयात्रा की परम्परा से देवदर्शन और देशदर्शन, दोनों साथ-साथ सिद्ध हो जाते हैं। गंगोत्री के गंगाजल की कांवर भरकर यात्री सारे देश की यात्रा करते हुए जब रामेश्वर में पहुंच कर उस गंगाजल से भगवान् शिव का अभिषेक करते हैं या रामेश्वर से सागर के जल की कांवर लेकर हिमालय में केदारधाम में भगवान् शिव का अभिषेक करते हैं उन्हें अलौकिक आध्यात्मिक संतुष्टि और भारत की सांस्कृतिक अखण्डता की अनुभूति होती है।

हिन्दू इस देश भारत को ही अपनी जन्मभूमि, पितृभूमि, पुण्यभूमि, धर्मभूमि, मोक्षभूमि एवं अपना सर्वस्व मानते हैं। यही कारण है कि हिन्दू मात्र के लिए यह धर्मभूमि और कर्मभूमि दोनों है। हिन्दू का भारत से जन्म-मरण एवं जन्म-जन्मान्तर का सम्बन्ध है। हिन्दू मात्र की समूची श्रद्धा भारत के भीतर है, भारत के बाहर कहीं नहीं है।

मुसलमान की पुण्यभूमि भारत नहीं अरब देश हैं तथा ईसाइयों के लिए येरूशलम पुण्यभूमि बन जाती है, भारत नहीं। इस तरह भारत में रहते हुए भी अहिन्दुओं की श्रद्धा भारत के बाहर चली जाती है। इसलिए वे पाकिस्तान के नाम पर देश के टुकड़े करते हैं तथा वे नागालैण्ड, मिजोरम, बोडोलैण्ड, छोटानागपुर आदि को अलग ईसाई राज्य बनाकर भारत को खण्ड-खण्ड करना चाहते हैं।

हिन्दू धर्म-दर्शन पूर्णतया स्वदेशी धर्म-दर्शन है। इसकी सभी शाखाएं भारत में ही जन्मी तथा फली-फूली है। अतः हिन्दू धर्म ही भारत का धर्म है। इसी के

उत्थान से भारत का उत्थान होगा। इसे ही ऋषि अरविन्द घोष सनातन धर्म कहते हैं और वे कहते हैं—सनातन धर्म के उत्थान से ही भारत का उत्थान होना है और सनातन धर्म के पतन से भारत का पतन जुड़ा हुआ है।

इस प्रकार स्पष्टतः भारत भक्ति ही देशभक्ति और देवभक्ति दोनों ही है। तभी भारत की वंदना भारत माता के रूप में, जगदम्बा के रूप में, मां भवानी के रूप में, जगज्जननी के रूप में की गयी है। इसलिए स्वाधीनता आन्दोलन के प्रसंग में भारत का उद्‌घोष था, जयघोष था—वन्दे मातरम्!

जिस प्रकार देवभक्ति की पुकार है उसी प्रकार देशभक्ति की पुकार है। देश के लिए स्वामी विवेकानन्द रोते हैं, तड़पते हैं। स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है। तिलक रोते हैं। ऋषि बंकिम देश के लिये रोते हैं और उसे मां दुर्गा में तदाकार देखते हैं। ऋषि अरविन्द घोष अपने तीन पागलपन में एक में वे कहते हैं, मैं देश को मृण्मय नहीं चिन्मय और मां भवानी में उसे तदाकार देखते हैं। वीर सावरकर रोते हैं। मालवीय जी रोते हैं। सुभाष-गांधी रोते हैं। महर्षि दयानन्द रोते हैं। रवीन्द्रनाथ टैगोर रोते हैं। क्या मेरी मां दुर्बल है? जिसने सारे विश्व को सभी दृष्टियों से स्तनपान कराया है, वह कभी दुर्बल नहीं हो सकती। महर्षि दयानन्द जी कहते हैं—सुराज्य से स्वराज्य कोटिशः अच्छा है। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं—पचास वर्षों के लिए सभी देवी-देवताओं को भूल जाओ, तुम्हारा एकमात्र आराध्यदेव, भारत है। सुभाष बोस कहते हैं—तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा।

स्वराज्य के पश्चात स्वाधीन भारत में भारत की दुर्दशा क्यों?

द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण अंग्रेजों की स्थिति जर्जर हो गई, आजाद हिन्द फौज पर केस चलने पर नौ सेना में विद्रोह, सेना उनकी विश्वस्त रही नहीं, पुलिस भी विश्वस्त नहीं रही है, स्वदेशी आन्दोलन के कारण आर्थिक व्यापार भारतीयों के हाथ में आ गया है, वे आर्थिक शोषण करने आये थे, अब भारत आर्थिक दृष्टि से उनके लिये लाभकारी रहा नहीं। अब उनको लगने लगा कि अपने स्वार्थ सुरक्षित रखते हुए भारत को स्वाधीनता देने में ही भला है अन्यथा पुनः सुभाष बोस जैसा नेतृत्व उभर गया या वीर सावरकर जैसों के हाथ में नेतृत्व आ गया तो हम सबको कुत्तों की मौत मरना पड़ेगा। तब ऐसे व्यक्ति की खोज शुरू हुई, जिससे हमारे स्वार्थ सुरक्षित रहें, देश कभी उभर न सके, महाशक्ति बन न सके और देश खण्ड-विखण्डित हो जाय। ऐसा व्यक्ति उन्हें पण्डित जवाहरलाल नेहरू मिला, जो अंग्रेजों से भी ज्यादा अंग्रेज था। वह स्वयं को शिक्षा की दृष्टि से अंग्रेज, धार्मिक दृष्टि से मुसलमान, केवल मात्र एक हिन्दू माता के गर्भ से जन्म लिया इसलिये हिन्दू था। नहीं तो हिन्दू, हिन्दुत्व से उन्हें चिढ़ थी, जिनके पूर्वज मुगल दरबार की

सेवा में रहे और विचारों से वे समाजवादी थे। ये तीनों धाराएं प्रारम्भ से ही देश को विदेश बनाने में लगी हुई, यहां के मुसलमान भारत को इस्लाम की झोली में डालना चाहते हैं, ईसाई ईसा की झोली में डालकर भारत को यूरोप का मानसिक गुलाम और उनका उपनिवेश बनाना चाहता है, और समाजवादी भारत को मार्क्स की झोली में कोई रूस तो कोई चीन का पिछलग्गू देश बनाना चाहता है। इस प्रकार तीनों अराष्ट्रीय धाराओं के गठजोड़ नेहरू थे। अंग्रेजों ने तो उन्हें अपने स्वार्थ के लिये चुना पर गांधीजी ने क्यों चुना इस पर इतिहास मौन है। क्योंकि गांधीजी के विचार और नेहरू के विचार में कोई मिलन बिन्दु नहीं है, गांधीजी कट्टर सनातनी वैष्णव—जो कहते थे मेरे शरीर के सौ टुकड़े कर दो तो प्रत्येक टुकड़ा उठकर के कहेगा ईश्वर है। गांधी ग्राम आधारित आर्थिक संरचना—नेहरूजी इन सबके एकदम विपरीत थे। कांग्रेस कमेटी ने तो सरदार पटेल के पक्ष में मतदान किया था। पर अंग्रेजों एवं गांधीजी की कृपा से वे प्रधानमंत्री बन गये।

कांग्रेस में दो विचार परम्परा देखने को मिलती है। एक को अंग्रेजों ने प्रचलित किया कि भारत कभी एक राष्ट्र नहीं था। क्योंकि राजनैतिक एकता नहीं थी। भारत में प्रायः सभी आक्रान्ता के रूप में आये-द्रविड़ आये-उन्होंने यहां के मूलवासियों को वनों में खदेड़ दिया। स्वयं शासक बन गये। आर्य आये तो उन्होंने द्रविड़ों को खदेड़ कर स्वयं शासक बन गये। इस क्रम में ग्रीक शक, हूण, कुषाण आये, फिर मुगल तुर्क पठान आये, फिर फ्रेंच, डच अंग्रेज आये, जो आये उन्होंने ही शासन किया। अब अंग्रेजों की कृपा से एक मिला-जुला राष्ट्र, खिचड़ी राष्ट्र, हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई मिलकर बन रहा है। कारवां आता गया हिन्दुस्तान बसता गया। यहां कारवां बसने के लिये नहीं लूटने के लिये या देश को इस्लाम व ईसाइयत में रूपान्तरित करने के लिये आया और आज भी इसी दृष्टि से बने हुए हैं। यह बात इसी देश के साथ नहीं विश्व में जहां भी ये गये वहां यही किया और कर रहे हैं। तो भारत अब एक मिला-जुला राष्ट्र बन रहा है इस धारा को मानने वाले नेहरू थे।

दूसरी धारा—भारत प्राचीनकाल से एक राष्ट्र है जिसे स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द से लेकर लोकमान्य तिलक, विपिनचन्द्र पाल, लाला लाजपत राय, अरविन्द घोष, मदनमोहन मालवीयजी, सुभाष बोस, गांधीजी, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, पुरुषोत्तम दास टण्डन, आचार्य कृपलानी, सरदार पटेल, लाल बहादुर शास्त्री, मोरारजी देसाई आदि सभी थे।

पर शासन तंत्र नेहरू के हाथ में आने से स्वराज्य के प्रथम दिन से भारत में भारत की हत्या, हिन्दुस्तान में हिन्दुत्व की हत्या का दौर प्रारम्भ हुआ। नहीं तो प्रथम दिन से गो-हत्या पर पाबंदी लग सकती थी। लोकमान्य तिलक कहा करते थे, स्वराज्य मिलने पर जो प्रथम कलम चलेगी, उसमें गो-हत्या पर पाबंदी लगा

दी जायेगी। गांधीजी ने गोरक्षा को स्वराज्य से भी बड़ा प्रश्न माना था। हिन्दू-मुस्लिम आधार पर देश विभाजित हो जाने और अंग्रेजों के चले जाने के बाद भी देश में गोवध पर प्रतिबन्ध नहीं लग सका एकमात्र नेहरूजी के कारण।

संविधान सभा ने एक स्वर में हिन्दी को राज्य भाषा बनाने का प्रस्ताव पारित किया पर नेहरूजी को यह स्वीकार नहीं था। इस प्रस्ताव के पारित होने के पूर्व उन्होंने घोषित किया था कि वे हिन्दी को राजभाषा नहीं बनने देंगे। उनकी घोषणा के बावजूद जब संविधान सभा ने उपर्युक्त प्रस्ताव पारित किया, तो उनकी ऊर्जा इस प्रस्ताव को निष्प्रभावी बनाने में लग गई। यह निर्णय लिया गया कि हिन्दी राजभाषा के रूप में 15 वर्षों के बाद लागू की जायेगी। तब तक अंग्रेजी पहले के समान बनी रहेगी।

इस बीच 1961 में गृहमंत्री गोविन्द वल्लभ पंतजी थे। उन्होंने सब मुख्यमंत्रियों की बैठक में एकमत से यह प्रस्ताव पारित किया कि देश की सभी भाषाओं के लिये देवनागरी लिपि जो भारत की सबसे अधिक शुद्ध एवं वैज्ञानिक लिपि है, राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से स्वीकार कर ली गई। जैसे यूरोप की सभी भाषाएं रोमन लिपि में लिखी जाती है वैसे सारी भारतीय भाषाएं देवनागरी में लिखी जाय। उस समय बंगाल के मुख्यमंत्री पी.सी. सरकार आदि सभी ने राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने के लिये इसे सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया। उस समय कुल 15 प्रांतीय भाषाएं थी। यह प्रस्ताव जब अंतिम स्वीकृति के लिये प्रधानमंत्री कार्यालय गया नेहरूजी के पास तो वे क्रोध से बिफर गये और गोविन्द वल्लभ को खूब डांट पिलाई। और यह प्रस्ताव निरस्त होकर फाइलों में दब गया। इस घटना से गोविन्द वल्लभ पंत को इतना सदमा पहुंचा, आघात पहुंचा कि एक माह के अन्दर ही उनका शरीर शांत हो गया।

आज देश की स्थिति यह है कि देश की 100 करोड़ जनसंख्या में से यदि 99 करोड़ 95 लाख हिन्दी को एकमात्र राजभाषा बनाना चाहें और अगर मिजोरम राज्य के मात्र 5 लाख लोग न बनाना चाहें, तो हिन्दी एकमात्र राज्यभाषा नहीं बन सकती।

स्वाधीन भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना अब्दुल कलाम फिर प्रो. हिमायु कबीर जिन्हें भारत-भारतीयता से कोई लेना-देना नहीं था, बने। विभाजन के समय पाकिस्तान जा रहे मुसलमानों को रोका—आपको पाकिस्तान जाने की आवश्यकता नहीं है, यहीं बैठे-बैठे आपको पाकिस्तान मिल जायेगा।

अंग्रेजों ने भारत के सभी तंत्रों को चाहे वह शिक्षा तंत्र हो, या न्याय तंत्र हो, या अर्थ तंत्र हो सबको अपने स्वार्थ के अनुकूल ढाला था, जिन्हें स्वराज्य के पश्चात पुनः अपने देश के अनुकूल ढालने की आवश्यकता थी। पर नेहरूजी

अंग्रेजों से भी अधिक अंग्रेज होने के कारण परिवर्तन तो दूर की बात—उसमें जो थोड़ी बहुत भारतीयता थी, वह भी नष्ट कर दी गई। हमारे सारे बौद्धिक संस्थानों पर मुसलमानों, ईसाइयों और कम्यूनिस्टों का कब्जा है, जिन्हें भारत-भारतीयता से कोई लेना-देना नहीं है इसलिये उसे विकृत से और अधिक विकृत किया गया।

स्वामी विवेकानन्दजी ने पश्चिम को सावधान किया था कि यदि उसने पचास वर्ष के अन्दर आध्यात्मिक आधार को न स्वीकार किया तो यह सभ्यता किसी भी समय चिथड़े-चिथड़े में बिखर सकती है। भारत के संदर्भ में कहा—इस देश का मेरुदण्ड धर्म है। पश्चिम की अंधी नकल में इसको छोड़ेंगे तो तीन पीढ़ी जाते जाते तुम सर्वनाश को प्राप्त होंगे। श्री मां ने भारत के संदर्भ में कहा है—भारत का भविष्य बहुत स्पष्ट है। जगत् का भावी ढांचा भारत पर निर्भर है। भारत एक जीवंत आत्मा है। भारत जगत् में अध्यात्म ज्ञान अवतरित कर रहा है। भारत सरकार को इसकी महत्ता को समझकर अपनी कार्ययोजना बनानी चाहिये। पण्डित नेहरूजी ने इन सबके विपरीत भारत से ही भारत के अध्यात्म ज्ञान को तिरस्कृत कर भौतिकता को प्रश्रय दिया जिसमें श्रेष्ठ जीवनमूल्यों के लिये कोई स्थान नहीं होता है। इस्लाम और ईसाइयत जिनमें धर्म और अध्यात्म की गंध भी नहीं है, जिन्होंने सारी दुनिया को आग-आतंक एवं पैशाचिकता के अलावा कुछ नहीं दिया—ये जहां-जहां जिस-जिस देश में गये वहां की श्रेष्ठ सभ्यता-संस्कृति का समूल नाश करके वहां बर्बर विदेशी, पैशाचिक संस्कृति को थोप दिया। इस्लाम के कारण भारत हजार वर्ष तक पदाक्रान्त रहा, जिसके कारण देश का विभाजन हुआ और जिस ईसाइयत के कारण दो सौ वर्षों तक गुलाम रहा, जिन्हें देश की स्वाधीनता के साथ निकाल-बाहर करना चाहिये था। सोनियाजी के काल में जितने भी आयोग बनाये, सबमें हिन्दुओं को कठघरे में खड़ा किया गया। 2011 और 2013 का सामुदायिक हिंसा विधेयक कितना घातक है हिन्दुओं के लिये आप कल्पना भी नहीं कर सकते। भारत सहित सारी दुनिया में दंगा-फसाद करने वाले मुसलमान और ईसाई इसी आधार पर सारी दुनिया में अपना विस्तार किया, अब ईसाइयों ने अपना मार्ग बदला है, सेवा, शिक्षा और धोखाधड़ी और जहां इससे काम नहीं बनता वहां हिंसा भी, और इस्लाम तो अभी भी आग-आतंक को अपनाये हुए है। इस विधेयक के अनुसार जो भी दंगे होंगे उसमें बहुसंख्यक हिन्दू समाज ही दोषी होगा हर स्थिति में। ऐसा दुस्साहस हिन्दुस्तान में हिन्दुओं के विरुद्ध विधेयक लाने का। और यदि यह विधेयक पास हो जाता तो संघ परिवार के प्रायः सभी अधिकारी अशोक सिंघल प्रवीण तोगड़िया एवं स्वामी रामदेव प्रभृति सभी को प्रज्ञा ठाकुर की तरह जेल में अमानुषिक यंत्रणा भोगने को बाध्य होते। औरंगजेब से भी ज्यादा जुल्म हिन्दू समाज को भोगना पड़ता।

भारत को भारत से सब दृष्टियों से चाहे वह आर्थिक जगत हो, चाहे शैक्षणिक जगत हो, चाहे वह इतिहास जगत हो, विज्ञान का क्षेत्र हो, चिकित्सा का क्षेत्र हो, तकनीकी का क्षेत्र हो, भाषा का क्षेत्र हो, संस्कृति का क्षेत्र हो, धर्म का, चाहे पारिवारिक क्षेत्र हो सबमें से भारतीयता का, हिन्दुत्व का लोप करके, पश्चिम की श्रेष्ठताओं की नहीं उनकी विकृतियों की नकल कापी बनाने का क्रम निरन्तर जारी है और उनका मानसिक गुलाम बनाने का सतत प्रयास जारी है। जो हानि शक, हूण, कुषाण नहीं कर पाये, मुगल, तुर्क, पठान नहीं कर पाये, फ्रेंच, डच, अंग्रेज नहीं कर पाये वह हानि नेहरू और नेहरू वंश कर रहा, भारत को नकली अमेरीका (पश्चिमी) बनाने में लगा रहा।

ब्रिटिश आयरिश महिला डॉ. एनी बीसेंट कहती है—भारत और हिन्दुत्व एक और अभिन्न है। हिन्दुत्व के बिना भारत का कोई अस्तित्व नहीं है। भारत में प्रश्रय पाने वाली अनेक जाति और धर्म हैं—पारसी, यहूदी, ईसाई और मुसलमान। ये जिस प्रकार आये वैसे ही वापस चले जायें, फिर भी 'भारत' भारत रहेगा। पर इस देश से हिन्दुत्व मिट गया तो भारत नष्ट हो जायेगा। हिन्दुत्व ही इस देश का मूल है। यही बात ऋषि अरविन्द कहते हैं—सनातन हिन्दू धर्म के उत्थान से भारत का उत्थान और उसके पतन से भारत का पतन जुड़ा हुआ है। सनातन धर्म के उत्थान से राष्ट्रीय चरित्र प्रबल होता है, देश भक्ति की भावना दृढ़ फलतः देश का चहुमुखी विकास हुआ है। सनातन धर्म के पतन से राष्ट्रीय चरित्र दुर्बल हुआ है, देश भक्ति की दुर्बल होने पर देश पतन और पराधीनता को प्राप्त हुआ है। यही बात वेद, रामायण, महाभारत पुराण से लेकर महर्षि दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, लाल, बाल, पाल आदि सभी कहते हैं।

जिन्हें नागरिकता की सुविधा भी नहीं मिलनी चाहिए या नहीं, उन्हें ही अल्पसंख्यक मानकर धर्म और अध्यात्म मान विशेष सुविधा और संरक्षण दे दिया गया। इनका देश के प्रति कोई कर्तव्य नहीं, केवल अधिकार ही अधिकार, राष्ट्रीय अपराध पर अपराध किये जाने पर भी निरन्तर संरक्षण और सुविधाओं में बढ़ोतरी। इस प्रकार विकृत अध्यात्म और धर्म को मान्यता देकर देश को आग-आतंक के हवाले कर दिया गया है। हिन्दुओं के श्रेष्ठ अध्यात्म को बाद देकर पूरे देश का चरित्रहनन किया गया। इसी आधार से मिलावट, घूसखोरी, भ्रष्टाचार को निरन्तर प्रश्रय मिल रहा है। जिस देश का न अपना संविधान, न अपनी मातृभाषा, न अपने महापुरुष, न अपने जीवनमूल्य, न अपना इतिहास, न अपना धर्म, न अपनी संस्कृति, न अपनी राष्ट्रीयता, न अपना अर्थतंत्र, न अपना शिक्षातंत्र—वह राष्ट्र कभी विकास कर सकता है? और कैसे देश भक्ति की भावना पनपेगी? यही कारण है कि उपरोक्त आधारों पर ही प्राचीन भारत में देश भक्ति की भावना प्रबल

होने से राष्ट्रीय लक्ष्य 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम् होने से सारे विश्व की सांस्कृतिक दिग्विजिय कर सके, वृहत्तर भारत की स्थापना कर सके जबकि उस समय यातायात की सुविधा न होने पर भी, देश प्रशासनिक दृष्टि से एक न होने पर भी।

फिर नेहरू जी कम से कम accidently हिन्दू तो थे। अब तो दस वर्षों से जो सत्ता में है वे तो accidently हिन्दू भी नहीं। हिन्दुत्व से दूर का भी रिश्ता नहीं है। इसलिये अराष्ट्रीय मुस्लिम समाज को, ईसाई को सारे अपराधों के बाद खुल्लमखुल्ला जितना बढ़ावा दे सकती है, जितना अर्थ उन पर लुटवाया जा सकता है, सब कर रही है। और हिन्दू समाज को जितना कुचला जा सकता है, दबाया जा सकता है, दबा रही है। और यह सब किस आधार पर हो रहा है? भारत एक हिन्दू, मुस्लिम ईसाइयों का मिला-जुला खिचड़ी राष्ट्र है। और निर्माण की प्रक्रिया में है। इसके विपरीत आज सारा विश्व संकट के दौर में है और भारत को ही विकल्प के रूप में देख रहा है। और भारत में ही भारत का उच्छेद किया जा रहा है कांग्रेस की सड़ी-गली नेहरूवादी धारा के द्वारा। यह धारा विदा होगी, तभी पुनः राष्ट्रवादी कांग्रेस, भारत को प्राचीन राष्ट्र, सनातन राष्ट्र मानने वाली, भारत को माता मानने वाली लोकमान्य तिलक, अरविन्द घोष, सुभाष बोस, गांधी, पटेल, लालबहादुर की कांग्रेस को पुनर्जीवित होने का अवसर मिलेगा, तब भारत में भारत के पुनः प्रतिष्ठा का अवसर आयेगा। नेहरूवादी धारा के लिये देश भारत माता नहीं है, वह तो भूखण्ड मात्र है, सम्पत्ति मात्र है, जिसकी बन्दर लूट में वे लगे हुए हैं। अतः कांग्रेस की नेहरूवादी धारा को विदा करने पर ही भारत माता पुनः अपने उज्ज्वल स्वरूप में प्रकट हो सकेगी। और भारत के उदय से विश्व में सुख-शांति-मैत्री का साम्राज्य स्थापित हो सकेगा। प्रभु कृपा से सत्ता में परिवर्तन हुआ है। मोदी सरकार आयी है। अब लगता है भारत में भारत की सरकार आयी है। इसके पूर्व अपवादों को छोड़कर लगता नहीं था कि भारत में भारतीयों की सरकार है। अब लगता हैं भारत में भारत और भारतीयता को प्रतिष्ठा मिलेगी और भारत पुनः जगद् गुरु के पद पर प्रतिष्ठित होगा।

व्यक्तिगत माता

भारतीय परम्परा में धराधाम पर प्रथम पूज्य माता को माना गया है। वेद भगवान कहते हैं—मातृ देवो भव (माता को देवता मानो)। विदेश यात्रा में स्वामी विवेकानन्दजी से पूछा, आप नारी को किस दृष्टि से देखते हो और उसे सर्वोच्च सम्मान कब मिलता है? तब स्वामीजी ने कहा था—हम नारी को मां के रूप में देखते हैं और उसे सर्वोच्च सम्मान पाने के लिये मां बनने की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। पत्नी तो वह कुछ काल के लिये है, एक प्रयोजन विशेष से। माता वह अनन्त

काल के लिये है। पत्नी तो वह एक की है पर वह माता सबकी हो सकती है। मानव जाति की प्रथम गुरु माता ही है। वह निर्माता के साथ-साथ परित्राता भी है।

पर सेमिटिक परम्परा में नारी में आत्मा नहीं है। पुरुष के मन बहलाव और सेवा के लिये उत्पन्न की गयी है। वह स्वयं पापिन है और पुरुष को भी पाप के संसार में लाने वाली है और वहां मां बनना घृणित कार्य है—वहां के मनीषियों ने मां को बड़ी-बड़ी गालियां दी है। आज भी पश्चिम में नारी मुक्ति, नारी जागरण के पश्चात् भी वहां नारी sex symbol है। भोग्या है। तभी तक उसकी पूछ है, सम्मान की पात्रा है। वहां नारी की भोग्या रूप ही सर्वत्र प्रसारित है। चाहे वह नृत्य हो, गीत हो, विज्ञापन हो, साहित्य हो, कला आदि कुछ भी हो। इसलिये बहुत प्रसिद्ध उक्ति है—भारत में अपनी पत्नी को छोड़कर सबको मां के रूप में देखा जाता है। एक प्रयोजन विशेष के बाद पत्नी में भी मातृ रूप देखे ऐसा भारतीय शास्त्र आदर्श रखते हैं। इसके विपरीत पश्चिम में अपनी मां को छोड़कर सबको भावी पत्नी के रूप में देखा जाता है। बंगाल में जनमती बच्ची को भी मां के नाम से पुकारा जाता है।

इस प्रकार भारतीय परम्परा में मातृत्व की त्रिविध रूप से उपासना की जाती है—जगन् माता के रूप में, राष्ट्रमाता के रूप में और माता के रूप में। आज माता के त्रिविध रूपों की उपेक्षा हो रही है, इसलिये विश्व स्तर पर नानाविध समस्याओं ने जन्म लिया है।

भारतीय परम्परा में प्रकृति जगज्जननी होने से हमारा उसका सम्बन्ध माता और पुत्र का है। मां को कोई भोग नहीं सकता, मां से पालना पाने के अधिकारी हैं। और प्रकृति माता में सबकी आवश्यकतापूर्ति की क्षमता है। हम भी परिवार में उतने बच्चों को जन्म देते हैं, जिनका हम समुचित रीति से पालन-पोषण कर सकें। प्रकृति माता में भी अपने द्वारा प्रसवित सभी को पोषण देने का क्षमता है। पर एक की भी इच्छापूर्ति का सामर्थ्य नहीं है क्योंकि आवश्यकता सीमित होती है पर इच्छाएं अनन्त होती है। प्रकृति से पोषण पाने के क्रम में जो क्षति होती है, उसकी पूर्ति के लिये पंच महायज्ञ का विधान है। लेन-देन के आधार पर प्रकृति का उससे संतुलन बना रहता है। इसलिये हमारे यहां कभी पर्यावरण प्रदूषित नहीं हुआ, क्योंकि हमने प्रकृति के अनुकूल और अहिंसा पर आधारित आर्थिक संरचना को स्वीकार किया। और वैभव सम्पन्न राष्ट्र रहे हैं। वैभव की दृष्टि से हम सोने की चिड़िया कहलाये। और भारत के वैभव से आकृष्ट होकर सारे आक्रान्ता आये।

पर्यावरण की समस्या खड़ी हुई सेमेटिक परम्परा के कारण जो यह मानती है कि आदम-हौवा के उपभोग के लिये ही God ने सृष्टि की संरचना की। सृष्टि में चर-अचर जो भी है वह मनुष्य के उपभोग के लिये है। वहां प्रकृति से माता-पुत्र

का सम्बन्ध नहीं है। प्रकृति वहां दासी रूप में है, भोग्या रूप में है, आसुरी रूप में है, राक्षसी है, डायन है, शत्रु है जो अपने वैभव को छिपाये रखती है। वह उससे लड़कर, छीन करके, उसकी बांह मरोड़कर पाना पड़ता है। प्रकृति का मुख, दांत, नख—रक्तरंजित है, हिंसक है। इस प्रकार वहां भी पुत्र का भाव नहीं है।

इस दूषित विचार परम्परा के कारण पश्चिम में विज्ञान के विकास के साथ पर्यावरण की समस्या उठ खड़ी हुई। क्योंकि विज्ञान ने पर्यावरण या प्रकृति के शोषण की क्षमता दी। इसके पूर्व पश्चिम में विज्ञान का विकास नहीं होने के कारण, अज्ञानता के आधार पर पर्यावरण की रक्षा होती आयी थी।

पाश्चात्य विकास पथ केन्द्रीकृत, विपुल ऊर्जा भक्षी, पूंजी बहुल, बेरोजगारी वर्धक, व्यापक पशु हिंसा पर आधारित और प्रकृति का विनाशक और अन्य देशों के निर्मम शोषण पर आधारित है। इसी कारण पर्यावरण की समस्या पश्चिम में खड़ी हुई।

और भारत में पर्यावरण की समस्या पंडित नेहरू की पश्चिम की अंध नकल के कारण उत्पन्न हुई। महात्मा गांधी और भारत का जो स्वाभाविक विकास का पथ था वह विकेन्द्रित, अल्प ऊर्जा भक्षी, अल्प पूंजी पर आधारित, रोजगार बहुल प्रकृति से सुसंगत और अहिंसा पर आधारित था, जिसे नेहरू ने ठुकरा कर पहले रूस की नकल पर, रूस के ढहने पर अमेरिका की नकल पर देश को चला दिया फलतः भारत में भी पर्यावरण की समस्या के साथ अन्य अनेक समस्याएं उठ खड़ी हुई हैं। और मानव के अस्तित्व के लिये संकट उठ खड़ा हुआ है। मानव एवं जीव-जगत जिन मूलभूत आवश्यकताओं पर अवलम्बित है—पृथ्वी, अन्न, जल, वायु, आकाश—इन सबको प्रदूषित कर दिया है और जहां मानव जीवन सुसंस्कारित होता है, योग्य नागरिक बनता है वह परिवार जीवन, समाज जीवन प्रायः ध्वस्त हो गया है, अतः दिशाहीन मनुष्य जिस क्षेत्र में जाता वहां अशांति-उत्पात खड़ा कर रहा है।

आज पश्चिम के सुलझे हुए विचारक यह स्वीकारने लगे हैं कि प्रकृति एवं अन्य मानव समाज पर हुए निर्मम अत्याचार के लिये ईसाइयत उत्तरदायी है। पर्यावरण प्रदूषण की समस्या के हल के लिये पर्यावरणविदों के कितने ही सम्मेलन हुए, किन्तु कहीं से भी इस समस्या का हल निकल नहीं पाया। समाधान के लिये आखिरकार सबने भारतीय चिन्तन की ओर देखा। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त का अंग्रेजी अनुवाद करके दिया गया—तब सभी ने एक स्वर से कहा—हमने पर्यावरण रक्षा के लिये जो-जो उपाय सोचे थे, वह तो सब इसमें है ही, इसके अतिरिक्त भी बहुत-कुछ है। और वे मानने लगे हैं कि प्रकृति हमारी दासी या शत्रु नहीं है, और न निरीह और बेचारी है। यह एक विराट सत्ता है, ईश्वर की सृजनात्मक शक्ति है अर्थात् हमारी माता है। प्रकृति के साथ हमारा नाता माता-पुत्र का है।

अब तो पाश्चात्य विज्ञान भी भारतीय चिन्तन के निकट आता जा रहा है।

न्यूटन के पश्चात् Relativity theory और Quantum theory ने विज्ञान की दिशा बदल दी और वह पूर्णतः वेदान्त चिन्तन के निकट, वैदान्तिक निष्कर्षों को स्वीकार कर रहे हैं।

Quantum theory तथा 'गैआ सिद्धान्त' ने यह सिद्ध कर दिया है कि यह सृष्टि एक नियमबद्ध यंत्र नहीं है। सारी सृष्टि के अन्दर एक चेतन शक्ति है— Cosmic mind है। एक गणितज्ञ है फलतः सारी सृष्टि में एक क्रम है, समन्वय है, संतुलन है, ताल है, लय है, परस्पर सम्बन्धित है, परस्पर जुड़ाव है, परस्पर निर्भर है। One integral whole है। वह स्वीकार रही है कि सम्पूर्ण भूमण्डल अन्योन्याश्रित है। हमारी पृथ्वी एक जीवित संस्थान है और हम मनुष्य के रूप में इस जीवन्त संस्थान में एक जैव अवयव हैं।

अतः प्रकृति का शोषण स्वयं का शोषण है। प्रकृति के प्रति हिंसा, बलात्कार स्वयं के प्रति हिंसा, बलात्कार है। स्वयं के अस्तित्व को खतरे में डालना है। अतः प्रकृति का शोषण तुरन्त बन्द होना चाहिये। प्रकृति न निरीह है, न बेचारी है। यह एक विराट सत्ता है जो उसके नियमों का निरन्तर उल्लंघन करने वाले को दण्डित करती है। वह दण्ड स्वरूप भूकम्प लाती है, सुनामी लाती है, अकाल, अनावृष्टि, अतिवृष्टि लाती है।

पश्चिम की जो सज्जन शक्ति है, मनीषिवृन्द हैं, वह भारतीय निष्कर्षों को स्वीकारते जा रहे है और बार-बार पश्चिम की राज्यसत्ता को सावधान कर रहे हैं कि वह अपने चिन्तन व कार्य पद्धति में परिवर्तन नहीं करेगा तो नाश को प्राप्त होगा। अतः प्रकृति को जगन् माता मानकर ही हम सुखी-स्वस्थ होकर अपना विकास कर सकते हैं, पूर्णता को प्राप्त कर सकते हैं।

प्राचीन भारत में जब हमारी राष्ट्रभक्ति प्रबल थी, राष्ट्रीय चरित्र सुदृढ़ था तब भारत के प्रशासनिक दृष्टि से एक नहीं होने के बावजूद हमने वृहत्तर भारत की स्थापना की और सारी दुनिया में सांस्कृतिक दिग्विजय की बिना किसी देश की स्वाधीनता छीने, बिना अर्थ पर डाका डाले, बिना मां-बहिनों के शील पर आघात किये, बिना उनके सांस्कृतिक जीवनमूल्यों को नष्ट किये। जब-जब हमारा राष्ट्रीय चरित्र दुर्बल हुआ, देश भक्ति की भावना दुर्बल हुई, तब-तब विदेशी आक्रांताओं का शिकार होना पड़ा चाहे ग्रीक, शक, हूण कुषाण हों, मुगल-तुर्क पठान हों, फ्रेंच, डच, अंग्रेज हों। तब-तब राष्ट्रीय चरित्र को पुनः प्रबल कर, राष्ट्रमाता, भारतमाता के प्रति अपनी भावना दृढ़ करके उनको निरस्त किया। आज पुनः स्वराज्य के बाद राष्ट्र भक्ति की भावना दुर्बल हुई है, देश को गलत प्रधानमंत्री मिलने से। हिन्दू देश

का एक अहिन्दू प्रधानमंत्री जो मात्र शरीर से हिन्दू पर भावों-विचारों से अहिन्दू— भारत के तीन अन्तरराष्ट्रीय शत्रुओं मुसलमान, ईसाई और समाजवाद का गठजोड़ था। जिसके लिये भारत माता न होकर एक भूखण्ड, भू सम्पदा मात्र था, हिन्दू राष्ट्र न होकर एक मिला-जुला खिचड़ी राष्ट्र था, जिस पर प्रथम अधिकार मुसलमान-ईसाइयों का था, गौण अधिकार हिन्दुओं का था। राष्ट्रीय हिन्दू समाज उपेक्षा का शिकार हो गया, विभ्रान्ति का शिकार हो गया और हिन्दू समाज पर ही निरन्तर साम-दाम-दण्ड-भेद का प्रयोग किया गया जो कि शत्रुओं पर प्रयोग किया जाता है। इस कारण आज राष्ट्रीय चरित्र और दुर्बल हुआ फलतः हिन्दू समाज में आपसी फूट, भाई-भतीजावाद, भ्रष्टाचार, जातिवाद, प्रदेशवाद, भाषावाद प्रबल हो गया है, और कौन राष्ट्रीय और कौन अराष्ट्रीय इसके भेद को ही भुला दिया गया है। इस स्थिति से उबरने के लिये पुनः राष्ट्रीय चरित्र के भाव को जगाना होगा, कौन राष्ट्रीय समाज है और कौन अराष्ट्रीय इस बोध को पुनः जगाना होगा और अराष्ट्रीय समाज के प्रति उनके अनुकूल व्यवहार करना होगा तभी राष्ट्रीय चरित्र पुनः उभरेगा, भारत माता पुनः उज्ज्वल रूप में प्रतिष्ठित होगी। तभी भारत पुनः जगद्गुरु के रूप में प्रतिष्ठित होगा और सारे विश्व में सुख-शान्ति का साम्राज्य स्थापित होगा। अब पुनः प्रभु की कृपा से सत्ता में परिवर्तन आया है, मोदी सरकार आयी है, अब लगता है पुनः भारत का राष्ट्रीय चरित्र प्रबल होगा और भारत पुनः अपना खोया हुआ गौरव प्राप्त करेगा।

आज परिवार में मातृभाव गौण, स्त्रीत्व भाव प्रबल होने से परिवार व्यवस्था टूट रही है, जहां मानव का निर्माण होता था। जहां योग्य नागरिकों का गठन होता था। इस कारण परिवार जीवन से सम्बन्धित, समाज जीवन से सम्बन्धित एवं राष्ट्र जीवन से सम्बन्धित अनेक समस्याएं उठ खड़ी हुई हैं। आज की बच्ची Convent स्कूलों में पढ़कर, पाश्चात्य विचार परम्पराओं में पलकर मातृत्व भाव को भूलती जा रही है, स्त्रीत्व में प्रतिष्ठित होती जा रही है। नारी की पूर्णता मातृत्व में है और मातृत्व केवल स्वयं के पुत्र-पुत्रियों तक सीमित न हो यह भाव पुनः जगाना होगा। नारी में स्त्रीत्व या पत्नी भाव एक प्रयोजन विशेष के लिये कुछ काल तक ही है, मातृभाव तो सदा के लिये है। स्त्री तो वह एक की है, माता वह सबकी बन सकती है। अतः नारी भोग्या नहीं पूज्या है, उसको पुनः मातृभाव में प्रतिष्ठित करके परिवार व्यवस्था को पुनः सुदृढ़ कर सकते हैं, जहां से समाज और राष्ट्र को योग्य नागरिक प्राप्त हो सके।

अतः मातृत्व के त्रिविध रूप को संवार कर ही स्वस्थ परिवार जीवन, राष्ट्र जीवन और विश्व जीवन का गठन हो सकता है। और सारे संसार में सुख-शान्ति, समृद्धि का साम्राज्य स्थापित हो सकता है।

गो माता

भारत अध्यात्म प्रधान देश है। आध्यात्मिक दृष्टि के अनुसार सारी सृष्टि एक ब्रह्म का पसारा है। जब उसमें एकोऽहम से बहुश्याम का संकल्प उठता है तब वही अपने आपको जीव, जगत और ईश्वर के रूप में अभिव्यक्त करता है, अतः सारा जगत एकात्म है, सारा चर-अचर परस्पर जुड़ा हुआ है, परस्पर सम्बन्धित है, एक-दूसरे के पूरक, एक-दूसरे पर अवलम्बित है, निर्भर है। चाहे वह जड़ जगत हो जिसमें भूमि, नदियां, पहाड़ आदि आते हैं, चाहे वनस्पति जगत हो जिसमें पेड़-पौधे, घास-फूस आदि आते हैं, चाहे पशु जगत हो और चाहे मानव जगत हो। ये सभी एक ही विराट सत्ता, विराट पुरुष के अभिन्न अंग हैं, इसमें किसी पर भी चोट, प्रहार, शोषण स्वयं पर ही चोट, प्रहार शोषण है। जैसे अपने शरीर के किसी भी अंग पर चोट सारे शरीर को पीड़ित करती है। इस प्रकार संसार में जो भी चर-अचर, जड़-चेतन है उसमें एक ही विराट सत्ता का वास है। सब एक ईश्वर की अभिव्यक्ति होने से एक ही परिवार के सदस्य हैं। इसलिये हमारा राष्ट्रीय आदर्श 'वसुधैव कुटुम्बकम्' है, इस दृष्टि से धरती हमारी माता है, भारत मृण्मय नहीं चिन्मय है। भारत माता है, गाय माता है, तुलसी माता है। हिमालय पर्वत नहीं देवात्मा हिमालय है।

अब पाश्चात्य विज्ञान भारतीय आध्यात्मिक चिन्तन के निकट आता जा रहा है। न्यूटन के पश्चात् Relativity Theory और Quantum Theory ने विज्ञान की दिशा ही बदल दी और वह पूर्णतः वेदान्त चिन्तन के निकट, वैदान्तिक निष्कर्षों को स्वीकार कर रहे हैं। Quantum Theory तथा 'गैआ सिद्धान्त' ने यह सिद्ध कर दिया है कि यह सृष्टि एक नियमबद्ध यंत्र नहीं है। सारी सृष्टि के अन्दर एक चेतन शक्ति है Cosmic Mind है। एक गणितज्ञ है फलतः सारी सृष्टि में एक क्रम है, समन्वय है, संतुलन है, लय है, परस्पर सम्बन्धित है, परस्पर जुड़ा है, परस्पर निर्भर है। One Integral Whole है। हमारी पृथ्वी एक जीवन्त संस्थान है और हम मनुष्य के रूप में इस जीवन्त संस्थान में एक जैव अवयव हैं। अतः प्रकृति के किसी भी अंग का शोषण स्वयं का शोषण है। प्रकृति या प्रकृति के किसी भी अंग के प्रति हिंसा, बलात्कार स्वयं के प्रति हिंसा, बलात्कार है।

भारत एक कृतज्ञता प्रधान देश है, जहां-जहां से भी हमें भगवान की विशेष विभूति का दर्शन होता है, विशेष सेवा मिलती है, उनके प्रति हमारा आदर कृतज्ञता का भाव, सेवा का भाव है। मां के पश्चात् गोमाता ही हमारा जीवन भर अपने दूध से पोषण देती है अतः उसके प्रति पूज्य भाव है, कृतज्ञता पूजा एवं सेवा का भाव है, इसलिये गो पशु नहीं हमारी माता है। इसी दृष्टि से गंगा-यमुना नदियां नहीं हमारी माता हैं, धरती माता है, हिमालय पर्वत नहीं देवात्मा हिमालय है, आकाश पिता है आदि-आदि।

भारत धर्म प्रधान देश है। सनातन हिन्दू धर्म के अनुसार किसी भी वस्तु के तीन रूप होते हैं। एक उसका आधिभौतिक रूप, एक आधिदैविक रूप और एक आध्यात्मिक रूप होता है। इसी क्रम में पृथ्वी का आधिदैविक रूप गो है। जब-जब पृथ्वी पर असुरों का अत्याचार बढ़ता है तब-तब पृथ्वी गो का रूप धरकर ब्रह्माजी के पास अपना कष्ट निवेदन करने जाती है ताकि उसके संकट का निवारण हो। अतः गाय की उपेक्षा या उस पर प्रहार पृथ्वी पर प्रहार है। गाय की रक्षा समस्त पृथ्वी की रक्षा है। हमारे परलोक का आधार गोमाता है क्योंकि हमारे 33 कोटि देवी-देवता एक साथ गोमाता के विग्रह में वास करते हैं। गोमाता की सेवा-पूजा करने से 33 कोटि देवी-देवता की सेवा-पूजा एक साथ हो जाती है। गोमाता की प्रदक्षिणा करने से 33 कोटि देवी-देवता की प्रदक्षिणा एक साथ हो जाती है। और आज विज्ञान भी स्वीकार कर रहा है गोमाता की प्रदक्षिणा करने से हमारा औरा मण्डल बढ़ जाता है। हमारे जितने भी धार्मिक कृत्य है उसमें पंचगव्य आवश्यक है जो गोमाता से ही प्राप्त होते हैं। भारतीय संस्कृति का सर्वोच्च आदर्श यज्ञ है, उसमें गोघृत आवश्यक है जो हमें गो से ही प्राप्त होता है। इस प्रकार गो हमारे परलोक का आधार है।

हमारा ऋषि तंत्र भी गोदुग्ध पर आधारित था। गोदुग्ध से पुष्ट होकर हमारे ऋषि-मुनि ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में नये-नये आयाम देते है।

हमारे लोक का आधार भी गोमाता है। हमने जो अर्थ संरचना स्वीकारी वह गोवंश पर आधारित है। हमारा देश कृषि प्रधान और ग्राम प्रधान है। हमारा अर्थ तंत्र गोवंश पर आधारित है। गाय से दूध प्राप्त होता है, बैल हमारे हल जोतते हैं, पक्के अनाज को खेत से मण्डी तक ले जाने में यानी यातायात के काम आता है। गाय का गोबर खाद में मूत्र कीटनाशक औषधियों के रूप में काम आता है। गोवंश के आधार पर हमारा प्रत्येक गांव स्वावलम्बी था। गांव में रोजगार था। बढई हल और बैलगाड़ी बनाता था, लौहार हल के आगे लगने वाला फाल बनाता था, चर्मकार मरे हुए जानवरों के चमड़े से जूते-चप्पल बनाता था, चरवाहा पशुओं को

पास के जंगल में चराने ले जाता था। प्रत्येक घर में दूध, दही, मक्खन, घी की प्रचुरता होती थी। अतिथि के जल मांगने पर दूध, दही, छाछ से स्वागत होता था। विदेशी आक्रमण के समय में हमारे गांव स्वावलम्बी रहे, हमारी अर्थव्यवस्था टूटी नहीं राज्य भले ही कुछ काल के लिये पराजित हुआ हो, राष्ट्र जीवन अखण्ड रहा। कुछ काल पश्चात् राज्य पुनः स्वाधीन हो जाते थे।

गाय स्वयं में औषधालय है। दूध, दही, छाछ, घी, गोबर और गोमूत्र में चिकित्स्य गुण हैं। भोपाल गैस काण्ड में दो परिवारों का कुछ नहीं बिगड़ा। एक आर्य समाजी परिवार था जो नित्य गोघृत से हवन करता था और एक परिवार में तुलसी का जंगल था। नागाशाकी व हिरोशिमा में अणुबम के विस्फोट से जो त्रासदी फैली आणविक विकिरण से बचने के लिये गोबर के घोल में चद्दर भिगोकर उसको सुखाकर ओढ़ने पर घातक विकिरणों से बचाव हो सका। इसलिये हमारे आंगन, रसोई और दीवारों पर गोबर का लेप किया जाता है। गोमूत्र से नाना प्रकार की औषधियां, गोमूत्र और गोबर से बने साबुन चर्मरोग में विशेष फायदेमंद होता है।

गो को लघु पर्यावरण Mini biosphere कहा जाता है। गाय के पोषण से पर्यावरण को पोषण प्राप्त होता है और पर्यावरण संतुलित रहता है। और गाय पर प्रहार से पर्यावरण क्षुब्ध होता है और अनेक प्रकार से दण्डित करता है, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, सुनामी की लहर से, भूकम्प द्वारा।

इस प्रकार गोसेवा हमारे लोक और परलोक दोनों का आधार रही है। गो सेवा के द्वारा ही सत्यकाम जाबाल ने ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया। गोसेवा के द्वारा ही राजा दिलीप ने रघु जैसा प्रतापी पुत्र प्राप्त किया। गोसेवा के द्वारा वशिष्ठ मुनि का अन्न भण्डार सदा भरा रहता था। गोसेवा के द्वारा जमदग्नि ऋषि का अन्न भण्डार सदैव परिपूर्ण रहता था। गोसेवा के आधार पर ही भारत आध्यात्मिक दृष्टि से, ज्ञान की दृष्टि से जगद्गुरु रहा है, भौतिक वैभव की दृष्टि से सोने की चिड़िया। और भारत में जितने भी आक्रान्ता आये भारत के धन-वैभव से आकृष्ट होकर ही आये हैं। गोसेवा के आधार पर ही भारत के लाखों वर्षों के इतिहास में न कभी पर्यावरण की समस्या खड़ी हुई, न जीवन की मूलभूत आवश्यकता—पृथ्वी, अन्न, जल, वायु, आकाश के प्रदूषण की समस्या खड़ी हुई। न गांवों से पलायन और न किसानों के आत्महत्या करने का कभी अवसर आया।

पर्यावरण, गोवंश और पशुधन पर संकट सेमिटिक विचार के कारण—

सेमिटिक विचार परम्परा जिसमें यहूदी, ईसाई और इस्लाम आते हैं, इनके अनुसार जगत की रचना ही मनुष्य के उपभोग के लिये हुई। सृष्टि में जो भी चर-

अचर है, भूखण्ड, नदी, पहाड़, वनस्पति जगत पशु जगत सब मनुष्य के उपभोग के लिये है। यहाँ तक की नारी शरीर भी मनुष्य के उपभोग के लिये, सेवा के लिये मन बहलाव के लिये, मनोरंजन के लिये है। पुरुष शरीर के अलावा और किसी में आत्मा नहीं है। पशु साग-भाजी की तरह है और उसको साग-भाजी की तरह खाया जा सकता है। उनसे जैसी चाहे सेवा ली जा सकती है।

मनुष्य God या खुदा की सर्वश्रेष्ठ कृति है, सृष्टि का मणि मुकुट है, Crown है। मनुष्य चूंकि सर्वश्रेष्ठ कृति है अतः वह सबका मालिक है, और जैसा चाहे उसका उपभोग-उपयोग कर सकता है। और अन्य मानव समुदाय जो God या खुदा (यानी ईसाइयत एवं इस्लाम) को नहीं मानते हैं वे अविश्वासी हैं, काफिर हैं, हिडेन हैं, उनके भी तन, मन, प्राण, धन और परिवार पर उनका अधिकार है वह जैसा चाहे उनके साथ व्यवहार कर सकते हैं उनका निर्मम ढंग से प्राण हरण कर सकते हैं या जिम्मी बनाकर रख सकते हैं।

पर भारतीय दृष्टि इससे भिन्न है। भारतीय परम्परा में मनुष्य सर्वश्रेष्ठ कृति इस दृष्टि से है कि वह नर से नारायण बन सकता है, और चूंकि वह विवेकी है अतः सारी सृष्टि के यथा योग्य योग-क्षेम वहन का दायित्व उसका है, इसी दृष्टि से भारतीय संस्कृति पंच महायज्ञ का विधान करती है। जिसके द्वारा सारी सृष्टि का योगक्षेम वहन होता है और यह मनुष्य मात्र का जन्मजात दायित्व है। क्योंकि वह जन्म से ही तीन ऋणों को यथा देव ऋण, ऋषि ऋण और पितृ ऋण लेकर आता है और इसके विमोचन से ही सृष्टि संतुलित रहती है। इन दो दृष्टियों से ही मनुष्य श्रेष्ठ है अन्यथा वह भी सृष्टि के अन्य अवयवों की तरह एक अवयव मात्र है। उससे अधिक और कुछ नहीं।

सेमिटिक परम्परा के इस विकृत एवं प्रदूषित विचार ने ही अन्य मानव समूह, पशु जगत और पर्यावरण के शोषण की खुली छूट दी।

भारत में गोमाता पर संकट इस्लाम के भारत में प्रवेश से प्रारम्भ होता है। यद्यपि कुरान और हदीस में गोवध का आदेश कहीं नहीं है। कुरान का पहला अध्याय 'सूरा 2 अलबकरा' जो कुरान का सबसे बड़ा अध्याय है जिसमें सबसे अधिक आयतें है, उसमें स्पष्ट रूप से गोदुग्ध को अमृत और गोमांस को बीमारी माना। अरब में इस्लाम के पूर्व भारतीय संस्कृति फैली हुई थी और उसका जन-जीवन पर प्रभाव व्याप्त था। तभी इस्लाम के पूर्व के कवियों को भारत की, वेद की, कृष्ण की, राजा विक्रमादित्य की, महादेव की स्तुति गाते हुए पाते हैं। इस्लाम के प्रारम्भ से ही भारत के प्रति श्रद्धा पाते हैं। कुरान के अनुसार आदम स्वर्ग से च्युत होकर पृथ्वी पर आये तो श्रीलंका के श्रीपाद पर्वत पर उतरे उसे वे आदम

स्पीक कहते हैं, हिन्दू उसे भगवान विष्णु के पाद का तीर्थ मानते हैं। बौद्ध भगवान बुद्ध के पाद का तीर्थ मानते हैं। स्वयं पैगम्बर मुहम्मद साहब के चाचा अबुल हिक्म भारत और महादेव की प्रशस्ती गाते हुए पाते हैं। स्वयं मुहम्मद साहब भारत के प्रति श्रद्धानत थे। वे कहते हैं भारत से मुझे दिव्य सुगंधि मिलती है। वे स्वयं गोमांस का निषेध करते हैं, उसे बीमारी मानते हैं गोदुग्ध को स्वास्थवर्धक, अमृत और दवा मानते हैं। फिर अरब गरम देश है, गोमांस की प्रकृति भी गरम है अतः गो-गोमांस को बीमारी बतलाया। मक्का शरीफ जो उनका सबसे बड़ा तीर्थ हैं और प्रत्येक मुसलमान के लिये जीवन में एक बार हजयात्रा अनिवार्य है, वहां प्रारम्भ से लेकर आज तक कभी गोकुशी नहीं हुई। वहां गोकुशी निषिद्ध है।

जब इस्लामिक आक्रमण भारत पर हुआ और अपने शौर्य व सैन्यबल से हिन्दू राजाओं को परास्त नहीं कर सके तो उन्होंने युक्ति से काम लिया। उन्हें पता चल गया कि हिन्दू सेना गो पर वार किसी भी कीमत पर नहीं करेगी। गो के प्रति आस्तिक बुद्धि देखकर गो को आगे कर आक्रमण किया और हमारे राजा-रजवाड़ों ने गोहत्या न हो इस भाव से बिना युद्ध किये ही आत्म समर्पण कर दिया।

जब भी कोई विदेशी आघात होता है तो वह उसके प्रेरणा स्रोतों, प्राण केन्द्रों, मान बिन्दुओं को ध्वस्त करता है ताकि देशवासियों का मनोबल टूटे और पराजय में ही संतोष माने। यही कारण है कि उन्होंने मन्दिरों, पुस्तकालयों को नष्ट करने के साथ-साथ गोवध करना प्रारम्भ किया।

इस प्रकार गोरक्षा का प्रश्न मुस्लिम काल में पहली बार उपस्थित हुआ। इसके पूर्व गोहत्या अचिन्तनीय थी। पर बहुत से मुस्लिम शासकों को लगा बिना हिन्दुओं के सहयोग के न ठीक से शासन चला सकते हैं और न अपने शासन को स्थायित्व दे सकते हैं। अतः हिन्दुओं की भावना का सम्मान कर उनके समर्थन व सहयोग पाने की भावना से बाबर हुमायू, अकबर, जहाँगीर, हैदरअली, अहमदशाह ने गोहत्या बंद रखी। 1857 का स्वातंत्र्य समर जिनके नेतृत्व में लड़ा गया अन्तिम मुगल बादशाह बहादुरशाह जफर ने भी गोहत्या पर पाबन्दी लगा दी थी। और गोवध पर प्राण दण्ड का विधान था।

फिर जब अंग्रेजों का शासन भारत में स्थापित हो गया। अंग्रेज भारत का आर्थिक शोषण करने आये थे। उस समय भारत उत्पादन के क्षेत्र में सारी दुनिया में सबसे आगे था। अमरीकन इतिहासकार बिल डुरण्ट लिखते हैं कि कहीं भी मौजूद और अपनी उपादेयता या सुन्दरता के लिये मूल्यवान तथा सभ्य संसार में ज्ञात लगभग हर प्रकार के निर्माण या उत्पाद अनेक वर्षों पूर्व भारत में ही तैयार किये जाते थे। भारत यूरोप अथवा एशिया के किसी अन्य देश की तुलना

में विशालतर औद्योगिक और उत्पादन करने वाला राष्ट्र था। भारत के हथकरघों पर निर्मित उत्कृष्ट सूती, ऊनी तथा रेशमी वस्त्र समूचे सभ्य संसार में प्रसिद्ध थे। वैसे ही भारत के उत्कृष्ट आभूषण, हर तरह के सुन्दर कीमती रत्न-माणिक्य और वैसे ही विविध प्रकार के रंगों, सुन्दर आकारों और गुणवत्ता युक्त भारत के मिट्टी तथा चीनी मिट्टी के बर्तन भी विश्व-विख्यात थे। अंग्रेजों ने भारत में आकर इसे ऐसा ही पाया था।

इस प्रकार जब अंग्रेज यहाँ आये तो भारत आर्थिक तथा सांस्कृतिक रूप से एक उन्नतिशील देश था। किन्तु राजनैतिक रूप से भारतीय लोग दुर्बल और तथा बंटे हुए थे। भारतीयों में राजनैतिक एकता के अभाव के कारण ही विदेशी आक्रान्ताओं ने एक हजार वर्ष से भी अधिक काल तक उन पर शासन किया।

भारत औद्योगिक जगत में भी आगे था और कृषि तंत्र में भी आगे था। भारत के अर्थतंत्र को तोड़े बिना भारत इंग्लैण्ड का बाजार नहीं बन सकता था। भारत का कृषितंत्र गोवंश पर आधारित था। और गोवंश पर भारतीयों की अपार श्रद्धा थी। प्रारम्भ यानी वेदकाल से लेकर अंग्रेजों के काल तक गोमाता के प्रति एक भी अवज्ञा का दृष्टान्त नहीं मिलता। मुगलों से और अंग्रेजों से हिन्दू राजाओं की जितनी सन्धियाँ हुईं उसमें सबसे प्रथम और प्रमुख शर्त गोहत्या पर पूर्ण प्रतिबन्ध था।

एक तो अंग्रेज गोमांस भक्षी थे। दूसरा भारत के अर्थतंत्र, कृषितंत्र को तोड़ने के लिये गो के प्रति अवज्ञा, अश्रद्धा का भाव अपनी संस्कृति और उसके मान बिन्दुओं के प्रति अश्रद्धा निर्माण करना आवश्यक लगा। इसके लिये हमारी शिक्षा व्यवस्था बदलकर हमारे मानस में, हमारी रुचि में ही परिवर्तन कर दिया जिससे हमें अपनी सभी बातें हेय-त्याज्य लगने लगी और उनकी सभी बातें श्रेष्ठ और अनुकरणीय लगने लगी। हमें लगने लगा कि अंग्रेजों को गुरु, आदर्श पुरुष मानकर, उनके बताये मार्ग पर चलकर ही भारत अपना विकास कर सकता है। मुगल काल में हमने शिर दे दिया पर चोटी नहीं दी। यज्ञोपवीत नहीं उतारा सिर दे दिया। इसके पूर्व गोमाता के प्रति एक भी अवज्ञा का भाव नहीं मिलता चाहे वह आस्तिक हिन्दू हो या नास्तिक या किसी भी सम्प्रदाय का मानने वाला हो गाय के प्रति समान आस्था थी। पर अंग्रेजी शिक्षा में शिक्षित होकर स्वयं गोमांस खाकर उसकी सूखी हड्डियां मन्दिरों में फेंकने लगे। इस प्रकार गो के प्रति अवज्ञा का भाव उत्पन्न किया। अंग्रेजों ने हमारे अर्थ तंत्र-कृषि तंत्र को तोड़ने के लिये, स्वयं गोमांस भक्षण के लिये गोवध जारी रखा। गो मारने के लिये मुसलमानों को नौकर रखा ताकि हिन्दू-मुसलमानों में साम्प्रदायिक सम्प्रीति नष्ट हो जाय, आपस में फूट पैदा हो जाय। इसलिये सदैव मुसलमानों को गोवध के लिये उकसाते रहे

और उन्हें कत्लखाने में नौकरी देते रहे। मुगल काल में बहुत से मुस्लिम बादशाहों ने जो हिन्दुओं का समर्थन पाने गो वध पर प्रतिबन्ध लगाया था ताकि हिन्दू-मुस्लिमों में साम्प्रदायिक सम्प्रीति बनी रहे, इसको अंग्रेजों ने नष्ट करने, परस्पर में फूट, वैर-विरोध एवं अविश्वास उत्पन्न करने के लिये कत्लखानों में मुसलमानों को नौकर रखा और दूसरी तरफ हिन्दुओं में गो के प्रति अश्रद्धा निर्माण के लिये बहुत ही चालाकी से गो पर चौतरफा आक्रमण करना प्रारम्भ किया। Convent स्कूलों में पढ़ाया जाने लगा गाय दूध और मांस देती हैं। इसी परिवेश में बंगाल के दो विद्वानों ने 19वीं शताब्दी में अपनी अंग्रेजी में लिखी पुस्तकों में सर्वप्रथम यह स्थापना दी कि वेदों में गोमांस भक्षण का विधान है। ये थे डॉ. राजेन्द्रलाल मित्र जिन्होंने दो खण्डों में एक पुस्तक लिखी—'इण्डो आर्यन्स' तथा श्री राखालदास वन्द्योपाध्याय जिन्होंने 'पाजीटिव साइन्सेज इन प्रिहिस्टारिक एन्शेण्ट एण्ड मार्डन इण्डिया' लिखी। इन्हीं दोनों पुस्तकों में यह प्रतिपादन सर्वप्रथम किया गया। इन्हीं के आधार पर भारत सहित समस्त विश्व ने सर्वप्रथम जाना कि वेदों में गोमांस भक्षण का विधान है। इसके पूर्व यह तथ्य अनजाना था। अंग्रेजों तथा उनके समर्थकों के और अब अंग्रेजी विचारधारा के इण्डियन विद्वानों के एर्ताद्विषयक तर्क के मुख्य आधार आज भी वही है। राजेन्द्रलाल मित्र द्वारा यह भी सिद्ध करने का प्रयास चला कि यहां नरबलि प्रथा थी। नर मांस खाया जाता था। ऐसी बातों के प्रचार से ऐसा वातावरण बना कि अपने समय में विवेकानन्द भी कह गये कि एक समय था, जब भारत में पांच ब्राह्मण मिलकर एक गाय चट कर जाते थे। इसकी एक परिणति आचार्य विनोबा भावे में देखी जा सकती है। विनोबा भावे 'गीता प्रवचन' में कह गये कि वैदिक ऋषि गोमांस खाते थे और फिर इस कथन के लिये प्रमाण दिया सातवीं शताब्दी ईस्वी में भवभूति रचित 'उत्तर रामचरित' नाटक के उस अंश का, जिसका अर्थ भी अस्पष्ट है।' इन सब तथ्यों को गांधीवादी विचारक धर्मपालजी ने अपनी पुस्तक 'भारतीय चित्र, मानस एवं काल' में स्पष्ट रूप से रखा है पृष्ठ 60-61 में।

इसके साथ ही मैक्समूलर, मोनियर, विलियम्ज, मैक्डानल्ड आदि ने गो पूजा को निन्द्य बताने का अभियान छेड़ दिया। यह अभियान बड़ी कुटिलता से चलाया गया। मैक्डॉनल्ड ने लिखा कि पारसी और हिन्दू, दोनों ही अविकसित धर्म, गो पूजक हैं। वे जन एकत्र रहते थे, तभी से यह दयनीय प्रथा अपनाये हुए हैं। मैक्समूलर का कहना था—'हिन्दुओं में एक बुद्धि रहित, निरर्थक गन्दा, बर्बर पाशविक तत्त्व है अफ्रीका और अमेरिका के जो सबसे निकृष्ट कबीले हैं, उनमें भी इतनी बीभत्स, घिनौनी और देखते ही मन में जुगुप्सा-जन्य विद्रोह भड़का देने वाली प्रथा शायद ही हो, जैसी कि पशु-पूजा की प्रथा हिन्दुओं में है। यह तो

अधोगति की निम्नतम दशा है, अतलतम गहराई है। अंग्रेजों के विश्वासभाजन भारतीयों को इंग्लैंड में घुमाकर और वहां सर्वोत्तम डेयरियां दिखाकर उसमें यह भाव भरा जाता था कि गाय दूध और मांस देती हैं। इन दो दृष्टियों से ही पालन होना चाहिये। गाय कोई पूजा श्रद्धा, आस्था की वस्तु थोड़े ही है। गोपूजन के कारण ही भारत की दुर्दशा है। सेमिटिक परम्परा में प्रकृति या गाय से माता-पुत्र का नहीं शत्रुता का, भक्ष्य और भक्षक का सम्बन्ध है अतः गोपूजा, प्रकृति पूजा उनके लिये गाली है, सबसे बड़ी मूढ़ता है, अज्ञता है। इस प्रकार गो-रक्षा, गोसेवा को उपहास योग्य अन्धविश्वास प्रचारित किया गया। इसके बाद भी अंग्रेज इतने सफल नहीं हो सके। क्योंकि इसके विरुद्ध महापुरुषों की शृंखला खड़ी हो गई, महर्षि दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, तिलक, गांधी आदि और सतत आन्दोलन चल पड़ा। जिसमें संतों, महाराजाओं, पण्डितों, सेठों और जनसाधारण की समानरूप से भागीदारी रही। यही कारण है ब्रिटिश काल में 300 कसाई खाने थे जहां प्रतिदिन छ हजार गोवंश कटता था। पर वहां आज 36 हजार कत्लखाने हैं जहां 40 से 50 हजार गायें प्रतिदिन कटती हैं। गो पालक भगवान कृष्ण का यह देश, अहिंसा के नाम से जाने वाला बुद्ध, महावीर एवं गांधी का देश जिसके विषय में प्रचारित किया जाता है कि गांधीजी ने अहिंसा से आजादी प्राप्त की, गोपालक देश आज सबसे बड़ा गो हत्यारा देश बन गया—आज विश्व में दूध, दही, मक्खन, घी सप्लाई के स्थान पर सबसे बड़ा गोमांस निर्यातक देश बन गया, सबसे बड़ा जूता सप्लायर देश बन गया है। दुनिया की बूट पालिश करने वाले मोचियों और गो की हत्या करने वाले कसाइयों का देश बन गया है। जिस देश में विश्व के ज्ञान पिपासु ज्ञान की पिपासा मिटाने आते हैं, धर्म का प्रकाश, साधना का प्रकाश पाने आते थे और अपने को इस देश में आकर धन्य-धन्य, कृत-कृत मानते थे, पूर्णता की अनुभूति करते थे वह स्वयं कसाइयों व मोचियों का देश बन गया। ऐसा क्यों? हिन्दू, मुसलमान के आधार पर देश विभाजित हो जाने तथा अंग्रेज के चले जाने के बाद गोपालन के स्थान पर भी गो हत्या का प्रसंग कैसे आ गया?

द्वितीय विश्व युद्ध के कारण अंग्रेजों की आर्थिक दृष्टि से कमर टूट गयी, भारत में सेना और पुलिस उनकी विश्वस्त रही नहीं, स्वदेशी आन्दोलन के कारण भारत का व्यापार भारतीयों के हाथ में आ गया, अब आर्थिक दृष्टि से भारत पर शासन करना उनके लिये लाभकर नहीं रहा। उनको लगने लगा अब अपने हितों को सुरक्षित रखते हुए, अपनी शर्तों पर देश शासन अहिंसक गांधी के रहते हुए देकर जाने में अपनी भलाई है। नहीं तो कहीं पुनः सुभाष बोस जैसा नेता उभर आये, लोकमान्य तिलक जैसा या वीर सावरकर के हाथ में नेतृत्व आ जाय तो हम सब साम्राज्यवादियों को फांसी पर लटकना पड़ेगा, कुत्ते की मौत मरना

पड़ेगा। तो ऐसे व्यक्ति की खोज प्रारम्भ हुई जो उनके स्वार्थ के अनुकूल हो और जिसके नेतृत्व में देश खड़ा न हो सके, महाशक्ति के रूप में उभर न सके। ऐसा व्यक्ति पंडित नेहरू था जो अंग्रेजों से भी ज्यादा अंग्रेज था, शिक्षा की दृष्टि से अपने को अंग्रेज मानता था, इनके पितामह अंतिम मुगल बादशाह बहादुरशाह जफर के दिल्ली चांदनी चौक के सर्वोच्च पुलिस अधिकारी थे। दिल्ली में अंग्रेज सेना के आक्रमण पर वे भय से परिवार सहित आगरा भाग गये थे। नेहरू के पिता मोतीलाल का जीवन ऐश्वर्यपूर्ण तथा मुगलिया ठाट-बाट का था, वे धर्म की दृष्टि से अपने को मुसलमान मानता था। केवल मात्र हिन्दू माता के गर्भ से जन्म लेने के कारण हिन्दू थे, विश्वासों, आदर्शों से वे समाजवादी, विश्व की तीन अन्तरराष्ट्रीय शक्तियां जो भारत को विश्व के मानचित्र से मिटाकर इस्लाम, ईसाइयत और कम्यूनिज्म की झोली में डालना चाहते थे, उनका गठजोड़ नेहरूजी थे। उन्होंने हिन्दू विरासत पर गर्व की बात तो कई स्थानों पर कही पर वह मात्र दिखावा, छलावा, पाखण्ड मात्र था। वे आजीवन हिन्दू धर्म, संस्कृति, हिन्दी भाषा, गोमाता, हिन्दू मानबिन्दु, हिन्दू इतिहास, महापुरुषों का विरोध करने वाले रहे हैं। यही कारण है हिन्दू-मुसलमान के आधार पर देश विभाजित हो जाने, 23% मुसलमानों को 27% भूमि भारत माता से काटकर दे देने और अंग्रेजों के भारत से चले जाने के बाद भी भारत में गोवध पर प्रतिबन्ध नहीं लग सका। नहीं तो लोकमान्य तिलक कहा करते थे देश को स्वराज्य मिलते ही, जो पहली कलम चलेगी उसमें गोवध पर पूर्ण प्रतिबंध लगा दिया जायेगा। गोवध का कलंक सदा के लिये मिटा दिया जायेगा। गांधीजी स्वराज्य से भी बड़ा प्रश्न गो रक्षा को मानते थे। केवल नेहरूजी की जिद के कारण जो स्वयं भी गोमांस भक्षी थे गो वध पर प्रतिबन्ध की बात तो दूर गोवध को बढ़ावा दिया गया और यह सिलसिला अब तक जारी है। नेहरूजी के कारण हिन्दी राष्ट्र भाषा नहीं बन सकी? महात्मा गांधी की गांवों को विकास का केन्द्र बिन्दु मानने की उचित सलाह को ठुकराकर पाश्चात्य विकास के पथ पर देश को आगे बढ़ा दिया। पाश्चात्य विकास पथ केन्द्रीकृत विपुल ऊर्जा भक्षी, पूंजी बहुल बेरोजगारी वर्धक, व्यापक पशु हिंसा पर आधारित और प्रकृति विनाशक है।

महात्मा गांधी ने जो भारतीय विकास पथ सुझाया था वह विकेन्द्रित, अल्प ऊर्जाभक्षी, अल्प पूंजी पर आधारित रोजगार बहुल और प्रकृति से सुसंगत एवं अहिंसा पर आधारित था। इंग्लैंड ने जो अपना विकास किया है एशिया के शोषण के बल पर, वैसा ही विकास भारत का करना हो तो पूरी दुनिया का शोषण करना पड़ेगा। ऐसा गांधीजी का स्पष्ट मंतव्य था। क्योंकि इंग्लैंड भारत के एक राज्य के समान है। पाश्चात्य ने जो पथ स्वीकारा है उससे स्वयं पाश्चात्य का ही कल्याण

नहीं हो रहा है। कम्यूनिज्म अपने ही घर रूस में ढह गया है। सारी दुनिया के शोषण पर खड़ा अमरीका आज लड़खड़ा रहा है। आज सारा पश्चिम और सारा विश्व पश्चिम की नकल पर चलकर आर्थिक संकट के दौर से गुजर रहा है। आज परिवार जीवन और समाज जीवन ध्वस्त होता जा रहा है। जिन आधारों पर मानव जीवन खड़ा है—पृथ्वी, अन्न, जल, वायु और आकाश ये प्रदूषित होते जा रहे हैं। पृथ्वी जहरीली और बेहोश होती जा रही है, जल जहरीला और उसका स्तर नीचे जाता जा रहा है, अन्न जहरीला होता जा रहा है, वायु भी जहरीली होती जा रही है आकाश की ओजोन परत में छेद होते जा रहे हैं, जिससे घातक विकिरणों का प्रवेश होता जा रहा है, उत्तरी ध्रुव की बर्फ पिघल रही है इससे समुद्र का जल स्तर बढ़ता जा रहा है, ग्लोबल वार्मिंग की स्थिति निर्माण हो रही है। इस प्रकार जीव सृष्टि का अस्तित्व ही संकट में पड़ता जा रहा है। पर्यावरणविदों के जितने भी सम्मेलन हुए हैं उसमें से कहीं भी आशा की किरण न मिलने पर भारत की ओर दृष्टि गयी, भारत की जो पर्यावरण के प्रति दृष्टि है और आर्थिक विकास का पथ है वही विश्व को सही राह दिखा सकता है और विश्व जीवन को सुख-शांति से भर सकता है। आज का विज्ञान भी भारतीय निष्कर्ष को स्वीकारता जा रहा है। Quantum Theory तथा गैआ सिद्धान्त ने सिद्ध कर दिया है सृष्टि नियमबद्ध यंत्र नहीं है। सारी सृष्टि के अन्दर एक चिंतन शक्ति है फलतः सारी सृष्टि में एक क्रम है, समन्वय है, संतुलन, लय है, परस्पर सम्बन्धित, परस्पर जुड़ा हुआ है, परस्पर निर्भर है। One Integral whole है। हमारी पृथ्वी एक जीवित संस्थान है और हम मनुष्य के रूप में इस जीवन्त संस्थान में एक जैव अवयव हैं। अतः प्रकृति या प्रकृति के किसी अंग का शोषण स्वयं का शोषण है, प्रकृति न निरीह है, न बेचारी है। यह एक विराट सत्ता है जो उसके नियमों का निरन्तर उल्लंघन करने वाले को दण्डित करती है।

इसलिये प्रकृति के प्रति भारतीय दृष्टि और आर्थिक विकास का भारतीय मॉडल स्वीकार कर हम अपना वास्तविक विकास कर सुखी-स्वस्थ और सम्पन्न हो सकते हैं। इसीलिये भूतपूर्व राष्ट्रपति अब्दुल कलाम का कहना है 33 करोड़ देवी-देवता के निवास वाली गोमाता अपनी नासमझी के कारण संकट में है। विज्ञान की हर कसौटी पर खरी उतरने वाली भारतीय नस्ल की गाय और गोवंश पर आधारित कृषि संरक्षण को यदि बढ़ावा दिया जावे तो स्वास्थ्य सुरक्षा, आर्थिक सुरक्षा, खाद्यान्न सुरक्षा एवं पर्यावरण सुरक्षा की गारंटी दी जा सकती है तभी सक्षम और स्वावलम्बी भारत का निर्माण हो सकता है।

गोवध का इस्लाम से कोई सम्बन्ध नहीं है, इसकी पहले ही चर्चा हो चुकी है। नहीं तो कश्मीर में गोवध अवश्य होता जो इस्लामिक आतंकवाद का अपने

देश में सबसे बड़ा केन्द्र है। शेख अब्दुला ने और जो कुछ भी भारत राष्ट्र के विरुद्ध किया हो पर उसकी गो पर श्रद्धा और महत्ता बुद्धि होने एवं इस्लाम का गोवध से कोई सम्बन्ध नहीं होने के कारण ही शेख अब्दुला के काल से आज तक कश्मीर में गोवध पर प्रतिबंध है।

इसके बाद भी इमाम बुखारी जैसे मुस्लिम नेता या मौलवी यह कहते हुए पाये जाते हैं—'गो हमारी कौम की खुराक है', उनको वर्तमान रूस के राष्ट्रपति पुतिन की तरह स्पष्ट कर देना चाहिये कि जिनको ऐसी विशेष सुविधा चाहिये उनको भारत देश छोड़कर उन देशों में चले जाना चाहिये जहां ऐसी सुविधा एवं विधान उपलब्ध है। फिर हमने तो 23% के आधार पर 27% भूमि दे दी अतः अब इस प्रकार के किसी भी दावे का कोई भी आधार या अधिकार बनता है क्या? बंटवारे के पश्चात् भी हम उन्हें ससम्मान पाल रहे हैं यह क्या कोई कम बड़ी बात है? क्या विश्व के और किसी भी देश में ऐसा सम्भव है? फिर भारत की भी अपनी परम्परा और विधान है। भारतीय परम्पराओं में गो अवध्य है, और गोवधकारी को प्राणदण्ड का विधान है। और भारत में तो भारत का ही विधान चलेगा।

फिर भारत के सभी नागरिकों को दूध, दही, मक्खन, पनीर, घी चाहिये या नहीं? जब गायें ही नहीं रहेगी तो ये उपलब्ध कहां से होगा? इस तरह हर दृष्टि से गोवध पर पूर्ण प्रतिबंध और गोपालन आवश्यक है तभी दोनों दृष्टियों से भौतिक और आध्यात्मिक ज्ञान-विज्ञान की दृष्टि से समृद्ध खुशहाल, स्वस्थ भारत का निर्माण हो सकता है।

और गाय का अर्थ देशी गायों से है उसके दूध, मूत्र और गोबर में जो गुणवत्ता है, चिकित्सीय गुण है, पर्यावरणीय गुण है, सात्त्विकता है वह और किसी में नहीं है।

अब सत्ता में परिवर्तन हुआ है। मोदी सरकार आयी है जिसकी 'भारत' और भारतीयता में आस्था है। अब पहली बार लग रहा है, स्वाधीनता के पश्चात् भारत में भारतीय सरकार आयी है, जिनका भारतीय जीवन मूल्यों में आस्था है, गो के प्रति परम्परागत आस्था है अतः गोरक्षा और गोपालन के लिये कारगर कदम उठायेगी ऐसी अपेक्षा है। इससे ग्रामोदय व राष्ट्रोदय, आत्म रक्षा और राष्ट्र रक्षा तथा पर्यावरण की रक्षा हो सकेगी। यह कोई साम्प्रदायिक पशु नहीं चलता-फिरता सबकी अन्नपूर्णा मां है।

मां गंगा

विश्व के इतिहास में किसी अन्य नदी ने वहां के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक जीवन को इतना प्रभावित नहीं किया है जितना गंगा ने भारत के संदर्भ में किया है। गंगा भारतीयों के लिये पूज्या, वंदनीया एवं प्रातः स्मरणीया है मां है, वह हमारी संस्कृति और सभ्यता की अविरल धारा है। गंगा के बिना भारत और भारतीय संस्कृति की कल्पना भी नहीं की जा सकती। हमारी महान संस्कृति का विकास गंगा के पावन तटों पर ही हुआ है।

भारतीय संस्कृति मृत्युंजयी संस्कृति है। हम काल में जीते हुए काल के पार चले जाते हैं। हम सहस्राब्दियों में चहल-कदमी करने वाले हैं, मन्वन्तरों में जीने वाले हैं। प्रतिदिन संकल्प के समय काल के परे चले जाते हैं, नासदीय सूक्त के पाठ के समय हम देश-काल के परे चले जाते हैं, सृष्टि के पूर्व की स्थिति में चले जाते हैं।

पौराणिक प्रतीक हमारे प्रतापी पूर्वजों की गौरव गाथा को भी कहते हैं, भौगोलिक परिवर्तन तथा इतिहास सम्बन्धी घटना का भी चित्रण करते हैं। युग-युग से गंगा का प्रवाह चला आ रहा है, गंगा का भी तो अवतरण हुआ था, गंगा कब आई, कैसे आई, क्यों आई, कहां से आई, किसलिये आई, कहां पर थी। हमारे भगवान भी नाचने-गाने वाले हैं। सृष्टि का प्रारम्भ काल। भगवान भोलेनाथ नाच रहे थे। वो सुन्दर नृत्य कर रहे थे और विष्णु भगवान हैं वो मृदंग बजा रहे थे और ब्रह्माजी सामगान कर रहे थे। शंकर भगवान का ऐसा अद्‌भुत नृत्य, आनन्द नृत्य था कि मृदंग बजाते-बजाते भगवान विष्णु के हाथ ही ढीले पड़ गये। तन्मय हो गये, उस आनन्द नृत्य को देखकर। जब अखण्ड आनन्द नाचने लगे तब चारों तरफ आनन्द की फुहार-ही-फुहार तो भगवान विष्णु आनन्द से पिघलने लगे, ब्रह्माजी का ध्यान उधर गया कि भगवान विष्णु पिघल रहे हैं तो तुरंत उन्होंने पिघले हुए विष्णु को कमण्डलु में ले लिया, ज्योंही कमण्डलु से स्पर्श हुआ तो भगवान विष्णु वापस सचेत हो गये। कमण्डलु में विष्णु का पिघला हुआ रूप लिया, उसको वो प्रतिदिन पूजा के काम में लेते, आचमन करते, संकल्प करते—ब्रह्माजी!

उसके बाद में एक अवतार और हुआ। भगवान विष्णु का छोटा सा अवतार, वामन अवतार हुआ था। बलि के अहंकार को तोड़ने के लिये, पूर्ण करने के लिये, उसे अपनाने के लिये हुआ था। उन्होंने बलि से तीन पग जमीन चाही। बलि ने कहा—कैसा पगला, छोटा-सा बालक, भोला-भाला मात्र तीन पग जमीन। अरे! स्वर्ण मांग ले, मकान मांग ले, गायें मांग ले सब दे सकता हूं। गुरु शुक्राचार्य ने मना किया था पर माना नहीं। गुरु की किसी-किसी बात को नहीं मानना चाहिये। अन्दर के गुरु बोले उसके अन्दर से श्रद्धा उमड़ रही थी, देखा वो आ गया मेरा प्रियतम, सृष्टि का मूल, वो विष्णु वामन बनकर आ गया, स्वयं भगवान ही याचक बनकर मेरे दरबार में आ गया, इससे बड़ा और क्या सौभाग्य हो सकता है, अन्दर से श्रद्धा उमड़ रही थी, मुझे देना चाहिये, देना चाहिये। उसने मांगे थे तीन कदम। एक कदम में सारी पृथ्वी नाप ली, दूसरा कदम गया ऊपर सत्यलोक में, ब्रह्माजी ने देखा यह विष्णु के चरण त्रिविक्रम का चरण है, मेरे इष्ट का चरण है, तुरन्त अपने कमण्डलु से जल लिया, और चरणों को धो लिया, प्रक्षालन किया और वह जल द्युलोक में ही विचरता रहा। मन्द-मन्द विचरता रहा, इसलिये मन्दाकिनी कहलाया। फिर प्रसंग आया, ऋषि कपिल के शाप से सगर पुत्रों के उद्धार का, एक पीढ़ी, दो पीढ़ी, तीसरी पीढ़ी भगीरथ ने घोर तप किया, तब तप से प्रसन्न होकर भगवान ने कहा उनका उद्धार द्रवित विष्णु से, मन्दाकिनी से ही हो सकता है। उसे धरती पर लाने के लिये उसे प्रसन्न करो। भगीरथ ने मां गंगा को प्रसन्न करने के लिये तप किया। तप से प्रसन्न होकर धरती पर आने के लिये राजी हो गई। पर समस्या थी उसके वेग को कौन धारण कर सकेगा? ऐसे मैं नहीं आ सकती। ऐसे आऊंगी तो पृथ्वी चूर-चूर होकर नष्ट हो जायेगी। तो भगवती आप बताओ आप कैसे आओगी? तुम पता लगाओ मैं कैसे आ सकती हूं? फिर पता लगा केवल भोलेनाथ ही गंगा के वेग को सहन कर सकते हैं, भोलेनाथ की तपस्या की। वे तो आशुतोष हैं, वो प्रसन्न हो गये, कहा ठीक है आने दो गंगा को और जटाओं को खोलकर कमर पर हाथ रखकर खड़े हो गये, गंगाजी को कहा अब आइये शिव की जटाओं में उतरिये। गंगाजी ने कहा ये शिव और उनकी जटाएं इसको भी मैं देख लूंगी। वो उछलती हुई बड़े वेग से आयी। शिवजी को पता लग गया कि ये तो घमंड में आ रही है । ये तो दर्प भरकर आ रही है, अहंकार को लेकर आ रही है, तो उन्होंने जटाओं को इतना विस्तृत किया और कस दिया कि गंगा उसमें खो गई। अब जोर लगा रही है, घूम रही है, किधर से निकलूं, किधर से निकलूं, पर शंकरजी ने सारे द्वार बंद कर दिये। पूरी तरह से गुम हो गई। भगीरथ ने कहा—अरे फिर गायब हो गई, फिर प्रार्थना की भोलेनाथ से कि भोलेनाथ मेरे पितरों का उद्धार करना है, आप कृपा करके मां गंगा को आने दीजिये, तो थोड़ा जटाओं को ढीला

कर थोड़ा-सा मार्ग दिया। जैसे बांध का गेट खोलते हैं। गंगाजी निकली, फिर भी थोड़ा अहंकार था, उनमें। जब शिव की जटाओं में घूम रही थी, तब मन्दाकिनी से अलकनन्दा कहलाई। भगीरथ की तपस्या से यही मंदाकिनी शिव की जटाओं में अलकनन्दा कहलाई। यही धरती पर उतरी तो गंगा कहलाई। इस प्रकार गंगा ब्रह्म स्वरूपिणी है। और गंगा का जल 'ब्रह्मद्रव' कहलाता है क्योंकि विश्व के कल्याण के लिये भगवान् विष्णु द्रवीभूत होकर सर्वजन सुलभ होकर धरती पर बह रहा है। पर अभी भी गंगा का अभिमान शेष था। अब निकली तो कहा अब जो भी मेरे सामने आयेगा उसको मैं उखाड़ कर फेंक दूंगी। पत्थरों को उखाड़ती हुई, पेड़ों को उखाड़ती हुई और रास्ता बनाती हुई जा रही थी, तो हरिद्वार के ऊपर ऋषि लोग रहते थे, तो ऋषियों की झोंपड़ियों का उठाकर के पटक दिया, कुछ घबराकर भागे। एक ऋषि जबरे थे, उन्होंने उठाकर आचमन कर लिया, उसको अपने अन्दर ले लिया। उस समय ऋषियों में तेज होता था। तो फिर भगीरथ दुःखी हो गये, ऋषि से प्रार्थना की तो उन्होंने अपनी जंघा चीरकर उसे मुक्त किया। वह इस प्रकार पुनः जन्म ऋषि की जंघा से प्रकट होने के कारण उनकी कन्या बन गयी और जाह्नवी कहलायी। फिर भगीरथ आगे-आगे गंगा उनके पीछे-पीछे बहने लगी। इस प्रकार सगर पुत्रों का उद्धार हुआ। गंगा को धरती पर भगीरथ लाये इसके लिये उसका नाम भागीरथी पड़ा।

भारतीय संस्कृति और अधिदेव

बिना अधिदेव को माने भारतीय संस्कृति न तो सिद्ध हो सकती है और न ही उसे हम समझ सकते हैं। गीता में ज्ञान की परम्परा बताते हुए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं सर्वप्रथम गीता का उपदेश सूर्य को दिया। भगवान् राम समुद्र से रास्ता मांगने के लिए तीन दिन प्रार्थना करते रहे, प्रार्थना कारगर न होती देखकर कोप किया तो समुद्र देव प्रकट हुए और समुद्र पार करने का मार्ग बताया। भगवान् राम के अवतरण के साथ-साथ देवशक्तियां बंदर-भालू के रूप में रावण के संहार के लिए प्रकट हुईं। कुन्ती माता के पांचों पुत्र एवं कर्ण बिना देवों की सत्ता के सिद्ध नहीं हो सकते न ही भीष्म पितामह गंगा के पुत्र थे, सिद्ध होगा। क्योंकि यही गंगा आठ वस्तुओं की प्रार्थना पर उन्हें तारने के लिये महाराज शान्तनु की पत्नी बनी और आठ पुत्रों को जन्म दिया, महापराक्रमी भीष्म पितामह उनके आठवें पुत्र थे।

भारतीय शास्त्र परम्परा एक ईश्वर को मानती है। उसके साथ ही प्रकृति की भिन्न-भिन्न शक्तियों का शासन भिन्न-भिन्न देवों के अधीन माना जाता है, जैसे वायु, अग्नि, वरुण, कुबेर, इन्द्र आदि। ये देवता प्रकृति के भिन्न-भिन्न विभागों के शासक हैं। पर इन देवताओं का भी ईशन करने वाला जो देवाधिदेव है उसे परमेश्वर (परम + ईश्वर) अर्थात् सब पर शासन करने वाला परम शासनकर्ता कहा

जाता है। अधिदेव को मानने पर ही संत रविदास जी के नारियल को स्वीकारने स्वयं गंगा माता हाथ बढ़ाकर ग्रहण करने वाली घटना सिद्ध होगी एवं रामकृष्ण परमहंस देवजी की विभिन्न देवी-देवताओं की उपासना भी अधिदेव को सत्य मानने पर ही मान्य होगी। प्राचीन साहित्य में वर्णन आता है नदियां बोली, यह सब अधिदेव की दृष्टि से सही है। स्पष्ट है बिना अधिदेव को स्वीकारे एवं माने भारतीय संस्कृति की व्याख्या नहीं हो सकती।

आज विज्ञान भी सृष्टि के मूल तत्त्व को चेतन मानने लगा है। कोई भी वस्तु निरी जड़ नहीं है। Quantum theory तथा 'गैआ सिद्धान्त ने यह सिद्ध कर दिया है कि यह सृष्टि एक नियमबद्ध यंत्र नहीं है। सारी सृष्टि के अन्दर एक चेतन शक्ति व्याप्त है और यह प्रयोग के द्वारा सिद्ध हो रही है। चेतना और पदार्थ के सम्बन्ध में प्रयोग होने लगे हैं, जिसे माननीय सुरेश सोनीजी ने 'वर्तमान वैश्विक परिदृश्य एवं भारत की भूमिका' के पृष्ठ 11-12 में दिया है, जो इस प्रकार है—**'द हिडन मैसेज इन वाटर'** एक जापानी साइंटिस्ट हैं इमैटो उसके मन में आया कि पदार्थ का और भावनाओं का कुछ सम्बन्ध है। आदमी जो सोचता है, जो भावनाएं मन में उठती हैं, जो विचार आते हैं, वह सामने वाली जो जड़ सृष्टि है, पदार्थ है, इसमें कुछ परिवर्तन लाता है क्या? इसको प्रत्यक्ष प्रयोग द्वारा सिद्ध कर सकते हैं क्या? उसने एक विचित्र प्रयोग किया। उसने एक ही बोरवैल का, एक ही क्वालिटी का पानी तीन अलग-अलग बोतलों में रखा। तीन बोतलों में रखकर एक बोतल में उसने एक स्लिप लगाई, उस पर लिखा—'लव' (Love)। दूसरी बोतल में पानी भरा उस पर एक स्लिप लगाई उस पर लिखा 'हेट' (Hate)। तीसरी बोतल में पानी भरा उस पर स्लिप लगाई उस पर लिखा 'टेरर' (Terror)। तीनों बोतल उसने अलग-अलग हॉल में रखी। रोजाना सुबह वह उठता था—हर बोतल के सामने जाता था जिस पर 'लव' की स्लिप लगी थी तो मन में प्रेम की भावना पैदा करना, प्रेम के वाक्य बोलना, उस बोतल से बात करता था 10 मिनट तक, वैसे ही चेहरे के हाव भाव! वैसा का वैसा ही फिर दूसरी बोतल के सामने जाता था जिस पर लिखा था 'हेट'। वैसे के वैसे ही भाव, वैसे के वैसे ही वाक्य, वैसा ही चेहरा और फिर तीसरी के सामने जाता था 'टेरर'। फिर वैसे के वैसे ही दहशत के भाव, वैसा ही चेहरा, वैसे ही वाक्य तीन महीने तक उन्होंने यह प्रयोग किया। तीन महीने करने के बाद तीनों बोतलों को उसने फ्रीज के अन्दर रखा और बर्फ बनाया तो क्यूब्स निकले। **बर्फ के क्यूब्स का माइक्रोस्कोप से जब उसने विश्लेषण किया तो बड़े विचित्र अनुभव आये। लव की बोतल से जो क्यूब बना था वह डायमंड की तरह चमकता हुआ एकदम जैसे हीरा चमकता है उस तरह से सम्पूर्ण सर्वांग—उसमें कुछ कमी नहीं।** लेकिन जो टेरर और हेट के क्यूब्स

थे कटे-फटे धब्बे हैं, उसमें भद्दे से। फिर उसने तरह-तरह के प्रयोग किये। पॉप म्यूजिक, क्लासिकल म्यूजिक, प्रकृति के सुन्दर चित्र और भद्दे चित्र, पानी की बोतल लगाना, फिर उनके क्यूब्स बनाना, फिर चैक करना, तीस साल, जीवन भर उसने प्रयोग किये। हर बार उसके ध्यान में आया कि **अच्छे विचार, अच्छे दृश्य, अच्छी भावनाएं ये जो क्यूब बनाती है वह परफेक्ट रहती है।** तब उसने कहा कि ये जो सारी दुनिया में कहा जाता है कि भाई **संघर्ष, हिंसा ये अंतिम उपाय नहीं हैं, दुनिया को अगर सुखी होना है तो प्रेम, यह अंतिम है प्यूरिफिकेशन के लिये, परफेक्शन के लिये।** तो सारी दुनिया में यह क्यों कहा जाता है? यह केवल कोई इमोशन नहीं है, यह केवल कोई कॉन्सेप्ट नहीं है—**साइन्टिफिक हार्ड टूथ है।**

भौतिक दृष्टि—

अब भौतिक दृष्टि से देखें तो—गंगा हिमालय से उत्पन्न हुई है। प्राचीन काल में तिब्बत ही स्वर्ग था। गंगा तिब्बत (स्वर्ग) से आती है। भगीरथ से पूर्व उसका सारा जल हिमालय से उत्तरी पठार की ओर बहता था। भगीरथ ने (इंजीनियरिंग की) तपस्या द्वारा गंगा को भारत में आने का मार्ग दिया। गंगा मनुष्य द्वारा निर्मित सबसे बड़ी नदी है।

शंकरधाम कैलास तिब्बत में है। प्राचीनकाल में लोग तपस्या के लिये कैलासवास या तिब्बत जाते थे और फिर लौट आते थे। तिब्बत का अधिपति अर्जुन भी वहीं तपस्या के लिये गया जहां उर्वशी का प्रसंग आया, वहाँ से गांडीव लाया और नेपाल से पाशुपतास्त्र शंकर भगवान से ले आये। पांडव लोग अपने उत्तर जीवन में उसी मार्ग से स्वर्ग गये। वहां शीत और हिम अधिक होने से अनेकानेक लोग गल जाते थे, इसलिये स्वर्गवास का अर्थ मृत्यु रूढ़ हो गया। अभी भी मृत्यु के पश्चात् सिर उत्तर दिशा में कर दिया जाता है।

श्रीमद्‌भगवदगीता में भगवान् ने कहा है—स्त्रोतसमस्मि जाह्नवी 10/3 स्रोतों में मैं गंगा हूं। ऋग्वेद, महाभारत के वनपर्व और अनुशासनपर्व, पद्मपुराण, विष्णु, कूर्म, वराह, ब्रह्मानंद, भविष्य, गरुड़, नारदीय, स्कंदादि पुराणों में गंगा की महिमा का गान है। वाल्मीकि से शंकराचार्य तक, संत कवियों की वाणी में, लोक गीतों में गंगा की अद्‌भुत महिमा का गान भरा हुआ है।

इस प्रकार भारत का साहित्य गंगा की स्तुति से भरा पड़ा है। सभी सन्तों, आचार्यों और युग पुरुषों ने गंगा को पावनी के रूप में मान्य किया है। भारत के विभिन्न सम्प्रदायों के सैद्धान्तिक मतभेद होने पर भी गंगा के प्रति सबका समान आदर मान है। शिव की जटाओं में परिभ्रमण के कारण शैवों और विष्णु के चरणकमलों से आविर्भूत होने के कारण वैष्णवों, दोनों के लिये गंगा परमपावन

है। गंगा को आदि शक्ति का एक रूप माना जाता है, अतः शाक्तों का भी गंगा के प्रति उच्चस्थ आदर भाव है। शंकराचार्य से चैतन्य महाप्रभु तक, प्रायः सभी धर्माचार्यों ने गंगा स्नान कर अपने को धन्य माना है। जैन आगमों में भी गंगा की श्रेष्ठता की स्तुति है—भगवान महावीर गंगा की प्रशंसा में कहते हैं, जैसे ऐरावत, हाथियों में श्रेष्ठ है, सिंह, वनचरों में शक्तिशाली है और गंगा सर्व नदियों में श्रेष्ठ है।

मुसलमान कवियों में कबीर, रहीम, ताज और मीर ने तो गंगा की महिमा के सम्बन्ध में इतना डटकर लिखा है कि कोई हिन्दू कवि भी उनकी समता कहीं-कहीं नहीं कर पाता है। रसखान ने तो गंगा की भक्ति में जो कुछ भी लिखा है—उसका कोई दूसरा उदाहरण नहीं मिलता। रसखान ने तो यहां तक लिख दिया है कि गंगा इतनी महान् है कि उसके पवित्र जल के भरोसे ही शिवशंकर भी आक और धतूरे का प्रयोग करते हैं। अर्थात् शिवजी भागीरथी (गंगा) के अमृतमय जल के ही कारण मृत्युंजयता प्राप्त किये हुए हैं—

बेद की औषधि खाऊं कुछ न करो व्रत संजम री, सुनु मोसे।
तेरी इ पानी पियौ 'रसखानि' संजीवन लाभ लहौं सुख तोसे।।
ए री! सुधामयी भागीरथी! कोउ पथ्य-कुपथ्य करै तउ पोसे।
आक धतूर चबात फिरै विष खात फिरै सिब तोरे भरोसे।।

गंगाजल में चामत्कारिक शक्ति है। इसमें प्राणवायु (ऑक्सीजन गैस) की अत्यधिक मात्रा घुली रहती है। हानिकारक कीटाणु इसमें जीवित नहीं रह पाते। इस सत्य का साक्षात्कार अनेक वैज्ञानिकों की प्रयोगशाला में परीक्षण के द्वारा हो चुका है। इसमें प्रोटेक्टिव कौलाइड पाये जाते है जो गंगा जल को कीटाणु रहित बनाए रखते है, जिससे जल खराब नहीं होता। इसके साथ ही खनिज पदार्थों एवं वनोषधियों से समृद्ध होने के कारण गंगाजल कई प्रकार की व्याधियों को दूर करता है। पश्चिमी देशों में अनेक डाक्टर चर्म रोगों के लिये, गंगाजल की मालिश का इलाज बताते हैं। गंगा केवल नदी नहीं है, एक पावन तीर्थ है। उसके जल में कुछ ऐसी रहस्यमयी शक्ति छिपी हुई है जो विश्व की किसी अन्य नदी में नहीं मिलती। वैज्ञानिकों ने गंगाजल की चामत्कारिक शक्ति को स्वीकार किया है।

गंगाजल की इस चामत्कारिक शक्ति से प्रभावित होकर अनेक मुगल बादशाह गंगाजल का ही सेवन करते थे। चौदहवीं सदी में प्रसिद्ध विदेशी यात्री इब्नबतूता एशिया के अन्य देशों का भ्रमण करते हुए भारत आये थे। उन्होंने अपने यात्रा विवरण में लिखा है, 'सुल्तान मुहम्मद तुगलक यद्यपि दक्षिण में दौलत बाग में रहता है, लेकिन वह गंगा का ही जल पीता है और गंगा के पानी को उत्तर से दक्षिण पहुंचने में चालीस दिन लग जाते हैं। मुगल सम्राट अकबर राजधानी में हों या प्रवास

में, वे सदैव गंगाजल ही पीते थे। अबुल फजल ने अपने ग्रंथ आइने अकबरी में पूरा विवरण दिया है। औरंगजेब जैसा कट्टर, कठोर कलेजे वाला बादशाह भी गंगाजल के कीटाणुनाशक और शक्तिवर्धक गुणों को मंजूर करता था और सदा इसी का प्रयोग करता था। जब विश्ववासी और मुस्लिम बादशाह गंगा की महिमा स्वीकारते हैं, तब भारतवासी या हिन्दू समाज इसे अत्यन्त पवित्र, रहस्यमय शक्तियों से युक्त, अपने लोक, परलोक और मुक्ति का आधार माने तो इसमें क्या आश्चर्य है। इसके पवित्र जल में स्नान से शरीर के साथ-साथ मन-बुद्धि भी शुद्ध होवे तो क्या आश्चर्य है? नास्तिक नेहरू के मन में भी अन्तर्द्वन्द्व था अपनी पत्नी की अस्थियां कहां विसर्जित करूं, अन्त में प्रयाग के त्रिवेणी संगम में विसर्जित करते हैं।

गंगा के पावन तटों पर हमारे तीर्थ स्थित हैं जहां हमारे अवतारों, महापुरुषों, ऋषि-मुनियों, संत-महात्माओं की लीला स्थली, तप स्थली होने से और उनके स्पर्श से नित्य पवित्र होने वाली मां गंगा भी आधुनिक सभ्यता के शाप से, अत्यधिक औद्योगिकीकरण के उच्छिष्ट विषैले कचरे से, कृषि में रासायनिक खाद एवं कीटनाशक औषधियों के प्रयोग ने जल प्रदूषण की समस्या को जन्म दिया है। जिस जल का पुराना नाम 'जीवन' है। अब मनमाने औद्योगिकीकरण के कारण कहीं-कहीं उसका नया नाम 'मृत्यु' रखने की विवशता पैदा हो गयी है। जो गंगा के प्रति मातृभाव रखता है, वह यदि तट पर मल-मूत्र का विसर्जन भी करता है, अन्य गलतियां भी करता है, तो गंगा उसे क्षमा कर सकती है, सद्बुद्धि देकर सन्मार्ग पर ला सकती है। पर जो गंगा या अन्य नदियों के प्रवाह में जानबूझकर औद्योगिक प्रदूषण, विषाक्त द्रव्य घोलता है या घोलने में सहायक बनता है, वह गंगा का शत्रु है, गंगा-पुत्रों व गंगा-पुत्रियों का शत्रु है।

शहरी मल-मूत्र, रासायनिक औद्योगिक अवशेष की फैलती भीतरी धारा का और गंगाजल में विषाक्त मिश्रण का। ये मल-मूत्र, ये औद्योगिक अवशेष निरंतर तीव्र गति से जगह-जगह गंगा में गिरते हैं और गंगा पर अंधाधुंध बांध बनाकर गंगा की धारा को अवरुद्ध किया जा रहा है। ये आधुनिक सभ्यता के दुष्परिणाम है। औद्योगिकीकरण, शहरीकरण के दुष्परिणाम हैं, जिसे पुनः भारतीय अर्थव्यवस्था जो ग्राम पर आधारित, विकेन्द्रित, कुटीर उद्योगों पर आधारित, गोवंश पर आधारित कृषि तंत्र को स्वीकार कर जो अहिंसा पर आधारित, प्रकृति के अनुकूल है, उससे सुसंगत है को अपनाकर ही इन समस्याओं से निजात पाया जा सकता है। गंगा की पवित्रता, शुद्धता अविरल धारा अक्षुण्ण रह सकती है।

अब सत्ता में परिवर्तन हुआ। भारत और भारतीयता के प्रति आस्थान्वित मोती सरकार आयी है। गंगा शुद्धि परियोजना पर काम भी शुरू करवा दिया है, अब इसमें कितनी सफलता मिलती है, भविष्य बतलावेगा।

पार्वती-शकुन्तला तपसा विजय

पश्चिम में विवाह का आदर्श है भोग द्वारा नर-नारी का संयोग। भारत का आदर्श रहा है तपस्या द्वारा अमर मिलन। प्रारम्भ में पार्वती ने कामदेव के उद्दीपन में आकर कामदेव के कृत्रिम वसन्त द्वारा प्रभावित होकर शिव को प्राप्त करने की चेष्टा की, किन्तु यौवन के उद्दाम वेग में किया गया मिलन कभी सफल नहीं होता। कामदेव भस्म हो गया। शंकर के तृतीय नेत्र से निकलने वाले तेज की ज्वाला से सारी सृष्टि दग्ध होने लगी और पार्वती को बड़ी आत्मग्लानि हुई तब उसने अपने सब रत्नाभूषण फेंककर शिव की प्राप्ति के लिए तप करना प्रारम्भ किया। भूख-प्यास, सांसारिक आवश्यकता को भुलाकर वह कन्याकुमारी के स्थान पर कुंवारी कन्या के रूप में तीन समुद्रों के मिलन बिन्दु पर एक चट्टान पर बैठकर अनन्य भाव से शिव का चिन्तन करती रही। उस तपस्या के प्रभाव से शंकर को कैलास से आकर कन्याकुमारी में स्वयं पार्वती को वरण करना पड़ा। इस तरह सारा भारत शिव-शक्ति के अखण्ड मिलन से पावन हो गया।

यौवन के उद्दाम वेग में शकुन्तला ने बिना अपने पालक (ऋषि कण्व) से अनुमति लिए दुष्यन्त का वरण कर लिया। परिणामस्वरूप दुर्वासा ऋषि के शाप से दुष्यन्त शकुन्तला को बिल्कुल भूल गया। पहचान की मुद्रिका को भी भूल गया। शकुन्तला को तिरस्कार कर निकाल दिया। शकुन्तला को आत्मग्लानि सहनी पड़ी। शकुन्तला ने जंगल में तपस्या की, उधर दुष्यन्त को भी स्मृति लौटने पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। तपस्या के पश्चात् दुष्यन्त और शकुन्तला का अमर मिलन हुआ। उनकी सन्तान भरत के नाम पर हमारे देश पर 'तपसा विजयम्' की मुद्रा अंकित हो गई।

माता अनुसूया

भगवान का अवतार अनसूया से हुआ है। अनसूया अत्रि ऋषि की पत्नी जिसने जीवन में किसी से सूया नहीं किया, जिसने किसी से जलन नहीं रखी। ऐसी स्त्री जिसने सीता को भी पतिव्रता धर्म का उपदेश दिया। अनसूयाजी के सतीत्व से विचलित होकर एक बार उमा, रमा तथा ब्राह्मणी ने ईर्ष्यावश अपने-अपने पतियों को इन्हें पतिव्रता धर्म से च्युत करने के लिये भेजा। भगवान शंकर, क्षीरोदधिशायी भगवान विष्णु और चतुरानन अपने-अपने वाहनों पर चढ़कर महर्षि अत्रि के आश्रम पर पहुंचे। तीनों मिले। त्रिदेवों का एक ही उद्देश्य था।

वे साधुवेश में भगवती अनसूया के समीप पहुंचे। भगवती पाद्य अघ्र्य और आचमनीय लेकर आयी तो इन लोगों ने स्वीकार नहीं किया। आप विवस्त्र होकर हमारा सत्कार करें तो आपकी पूजा स्वीकार की जाएगी। इन लोगों का विचित्र प्रस्ताव सुनकर ये चकित हो गई। तत्पश्चात् अनसूयाजी ने तनिक सा ध्यान लगाया तो सब जान गई। उन्होंने कहा यदि मैं सच्ची पतिव्रता हूं, भूल से स्वप्न में भी काम भाव से परपुरुष का चिंतन न किया हो तो तीनों छह-छह मास के बालक हो जायें।

सती का इतना कहना था कि त्रिदेव छह मास के बच्चे बन गये। अब विवश होकर माता ने अपना दुग्धपान कराया। महर्षि ने आकर यह दृश्य देखा तो हंस पड़े। अब त्रिदेव माता के दुग्ध पर जीवन धारण कर रहे थे। उधर अधिक दिन बीत जाने पर उमा, रमा, ब्रह्माणी तीनों अपने-अपने पतियों का पता लगाने चली, तो महर्षि अत्रि के आश्रम के समीप तीनों का मिलन हो गया। तीनों ने माता अनसूया से क्षमा मांगी। ब्रह्मा विष्णु महेश तीनों ने अपने-अपने अंश से उनका पुत्र बनने का वचन दिया। इसी से तीन पुत्र हुए चन्द्रमा प्रजापति के अंश से, दत्तात्रेय विष्णु के अंश से और दुर्वासा रुद्र के अंश से जिनमें कोई असूया नहीं तभी भगवान् ब्रह्मा, विष्णु, महेश उनके पुत्र बन गये।

रावण ऋषिपुत्र, वेदपाठी ब्राह्मण होते हुए भी असुर क्यों कहा गया?

लक्ष्मण भगवान् राम से पूछते हैं रावण तो विश्रवा ऋषि का पुत्र है, वेदपाठी ब्राह्मण होते हुए भी सोने की लंका देखी तो उस पर उसका मन डोल गया। पुष्पक विमान देखा तो उस पर उसका मन मचल गया। सुंदर नारी को देखा तो उस पर उसका मन विचलित हो गया। ऐसा क्यों?

इसके उत्तर में भगवान् कहते हैं—

पिता यस्य सदाचारी, माता यस्य पतिव्रता।
कांचन कामिनीम् दृष्ट्वा तस्य न चलति मनः।।

अर्थात् जिसके पिता सदाचारी हों तथा माता पतिव्रता हो, उनकी संतान का मन कामिनी एवं कांचन को देखकर चलायमान नहीं होता। बच्चों पर माँ का प्रभाव विशेष पड़ता है।

सोने की लंका कुबेर की थी। हम लक्ष्मी की पूजा में चांदी का सिक्का रखकर पूजा करते हैं। कुबेर की पूजा सोना रखकर ही करते हैं क्योंकि सोने का अधिपति कुबेर है। वह दक्षिण दिशा का लोकपाल भी है।

सोने की लंका का मालिक कुबेर होते हुए भी माल्यवान का मन डोल गया। कुबेर पर चढ़ाई कर दी। कुबेर ने अपनी रक्षार्थ विष्णु को पुकारा। विष्णु ने सुदर्शन चक्र से माल्यवान की गर्दन उड़ा दी। तब माल्यवान का पुत्र माली आया। उसकी भी वही गति विष्णु ने की तब माली का भाई सुमाली आया। सुमाली पर अस्त्रप्रहार करने के लिये भगवान् विष्णु ने जैसे ही शस्त्र उठाया वैसे ही सुमाली भाग खड़ा हुआ। लंका से सीधे पश्चिम की ओर अफ्रीका का प्रथम देश है सोमालीलैण्ड, वहाँ पहुँच गया।

वहाँ अपनी बहिन कैकसी से सोने की लंका जीतने में मदद मांगी। बहिन कैकसी ने कहा, मैं औरत की जात क्या कर सकती हूं? तुम अपने बाप और भाई को मरवाकर कायर की तरह भाग कर आ गये और मुझसे कहते हो, लंका जीतो!

सुमाली ने कहा, हम युद्ध से लंका नहीं जीत सकते। हम विष्णु के सुदर्शन चक्र का ताप नहीं सह सकते। पर, उत्तराधिकार के नियम से जीत सकते हैं। ब्रह्मा के पुत्र पुलस्त्य, पुलस्त्य के पुत्र विश्रवा और विश्रवा के पुत्र हैं कुबेर। कुबेर के पिता विश्रवा अभी जीवित हैं। तुम उनके पीछे छाया की तरह लगकर उनको अपनी सेवा से संतुष्ट करके, उनसे संतान प्राप्त कर लो और वह संतान भी उत्तराधिकार के नियम से लंका का अधिकारी बन जाएगा।

कैकसी विश्रवा के पीछे छाया की तरह पड़ गई। विश्रवा जहाँ भी जाये पूर्व-पश्चिम, उत्तर, दक्षिण वह भी पीछे-पीछे जाये। पूजा की सामग्री, पुष्प, समिधा आदि की सारी व्यवस्था कर देवें। 12 वर्ष पश्चात् प्रयागराज में विश्रवा ऋषि ने पूछ ही लिया, तुम छाया की तरह क्यों पीछे पड़ी हो? यज्ञ के लिये समिधायें आदि लाना एवं अन्य सेवाकार्य क्यों करती हो? मैं जहाँ-जहाँ जाता हूँ, तुम मेरे पीछे-पीछे क्यों आती हो? मेरा-तेरा क्या सम्बन्ध है? तो कैकसी ने आंखों में अश्रु भर कर कहा कि आप यह सम्बन्ध मानें या न मानें मैंने आपको पति रूप में वरण कर लिया है। आपका पीछा छोड़ने वाली नहीं हूँ। विश्रवा ऋषि को दया आ गई। उस राक्षसकन्या से विश्रवा ऋषि के तीन पुत्र पैदा हुए। एक सतोगुणी पुत्र विभीषण, एक रजोगुणी पुत्र रावण और एक तमोगुणी पुत्र कुम्भकरण।

तब कैकसी ने पुत्रों से कहा—सोने की लंका पाना चाहते हो तो तपस्या करो, पुरुषार्थ करो, प्रयत्न के द्वारा ही कुछ किया जा सकता है।

तीनों ने तप करके वर प्राप्त किया। रावण ने विभीषण से पूछा—तुमने क्या वर मांगा? उसने कहा—मेरी बुद्धि अधर्म में न लगे, यह वर मांगा। तब रावण ने धिक्कारा कि हम राक्षस कुल के असुर हैं। असुरों का काम ही अधर्म करना है। असुरों का जन्म ही अधर्म के लिये हुआ है। फिर हम धर्म से थोड़े ही लंका प्राप्त कर सकते हैं। तुम मेरे लिये बेकार हो। फिर कुम्भकरण से पूछा—तुमने क्या वर मांगा? उसने कहा—मैं मांगना तो चाहता था इन्द्रासन पर थोड़े नशे में होने के कारण इन्द्रासन के स्थान पर निद्रासन मांग लिया। तब रावण ने कहा—तुम भी बेकार हो।

फिर हम देखते हैं रावण की ललचाई दृष्टि सोने की लंका पर जाती है और अपने भाई कुबेर को वहाँ से खदेड़ देता है। फिर सीता माता पर दृष्टि जाती है तो उस पर ललचा जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं रावण ऋषिपुत्र, वेदपाठी ब्राह्मण होते हुए भी बुद्धि का मलिन होने से असुर कहलाया। क्योंकि उस पर उसके ऊपर पिता के स्थान पर माता कैकसी का प्रभाव पड़ा।

तुलसी और रामायण की महिला पात्र

महात्मा गांधीजी से एक अमेरीकन प्रेस रिपोर्टर ने जिज्ञासा की कि आप तो कहते हैं कि मेरी सब प्रेरणा का मूल है तुलसी रामायण। तो आपके इस सत्याग्रह आंदोलन की प्रेरणा कहाँ से मिली आपको? गांधीजी ने कहा—तुलसी रामायण से। रिपोर्टर ने कहा—सारी तुलसी रामायण में कहीं सत्याग्रह का नाम भी नहीं है और आप कह रहे हैं तुलसी रामायण से। गांधीजी बार-बार कहते—सत्याग्रह 'है', रिपोर्टर कहता 'नहीं' है। गांधीजी ने कहा—देखो, कहाँ सत्याग्रह छिपा हुआ है। भारत की एक अबला युवती नारी, एक असहाय सीता। भारत से सुदूर लंकाद्वीप में नरभक्षक राक्षसों के हाथ में परिवृता होकर है। रावण कहता है—'ऐ' सीता! आज संध्यापर्यन्त तुम यदि मेरी शय्यासंगिनी न हुई तो इस तलवार को देख, जिसको देखकर इन्द्र, कुबेर आदि भी भय खाते हैं। इसी तलवार से तेरे शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर, ताजा मांस से सुबह का अल्पाहार होगा। सीता क्या उत्तर देती है—हाथ में तृण लेकर सीता बोलती है—अरे निशाचर! बायें पैर की कनिष्ठा अंगुली से भी मैं तुझे स्पर्श नहीं कर सकती। इसके पश्चात् की कथा तुलसीदासजी कहते हैं—

स्याम सरोज दाम सम सुंदर।
प्रभु भुज करि कर सम दसकंधर।।

सो भुजकंठ कि तव असि घोरा।
सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा।। दो. 9/2 सुंदरकाण्ड

सीताजी कहती हैं—अरे दशकंधर! कान खोलकर सुन ले। मेरे स्वामी का श्याम कमल की माला के समान सुंदर तथा हस्तिशुण्ड की तरह बलशाली भुजद्वय के सामने तेरी यह तलवार कुछ भी नहीं। रे शठ, मेरी प्रतिज्ञा सुन। जिस तलवार को दिखाकर मुझे भय दिखाते हो तेरे कंधों पर उसी तलवार से मार पड़ेगी।

युद्ध करने के लिए कुम्भकर्ण को जगाया। रावण से कुंभकर्ण ने जिज्ञासा की युद्ध के कारण के विषय में। रावण ने बहन शूर्पणखा के अपमान का बदला लेने के लिये सीताहरण की कथा से लेकर श्रीराम-लक्ष्मण और वानर सेना के साथ समुद्र

में सेतु निर्माण कर के लंका पर चढ़ाई कर एवं युद्ध में समस्त राक्षस वीरों के एक-एक करके मरने की कहानी बताई। और भी कहा—इतने दिन हो गये किन्तु सीता किसी का वश नहीं मानती। कुंभकर्ण ने परामर्श दिया—तुम राम बनकर सीता के पास जाओ। रावण ने कहा—भाई! वह करके भी देख लिया। अपने स्वरूप में जब उसके पास जाता हूं तब उसके देह से इस प्रकार का भीषण तेज निःसृत होता है जिसको सहन करना कठिन है, पुनः जब राम का छद्म रूप धारण करके जाता हूँ तब मेरे मन में ऐसा सात्त्विक भाव उठता है जिससे सीता के प्रति मातृबुद्धि, मातृभाव जागृत होता है। परम वैराग्य जागता है। इसलिये इस प्रकार की चेष्टा मैं नहीं करता। यही है सतीत्व का बल।

एक है सती नारी, एक है पशु नारी। लोग तुलसीदासजी की समालोचना करके कहते हैं तुलसीदास ने शूद्र एवं नारियों की निंदा की है—

ढोल गँवार सूद्र पसु नारी,
सकल ताड़ना के अधिकारी। मानस 5/58/3

यहाँ पर पशु नारी का अर्थ पाशविक चरित्र की नारी। पुनः पशु और नारी अलग-अलग पकड़ा जा सकता है। ढोल को ताड़न नहीं करने से आवाज नहीं होगी। गंवार लोग को ताड़न नहीं करने से कोई भी कार्य नहीं करवाया जा सकता। शूद्र माने यहाँ कोई जाति नहीं जिसकी स्वयं की कोई ज्ञान-बुद्धि, अक्ल नहीं उसको यहाँ शूद्र कहा गया है। ऐसे लोग की ताड़ना नहीं करने से उसके माथे में कुछ भी प्रवेश नहीं करता। पशु नारी को बिना ताड़न अनुशासन के रास्ते पर लाया नहीं जा सकता। पुनः जोतने वाले बैल को बिना ताड़न के उसे हल में नहीं जोता जा सकता है।

लोग यह कथा बिना समझे ही तुलसीदास पर दोषारोपण करते हैं कि स्त्री, शूद्र के प्रति अत्याचार किया है। मैंने कहा—तुम लोग जो तुलसीदास पर अत्याचार कर रहे हो उसका क्या होगा? आप लोग कहेंगे रामायण में राम चरित्र कहना ही कथा है। तब यह सब लिखने की क्या आवश्यकता थी। कहता हूँ, सुनो—महाकाव्य में लिखना होने से सब प्रकार के पात्रों पर ही लिखना होता है। नायक, खलनायक, नायिका-खलनायिका आदि। उनके मुख से जो कुछ कथन कहलवाया जाता है सब-कुछ में लेखक का अभिप्राय है यह मान लेना अनुचित है।

नाटक में खलनायक का चरित्र भी दिखाना पड़ता है। इसलिये उसके मुख से कभी-कभी विरुद्ध कथा भी कहनी पड़ती है। देखो, ढोल, गंवार आदि चौपाई कौन कह रहा है, या कौन कह सकता है? यह कथन न राम का है, न भरत का, न सीता का, न वशिष्ठ आदि का। ये बोल ही नहीं सकते। तब इस प्रकार क्यों कहा? देखो, यह चौपाई सागर की उक्ति है। सागर ने पथ अवरुद्ध करके रखा था।

राम उसके पास पथ के लिये अनुनय करते-करते थक गये, तब भी पथ नहीं मिला सागर से। तब शेष में राम ने सागर को सुखा देने का संकल्प किया, तभी भयभीत सागर ने राम के सामने आकर, हाथ जोड़कर यह कथन कहा था। इसलिये इस उक्ति के लिये तुलसीदासजी की समालोचना करने का कोई अर्थ नहीं है। क्योंकि समुद्र खलनायक की भूमिका में है। समुद्र देव होते हुए भी खलनायक की भूमिका में है। जैसे कर्ण (सूर्यपुत्र) कुन्ती का पुत्र होते हुए भी महाभारत में खलनायक की भूमिका में है। रावण ऋषि पुत्र होते हुए भी खलनायक की भूमिका में है।

प्रसंग चल रहा है सती नारी और पशु नारी। सती नारी सीता की चर्चा पहले कर चुके हैं। अब पशु नारी की कथा कहता हूं। रावण की बहिन शूर्पणखा। रावण ने उसको पंचवटी (दण्डकारण्य) में स्वच्छंद विचरण करने को भेजा। वहाँ दो नये नवयुवक आये, उनसे काम-लिप्सा पूर्ण कर सकती है और चाहे तो नर मांस का स्वाद ले सकती है। शूर्पणखा दौड़कर दण्डकारण्य पहुँची।

प्रथम में तो दिव्य सुंदर षोडशी का रूप सजकर राम के पास गयी। राम ने कहा—हम लोग वनवासी व्रत-नियम के अंतर्गत जीवन यापन करते हैं। इसलिए हमारे ऊपर से दृष्टि हटा लो। परन्तु पशु-नारी क्या यह सब सुन सकती है। लगाम कसने पर वह खाने को दौड़ पड़ी। प्रथम में लक्ष्मण ने उसको दूर करने का प्रयास किया। जब देखा किसी तरह वह मानने को तैयार नहीं है। तब हारकर लक्ष्मण ने थोड़ी ताड़ना की। उसके नाक-कान काटकर उसको विदा कर दिया।

प्रश्न है कि नाक-कान क्यों काटे? क्योंकि नाक है सम्मान का स्थान। नाक ऊँचा माने सम्मान से रहना। 'नाक काटना' माने सम्मान की हानि होती है। 'नासिका कुंचन' माने घृणा प्रदर्शन। लक्ष्मण ने उसका नाक काट लिया क्योंकि पशु नारी सम्मान की पात्र नहीं है। कान क्यों काटा? कान सत्कथा सुनने के लिये है जो सत्कथा नहीं सुनता है उसको थोड़ा-सा काट देने से भविष्य में उसको याद रहेगा। यह पशु नारी के लक्षण हैं। यह ताड़न की अधिकारी है।

सती नारी जगत पूज्या जगज्जननी सीता की चरणधूलि माथे पर लगाकर तुलसीदासजी कहते हैं—

जनकसुता जग जननि जानकी, अतिसय प्रिय करुनानिधान की।।
ताके जुग पद कमल मनावउँ, जासु कृपाँ निरमल मति पावउँ।।

मानस 1/17/4

इस प्रकार सती नारी पूजा के योग्य और पशु-नारी ताड़न योग्य। जिसकी जो रुचि, जिसका जो अधिकार, तुम लोग चुन लो। तुलसीदास ने किसी के प्रति अन्याय नहीं किया। उन्होंने उभय चरित्र को आमने-सामने रखकर स्पष्ट मात्र कर दिया।

कुन्ती और गान्धारी

भगवान् कृष्ण कुन्ती माता के पास पहुंचे। मां! देखो, जब पाण्डव लोग वन में थे तो आपने मुझे एक संदेश दिया कि तुम पाण्डवों के पास जा रहे हो। कौरव कुछ मानते ही नहीं। उन्होंने कह दिया कि सूई की नोक के बराबर भी धरती तुम्हें बिना युद्ध के देंगे ही नहीं। जब ऐसा कह दिया तो आपने मुझे एक संदेश दिया। क्या संदेश दिया—कि जिस काल के लिए क्षत्राणियां पुत्र पैदा करती हैं वह काल आ गया है। कुन्ती बड़ी वीर माता है। उसने अपने बच्चों को संदेश दिया। माता के कई रूप होते हैं।

माता का एक रूप है जननी। एक रूप है दीक्षाता। एक रूप है निर्माता, एक रूप है त्राता। जन्म देती है, जन्म देने के बाद प्रथम दीक्षा कौन देती है—माता देती है। गर्भ के बच्चों को भी संस्कार देती है और जन्मने के बाद भी प्रथम संस्कार मां की ही गोद में। मातृ भाषा, मां की गोदी में सीखता है। जो-जो लोरियां मां गाती है, उसकी अमिट छाप उसके मन पर पड़ती है। इसलिए वह बच्चे की दीक्षाता होती है, माता निर्माता भी होती है। माता निर्माण भी करती है। जीजाबाई ने शिवाजी को जन्म दिया। बचपन में लोरियां गाकर दीक्षा दी। फिर उसका निर्माण किया ठीक प्रकार से। संस्कार देकर निर्माण किया। फिर माता परित्राता भी बनती है, माता बच्चे का उद्धार भी करती है। मदालसा अपने बच्चों को कहती है—**शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरंजनोऽसि, संसारमायापरिवर्जितोऽसि।** हे बेटा! तू शुद्ध, बुद्ध, निरंजन है। संसार की माया से अपरिवर्तित। माता कहती है—बेटा! तुमने मुझे मां कहा है। माता कौन है? जो मेरा तारण कर दे वही तो मां है। जो मेरा उद्धार कर दे सो मां है। जो मेरा तारण कर दे सो मां है। तो त्राण कर दे वह मां है। जो त्राण न करे वह कैसी मां है? मां त्राण कैसे करती है? मां कहती है—बेटा! तुमने मेरी कोख से जन्म लिया है, मेरी गोदी में खेला है, मेरा तुमने अमृत रस पान किया है, स्तनपान किया है। याद रख, मुझे मां कहने के बाद तू अन्य किसी को मां न कहना। मुझे मां कहने के बाद अन्य किसी को मां कहने की जरूरत न पड़े। मां क्या कह रही है? सब स्त्रियां तो मां ही हैं। मां

कहती है यह तो ठीक है। इस मानव जन्म में आकर इसी एक जन्म में तुझे मोक्ष पाना है। इसी जन्म में तुझे तर जाना है। मानव जन्म में यदि तुमने भगवान् को नहीं पाया, च्युत हो गए। 84 लाख योनि के बाद तुझे मानव का चोला मिला है, इस मानव के चोले में तुमने उद्धार नहीं पाया, इस मानव के चोले में तुमने मोक्ष नहीं पाया तो तुम गिरोगे। गिरकर तुम दूसरी घटिया योनियों में जाओगे, घटिया योनि में जाकर किसी कूकर-सूकर की योनियों में जाओगे। तुम किसी कूकरी को मां, सूकरी को मां कहोगे तो मां का नाम बदनाम हो जाएगा। बेटा! मेरा बेटा है तो प्रतिज्ञा कर इसी जन्म में तुझे मोक्ष पाना है। मैं त्राण करने के लिए आयी हूं। मैं तेरी मां हूं। मैं तेरा त्राण कर रही हूं। इसी जन्म में तू मुक्त हो जाए तब मेरा मातृत्व धन्य हो। यह है मां।

कुन्ती मां है। कुन्ती जननी है दीक्षाता है, निर्माता, परित्राता है। इस मां ने कोई भी कर्तव्य की च्युति नहीं की। यह मां के किसी कर्तव्य से पीछे नहीं रही। उसने भगवान् कृष्ण से कहा—मेरे ऊंचे कंधे वाले शेर जैसे जवान बेटों को कहना—जिस काल के लिए क्षत्राणियां पुत्र पैदा करती हैं वह काल आ गया है। अब क्षत्राणी के दूध को नहीं लजाना। पापी लोग सूई की नोक के बराबर धरती देने को तैयार नहीं हैं। वीर पुत्रो! खड़े हो जाओ। भगवान् कृष्ण ने कुन्ती मां से कहा—मां, मैंने तेरा संदेश पुत्रों को पहुंचा दिया। और तेरे वीर पुत्र खड़े हो गए। तेरे सबसे वीर शिरोमणि पुत्र अर्जुन के पांव लड़खड़ाने लगे, उसकी आंख से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी और वह व्यामोहित हो गया, तब गीतारूपी अमृत पिलाकर खड़ा किया। तब महायुद्ध हुआ। महायुद्ध में सारे कौरव नामशेष हो गए हैं। उनका बीज नाश हो गया है। अब तेरे बेटे सारी धरती के निष्कंटक राज्य के स्वामी हो गये हैं। अतः मां मेरे लिए कुछ और आज्ञा हो तो बताओ। तब कुन्ती माता आंखों में अश्रु भर करके और आंचल फैलाकर कहती हैं—

विपदः सन्तु नः शाश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्।।

हे जगद् गुरो! कुन्ती भगवान् कृष्ण की बूआ है। माता के तुल्य है। भगवान् कृष्ण उसके सामने बच्चे हैं, लेकिन कुन्ती माता भगवान् कृष्ण को कहती है जगत् के गुरु। महाभारत प्रमाण है कि कुन्ती भगवान् कृष्ण को जगद्गुरु कहती है।

बच्चा बड़ा बन जाता है, ऊंचे पद पर चला जाता है तब भी माता-पिता उसे प्यार से घरेलू नाम से ही पुकारते हैं। चाहे वह प्रधानमंत्री पद पर हो या न्यायाधीश के पद पर हो। बड़ा आदमी बच्चों को तो बच्चा कहकर ही बुलाता है। तो कुन्ती बूआ भी कृष्ण को कान्हा, कृष्ण आदि नाम से बुला सकती है। पर

कुन्ती भगवान् को जगद्गुरु कहती है। वह कहती है उसने जगद्गुरु को पहचान लिया है। क्या मांगती है? हे जगद्गुरु! हमें पग-पग पर मुसीबतें आती रहे। विपत्ति कब तक आती रहे? शाश्वतकाल तक विपत्तियां आती रहे। पग-पग पर मुसीबतें आती रहे। लोग हैरान हैं। पर कुन्ती कहती है एक मुसीबत बायें हों तो एक दायें, एक आगे तो एक पीछे हो, एक मुसीबत ऊपर हो जो सिर पर पड़ने को ही हो। यानी कदम-कदम पर मुसीबतें आये। लोग हैरान हैं कि देवताओं जैसे पुत्रों की मां होकर, (धर्मात्मा पुत्र, स्वयं धर्मपरायण, कर्तव्यपरायण है) भी इतना दुःख पाया कि हाथ से (सत्ता) राज्य छिन गया! जुए के झूठे पांसे फेंक-फेंक कर राज्य छीन लिया, लाक्षागृह में मां सहित पांचों पुत्रों को जलाने का दुष्कर्म किया गया, भीम को विष का लड्डू खिलाकर नदी में फेंक दिया गया। 12 वर्ष का वनवास, 13वें वर्ष का अज्ञातवास। उसमें भी, वनवास में भी जान से मारने के दुष्प्रयास किए गए। भरी राज्यसभा में पुत्रवधू की साड़ी खींची गई। अरे मां! तुमने क्या थोड़ा दुःख भोगा है। कदम-कदम पर दुःख भोग लिया है। दुःख भोगते-भोगते बूढ़ी हो गई है मां। फिर कहती है कदम-कदम पर दुःख भोगते ही जायें। कदम-कदम पर मुसीबतें ही आए। मां! तू कैसी मां है? मां क्यों विपत्ति मांगती है? भक्तों पर जब भी विपदा आएगी हे भगवान् आप तुरन्त दौड़े चले आओगे। जिससे आपका पुन-पुनः दर्शन हो सके भगवान्। मुसीबतें मुबारक हैं। मुसीबतें धन्य हैं। कम से कम मुसीबतों में आपका दर्शन तो हो जाता है। इसलिए हम मुसीबत मांगते हैं जिससे आपका पुनः-पुनः दर्शन होता रहे। जिससे आपके दर्शन होते रहें। आपका दर्शन होने के बाद संसार का दर्शन नहीं करना पड़ता। मोक्ष अपने आप ही हो जाता है। मोक्ष हमसे कौन छीन सकता है। भगवान के दर्शन के बाद मोक्ष तो अपने आप ही हो जाता है। मोक्ष तो मुट्ठी में आ जाएगा यदि भगवान् का दर्शन हो जाए।

आज किसी से भी कहो—चलो, आज धर्मशाला में चलो, कृष्ण जयन्ती है। तो कहेगा, कुछ मिलेगा? प्रसाद मिलेगा। अरे, हमें प्रसाद यहीं पहुंचा देना या प्रसाद मुझे यहीं दे दो न, बाद में वहां बांट देना। लोग प्राप्ति पहले चाहते हैं और भक्ति बाद में चाहते हैं। केवल प्राप्ति ही चाहते हैं भक्ति चाहते ही नहीं। कोई प्राप्ति के लिए भक्ति करना चाहते हैं। निष्काम भक्त, केवल भगवान् चाहिए और हमें कुछ नहीं चाहिए, केवल प्रभु का दर्शन चाहिए। ऐसी भक्त माता कुन्ती है। हम थोड़ा-सा करते हैं, जो ध्यावे फल पावे कष्ट मिटे तन का, सुख सम्पत्ति घर आवे। हम चाहते हैं हमने घण्टी बजाई, दीया दिखाया...हम चाहते हैं भगवान् को दीया दिखाया, अगरबत्ती दिखाई और खट से हमारे घर के अन्दर सोने-चांदी के छकड़े भरे हुए अपने आप पहुंच जाएं। जो भगवान् की भक्ति में लोभ-

लालच रखता है उसकी भक्ति व्यभिचारिणी है। भक्ति को व्यापार मत बनाओ, भक्ति को व्यभिचार मत बनाओ। भक्ति को सदाचार में परिणत करो। भगवान् से दलाली मत करो। भगवान् से कुछ मत मांगो। भगवान् से भगवान् मांगो। इसके लिए जितनी बड़ी मुसीबत आए, ले लो। खाक पर चढ़ा दे या खाक पर सुला दे। राजी हैं उसी में जिसमें तेरी रजा है। यूं भी वाह-वाह है वा वूं भी वाह-वाह है। यह सच्चे भक्त का लक्षण है।

आदर्श माता कैसी है? पाण्डवों का राजतिलक हो गया जिसने तनिक भी इच्छा नहीं की। इतने दुःख पाने के बाद, जीवन में भटकने के बाद, 13 वर्ष के दुःखदाई वनवास एवं अज्ञातवास के बाद अब मेरे पाण्डवों को राज्य मिला है। बुढ़ापे में अब मुझे भी राजमाता का गौरव मिला है। राजमाता के रूप में गौरव के यश को भोगूंगी?—नहीं। युधिष्ठिर महाराज का राजतिलक हुआ है और कुन्ती ने तुरन्त वानप्रस्थ ले लिया। मेरा कर्तव्य पूरा हो गया। मैं धन्य हूं। बच्चों की दीक्षाता, बच्चों की निर्माता, बच्चों की परित्राता। उनको लक्ष्य तक पहुंचा दिया है। अब मुझे कुछ मोह नहीं है। अब बिल्कुल यश-वैभव के मोह को त्यागकर, बिल्कुल शान्तभाव से वन को निकल गई। साथ में गांधारी एवं धृतराष्ट्र को लेकर। साथ में विदुरजी छोड़ने गए। यह है महान् माता। यह माता धन्य है।

ऐसी धन्य माता। यह है निर्मोही माता, कर्तव्यपरायण माता, निर्माता माता। यह है परित्राता माता। ऐसी धन्य माता की आवश्यकता इस देश को है। गांधारी की तरह अंधी माता नहीं चाहिए। आंख पर जानबूझकर पट्टी बांध ली है। सब पाप उसके सामने होते रहे और वह नहीं देखने का नाटक करती रही। धृतराष्ट्र तो था ही अंधा। गांधारी के आंखें थी। पतिव्रता के नाम पर जानबूझकर आंखों पर पट्टी बांध ली। क्यों? उसे बेटों के पाप नहीं दिखते? दीखते हैं। क्या उसे सुनाई नहीं देते? देते हैं। रोक नहीं सकती थी? रोक सकती थी। जब द्रौपदी का चीरहरण हो रहा है भरी सभा में, चीत्कार कर रही है। वहां की चीत्कार, उसकी आवाज द्वारिका के श्रीकृष्ण सुन रहे हैं। और उसकी सभा में एक किनारे में उसकी आवाज गांधारी नहीं सुनती? सारी की सारी सभा में शोर मच गया। सारे हस्तिनापुर में शोर मच गया। दुनिया रो उठी है। गांधारी वहां है। वह कड़क कर आ जाती राज्यसभा में। खबरदार! मेरी आंख के सामने मेरे जीते-जी, अपनी पुत्रवधू का अपमान कभी नहीं होने दूंगी। मैं आत्महत्या कर लूंगी यदि ऐसा कुछ हुआ। मैं सब पुत्रों को पुत्र नहीं मानूंगी। मेरा राज कार्य से कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं बीच में खड़ी हो जाऊंगी, मैं उसको बचाऊंगी। गांधारी भी पुत्र के मोह में अंधी थी। दिखावे के लिए पट्टी थी कि मुझे कुछ नहीं दिख रहा है। एक नारी हमारे भी काल में थी उसे बेटे के कोई पाप दिखाई नहीं देते थे। इस गांधारी ने भगवान्

श्रीकृष्ण को भी शाप दे दिया। जा! तूने मेरे सौ बेटे मरवा दिए। जा! तू भी एक शिकारी के हाथ, एक बहेलिए के हाथ से मारा जाएगा। भगवान् ने नमस्कार किया कि मां! तुझे बहुत धन्यवाद। मेरा लीला संवरण का समय आ गया है, तेरा वचन मेरे लिए वरदान बन जाएगा। मुझे शरीर छोड़कर जाना ही है। इसलिए भगवान् ने उसका बहुत धन्यवाद किया। भगवान् ने विनोद में उसकी परीक्षा लेने के लिए एक माया रची। क्या माया रची? भगवान् ने यह माया रची कि एकाएक मरुभूमि का दृश्य उपस्थित हो गया है। दूर-दूर तक कोई वृक्ष नहीं है। पानी का कोई जलाशय नहीं है। सूर्य तप रहा है। रेत उड़ रही है। गांधारी का कंठ सूख गया। गांधारी भूख-प्यास से व्याकुल हो गई। वह खोज रही है कुछ पीने-खाने को मिले। आकाश तप रहा है, गरम लू चल रही है। दूर-दूर तक वृक्ष नहीं। बहुत दूर उसे दिखाई दिया एक बेर का वृक्ष है। बेर में छोटे-छोटे फल लगे हैं। गांधारी दौड़कर वहां गई। कम से कम बेर खाकर प्राण तो बचाऊं। और जब हाथ बढ़ाया तो डाली ऊंची हो गई। उछल कर कोशिश की तो डाली ऊंची रह गई। इस श्मशान भूमि में कोई साजो-सामान, टेबल-चेयर या ऊंचा पत्थर भी नहीं था, जो रखे। उसने सोचा, श्मशान भूमि है। कोई देखता है नहीं। भूख बड़ी सता रही है। भूख से व्याकुल हो उठी। उसने अपने बेटे की एक लाश को खींचा, उसको रखा। उस पर पांव रख कर डाली पकड़ने की कोशिश की। भगवान् की माया! फिर भी डाली ऊपर रह गई। तब उसे लगा इतने से काम नहीं बना। तब एक बेटे की लाश को और रखा, पांव रखकर डाली पकड़ने की कोशिश की। पर डाली फिर कुछ ऊंची, ऊपर रह गई। सौ बेटों की लाश रखकर—उस पर पांव रखकर वह बेर तोड़ने जा रही है, जब बेर तोड़ने जा रही है तब भगवान् ने हाथ पकड़ लिया। कहा—मां! तुम्हें अपने बेटों से बहुत प्रेम है। मां लज्जित हो गई। माता मोह में अंधी हो गई। कोई प्रेम-व्रेम कुछ नहीं है। अपने प्राण बचाने के लिए पापी बेटों को, जिनके लिए भगवान् कृष्ण को शाप दे रही है, उन्हीं की लाश नीचे रखकर, उन पर चढ़कर बेर खा रही है।

गांधारी और कुन्ती, दोनों ही मां के रूप हैं। आदर्श माता कुन्ती है। जाति के लिए, धर्म के लिए, राष्ट्र के लिए सब कुछ समर्पित करने वाली है। गांधारी दूसरे के राज्य को हड़प कर चुपचाप अपने बेटों की पीठ थपथपाने वाली है। बेटा चुप-चुप। बेटा! तू बहुत अच्छा बेटा है। Black Market का दस हजार कमाकर ले आया, मां को दे दिया। मां कहती है बड़ा अच्छा बेटा है। अरे मां तू आज उसका Black Market का पैसा खाती है और आज तू खुश हो रही है कि बेटे की ब्याह-शादी करनी है तो कर दे। कहती है बेटे की नौकरी तो 400 रुपये की है पर ऊपर से एक हजार रुपया और बना लेता है। ऊपर के एक हजार रुपये से खुश

हो रही है। याद रखो मां जो बेटा हराम की कमाई करता है, पाप की कमाई करता है वह एक दिन तुम्हारी साड़ी उतारकर भागेगा। वह एक दिन बाप की तिजोरी खोलकर, पैसा निकाल कर चला जाएगा तब छाती पीटोगी। इसलिए कभी भी पाप को प्रश्रय नहीं देना चाहिए। मां का कर्तव्य है जिनको जना है उनको दीक्षा दे। उनको दीक्षा दी है तो उनका निर्माण करे। जिनका निर्माण किया है तो उनका त्राण करे। उनको ठीक मार्ग से चलाकर जीवन के लक्ष्य तक पहुंचाये। यह उसका धर्म है। जो त्राण नहीं कर सकती है वह मां कैसी?

नारी शिक्षित एवं संस्कारित होती है तो पूरा परिवार शिक्षित और संस्कारी होता है, क्योंकि वह परिवार के रूप में जीती है। पुरुष शिक्षित होने पर अकेला शिक्षित होता है क्योंकि व्यक्ति के रूप में जीता है।

—प्रेमचन्द

पुरुष शरीर से नारी शरीर की महत्ता इस बात में है कि वह पुरुष की अपेक्षा भगवान को सहजता से पा सकती है, क्योंकि जिन गुणों के आधार पर नर से नारायण की यात्रा सम्पन्न होती है, वे सब गुण यथा सेवा, त्याग, तपस्या, निष्ठा, समर्पण, प्रेम, भक्ति, तितिक्षा आदि गुण उसे नैसर्गिक रूप से जन्मजात प्राप्त है।

—परम पूज्य गुरुदेव स्वामी संवित् सोमगिरिजी महाराज

यदि इंग्लैण्ड को अपनी महानता की रक्षा करनी है तो भारतीय कुटुम्ब व्यवस्था को स्वीकार करना पड़ेगा। ये कुटुम्ब ऐसी चीज है, जिसके अन्दर अनेक लोग अनेक प्रकार की पूजा पद्धतियों, स्वभाव एवं आदतों के साथ एक साथ मिलकर रह सकते हैं। इसलिये ब्रिटेन के लिये भारत से परिवार व्यवस्था को लेना पड़ेगा यदि ब्रिटेन को ब्रिटेन रहना है।

—इंग्लैण्ड की प्रधानमंत्री मिसेस थेचर

माता जीजा बाई

महाराष्ट्र के एक गांव में एक छोटी-सी बच्ची खेल रही थी। अकस्मात् कुछ यवन सैनिक एक मन्दिर को तोड़ने के लिए पहुंचे। उस नन्ही बच्ची ने प्रतिरोध किया। सैनिकों ने बच्ची का उपहास कर उसे एक तरफ हटा दिया और मन्दिर गिराने के लिए हथौड़ा चलाने लगे। बच्ची पुनः डटकर खड़ी हो गई। उसने कहा, पहले मेरे सिर पर हथौड़ा चलेगा फिर देवता के मन्दिर को छू सकोगे। मैं जीते-जी मन्दिर को गिराने नहीं दूंगी। देवता ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है, जो मन्दिर को गिराने का दुष्ट प्रयास कर रहे हो? उन दिनों मन्दिर प्रतिदिन गिरते थे। रोज-रोज ऐसे दृश्यों को देखकर लोगों की संवेदना के तंतु प्रायः मर चुके थे। उन्हें अनुभव ही नहीं होता था कि कोई विशेष घटना घटित हो रही है। किन्तु बच्ची वह सब सहन न कर सकी। कुछ देर पश्चात् उसके माता-पिता को सूचना मिली और वे उसे खींचकर घर ले गए और उसकी इच्छा के विरुद्ध सैनिकों से संघर्ष को रोकने हेतु उसको एक कमरे में बंद कर दिया। बच्ची कमरे की खिड़की से देवालय गिरने का वह असह्य दृश्य देख रही थी तथा वहीं से दांत पीसकर आंसू बहाती हुई सैनिकों को चेतावनी दे रही थी कि तुम्हें इस पाप का दण्ड देकर रहूंगी। सैनिक बच्ची की मजबूरी पर हंसते थे। यह नन्ही बच्ची हमारा क्या बिगाड़ लेगी! किन्तु उस नन्ही बच्ची ने बचपन में जो संकल्प किया और उसी संकल्प की पूर्ति हेतु विवाह होने पर अपनी माता शिवा भवानी से प्रार्थना की कि मेरे अरमानों को पूरा करने वाला एक धर्मरक्षक पुत्र प्रदान करो। उस बच्ची जीजाबाई के पवित्र और दृढ़ संकल्प से ही सदा विजयी छत्रपति शिवाजी जैसा महान् इतिहास निर्माता वीर प्रकट हुआ।

जब शाहजी का स्वर्गवास हुआ। जीजाबाई शाहजी की धर्मपत्नी, सती होने लगी। शिवाजी रोने लगे। मां! तूमने मुझे जन्म दिया। तुमने लोरियां गा-गा कर मुझे संस्कारित किया। तुमने कहा कि हिन्दू पदपादशाही की स्थापना करनी है। मां! जिस पौधे को तूने लगाया, सींचा है, पाला-पोसा है। उस पौधे को फलवान तो होने दो। तुम्हारे संरक्षण में पौधा फल जाए, मैं अपने लक्ष्य तक पहुंच जाऊं,

इतना तो करो। मां को हाथ जोड़े। मां मान गई। मां अपना कर्तव्य पालन करती रही। और छत्रपति शिवाजी का राजतिलक हुआ। पांच-पांच बादशाहों को पछाड़ कर—बीजापुर, गोलकुण्डा, औरंगजेब, कुछ देशी शक्तियां, कुछ विदेशी शक्तियां—उन्होंने स्वतंत्र हिन्दू राज्य स्थापित किया। राजतिलक हुआ। शहनाइयां बजी, सब ओर गाजे-बाजे हुए। राष्ट्रीय नाच हुए—भाट आए। सब राजाओं ने मस्तक झुकाया। मां ने कहा—बेटा! मेरा कार्य पूरा हो गया है। जिस कार्य के लिए जी रही थी, वह कार्य पूरा हो गया है। अगली एकादशी पर मैं जाऊंगी। उसके 5-6 दिन बाद एकादशी आई और जीजाबाई ने शरीर छोड़ दिया। गंगाजल, तुलसीदल लिया और शरीर छोड़ दिया। यह है धन्य माता। यह है निर्मोही माता, कर्तव्यपरायण माता, निर्माता माता। यह है परित्राता माता।

मां सीता

स्वामी विवेकानन्दजी ने कहा है—अरे भारत! तेरे पास दुनिया में और कोई चरित्र नहीं होता केवल एक सीता का चरित्र होता तो भी तू युग-युग के लिये पूजा जाता। सीता का ऐसा पावन चरित्र है पूरे भारत को, पूरी भारतीयता को पावन करने वाला, पुरी मानवता को पावन करने वाला चरित्र है। ऐसा महान् चरित्र साता का। इसकी तुलना में दूसरा चरित्र दुनिया में किसी के पास नहीं है।

सुभद्रा

सुभद्रा के पुत्र अभिमन्यु ने गर्भ में ही चक्रव्यूह भेदन का रहस्य जान लिया। माता-पिता के संतानोत्पत्ति के संकल्प में मनोवैज्ञानिक शक्ति है जिसका प्रमाण इतिहास में बार-बार मिलता है। इसलिए पवित्र गृहस्थाश्रम में दम्पती के पवित्र संकल्प से उत्पन्न संतान तथा नाइट क्लबों, व्यभिचार भवनों या कामवासना पूर्ति के भोग विलास के क्षणों से उत्पन्न संतान में देव और दानव का अन्तर अनिवार्य है।

रानी अहल्या बाई

वह रानी थी अहल्या बाई। उस अहल्या बाई ने बहुत यज्ञ-याग आदि करके एक पुत्र प्राप्त किया। पुत्र नन्हा था। उसका पति पानीपत की तीसरी लड़ाई में बलिदान हो गया। पति के साथ सती होना चाहती थी। सब लोगों ने कहा—आपने इतने यज्ञ-याग आदि करके एक पुत्र प्राप्त किया है। इस पुत्र की रक्षा के लिए आप शरीर को मत त्यागो। उसने स्वीकार कर लिया। पुत्र की संरक्षिका बन गई। बड़ी धर्मपरायण थी। नीतिपरायण थी। उसी के अनुसार राज्य चलाती थी। पुत्र जवान हो गया। राजतिलक के योग्य हो गया। तब अचानक एक विचित्र घटना घटी। रानी के दरबार में शिकायत पहुंची। हे धर्मात्मा रानी! आपका जवान बेटा कुछ ऐसा पाप कर चुका है जिस पाप के लिए प्रजाजन में कोई वैसा पाप करे, चरित्रहीनता का पाप, यौनाचार का पाप, यौन की उच्छृंखलता का पाप, आप उसको प्राणदण्ड देती। रानी ने कहा—अच्छा! रानी ने जांच-पड़ताल की। देखा, ठीक है। रानी ने आदेश दिया—जाओ, मेरे इकलौते जवान बेटे को, जिसका राजतिलक कुछ दिन में होने वाला था, कहा कि इसको हाथी के पांव के नीचे कुचलवा दो। सारी प्रजा रो उठी, मंत्रिगण रो उठे। रानी ने कहा, नहीं! न्याय में अपना-पराया कोई नहीं है। सारी प्रजायें मेरी संतान हैं। सब प्रजाजन मेरे पुत्र हैं। जो न्याय इनके लिए है वही न्याय इसके लिए भी है। सब प्रजाजनों के रोते हुए भी उसने अपने बेटे को हाथी के पांव के नीचे कुचलवा दिया। एक आंसू नहीं बहाया। प्रजा रो रही है। और, जब उसका प्राण शांत हो गया। शरीर शांत हो गया। तब रानी ने कहा—अच्छा प्रजाजनो! जो मेरा रानी के नाते कर्तव्य था वह मैंने किया है। अब मुझे मां का कर्तव्य पूरा करना है। रानी का लिबास उतारा। और सफेद साड़ी पहनकर रानी ने जो विलाप किया उससे दसों दिशायें रो उठी। बड़ा कारुणिक दृश्य हुआ। उसने कहा, मुझे रानी का कर्तव्य भी निभाना है, मां का कर्तव्य भी निभाना है। अपने हाथों जाकर उसका अग्नि संस्कार किया। उसकी छोटी-सी समाधि, नर्मदा नदी के किनारे मध्यप्रदेश के महेश्वर स्थान पर आज भी है। रानी यह थी अहल्या बाई जिसने गीता के सिद्धान्त के अनुसार अपने-पराये में कोई भेद नहीं किया। न्याय में सब समान हैं।

भारत की जॉन ऑफ आर्क : रानी लक्ष्मीबाई

'कोमलता तेरा ही नाम है औरत शेक्सपियर ने कहा जो कि अंग्रेजी साहित्य का महान् जादूगर था। परन्तु अंग्रेजों और युद्ध के सेनापतियों ने, जो शेक्सपियर के देशवासी थे, विस्मय से महसूस किया कि शेक्सपियर का विश्वास गलत था जब मुश्किल से 23 साल की सुंदर और बहादुर जवान औरत, झांसी की महान् रानी के विरुद्ध युद्ध करते हुए उन्हें भारी कीमत चुकानी पड़ी तथा उसके अनुभवी मर्द सिपाहियों को जब उसकी तलवार काट रही थी और युद्धक्षेत्र में उनके अन्दर भय उत्पन्न कर रही थी तो उन्हें ब्रिटिश साम्राज्य की मजबूत नीवँ हिलती नजर आई। उन्होंने देखा कि माँ दुर्गा की तरह युद्ध की जो देवी है वह युद्ध कर रही है। शेक्सपियर के औरतों के प्रति दृष्टिकोण के विरुद्ध इतिहासकारों की कई पीढ़ियाँ यह घोषणा करती रही कि 'वीरता तेरा ही नाम है रानी लक्ष्मीबाई।'

यहाँ तक कि शेक्सपियर का जब जन्म ही नहीं हुआ था तब ब्रिटिश सेना उनका सामना कर चुकी थीं, एक बौखलाने और कुचल डालने वाली हार का, एक दूसरी जवान और बहादुर औरत के हाथों, जिसका नाम था 'जॉन ऑफ आर्क', जिसका अमर नाम स्वतंत्रता का श्रेष्ठ प्रतीक बन गया। दसियों लाख फ्रांसीसी मर्द और स्त्रियों ने युगों तक उस स्वतंत्रता की देवी को अपने हृदय-मंदिर में पूजा था। हरेक फ्रांसीसी बच्चा आज भी उसकी एक के बाद एक विजय को याद करता है और यह जानता है कि किस प्रकार विश्वासघाती कायर ब्रिटिश लोगों ने उसे जीवित जला दिया था। दोनों ही, रानी लक्ष्मीबाई और जॉन ऑफ आर्क किशोरी थीं जब उन्हें समय की पुकार ने विद्रोह के लिए खड़ा किया। दोनों में गहरी धार्मिक आस्था थी, श्रेष्ठ चरित्र था और साहसिक शक्ति थी। दोनों ने ही स्वयं युद्धक्षेत्र में सेना का नेतृत्व किया वह भी अक्सर पुरुषवेश धारण करके। दोनों की ही आत्माएं देशभक्ति से धधक रही थी, और दोनों की मृत्यु अपने शत्रुओं के हाथों एक शहीद के रूप में हुई और दोनों ही मामलों में वो शत्रु अंग्रेज (इंग्लिशतानी) थे। परन्तु रानी लक्ष्मीबाई, जिसे भारत की जॉन ऑफ आर्क कहा गया, वह कुछ और बढ़

कर थी। वह एक योग्य प्रशासक और महान् संगठनकर्ता थी जिसकी प्रशंसा मित्र और शत्रु दोनों ने समान रूप से की।

जॉन ऑफ आर्क की महानता को समझने में इतिहासकार और समालोचक एकमत नहीं थे। ब्रिटिश उसको एक धोखा मानते थे और उसकी दैवीय सहज वृत्ति को धोखा और बकवास बतलाते थे। दूसरी ओर झांसी की रानी ने अपने दुश्मनों से भी प्रशंसा अर्जित की। शक्तिशाली अंग्रेज सेनापति सर ह्यूरोज, जिसने रानी के विरुद्ध पूरे स्वतंत्रता संग्राम में युद्ध किया था, उसने प्रशंसा में भरकर कहा, 'वह उन तमाम विद्रोहियों में सबसे बहादुर और सबसे बहादुर आदमियों में से एक थी।' सी.ए. किनकेड जो प्रसिद्ध इतिहासकार व अफसर था उसने टिप्पणी की 'दुश्मन कमांडर से भी प्रशंसा पा लेना वास्तविक प्रशंसा है।' पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने डिस्कवरी ऑफ इण्डिया में लिखा है कि 'लड़कपन में रानी झांसी और जॉन ऑफ आर्क की हिला देने वाली कहानियों ने उनके मस्तिष्क को जबरदस्त प्रेरित किया था।' अपनी श्रद्धांजलि व्यक्त करते हुए वह लिखते हैं कि 'एक नाम अन्य सभी नामों से ऊपर अभी भी आदरणीय है और यादगार में विख्यात है वह नाम है झांसी की रानी लक्ष्मीबाई का, मात्र 23 वर्ष की लड़की जो युद्ध लड़ते हुए शहीद हुई। सबसे अच्छी और सबसे बहादुर विद्रोही नेता उसे कहा गया उन अंग्रेज सेनापतियों द्वारा जिन्होंने उसके विरुद्ध युद्ध किया। 18 जून 1858 को यह बहादुर योद्धा स्त्री, वह भयरहित, अतुलनीय औरत सन् 1857 की क्रांति के एक सच्चे शहीद के रूप में युद्ध-स्थल में गिर पड़ी जिसने अपनी मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए अपनी अन्तिम सांसों तक युद्ध किया। तब से लेकर अब तक हमारी धरती माता अपने पिता सूर्य के चारों ओर सौ बार प्रदक्षिणा कर चुकी है। समय में पूरी एक शताब्दी पश्चात् आज हम एक नयी शताब्दी की चौखट पर खड़े हैं। अपनी उस भारत माता की सबसे बहादुर बेटी को और सर्वश्रेष्ठ स्वतंत्रता की गाथा को अपनी अनन्त श्रद्धा के फूल चढ़ा रहे हैं, जिसने वास्तव में भारत की स्वतंत्रता के पौधे को अपने रक्तिम देशभक्ति के खून से सींचा। निस्सन्देह सन् 1857 का महान् विद्रोह हमारा पहला स्वतंत्रता संग्राम था। वीर सावरकर ने भारत की एक सर्वोत्तम सेवा की जब वह इस अनोखे विद्रोह के पीछे की भावना को दुनिया के इतिहासकारों के सामने लाया। यह यन्त्रणादायक और दुर्भाग्यशाली है कि भारत सरकार द्वारा खरीदा हुआ एक इतिहासकार एस.एन. सेन, जिसने अपनी पुस्तक में इस महान् विद्रोह का वर्णन किया है, मात्र '1857' और इसमें वो इसे स्वतंत्रता संग्राम मानने में हिचकिचाता रहा है, कि यह एक विद्रोह से अधिक था। यह तथ्य उस विद्रोह के उन पांच महान नायकों से सिद्ध होता है जो अचानक उठ कर प्रकाश के केन्द्र में

आ गये जिनके नाम हैं—बहादुरशाह जफर, तांत्याटोपे, लक्ष्मीबाई, नाना साहिब और कुंवर सिंह। इनमें से कोई भी ब्रिटिश साम्राज्य में श्रद्धा रखनेवाली सेना से सम्बन्धित नहीं था। 1857 का महान् विद्रोह सर्वस्व हरण किये गए लोगों द्वारा अपना राष्ट्रीय सम्मान प्राप्त करने का उद्घोष था। 1857 के नायकों के ताराग्रह में रानी लक्ष्मीबाई सबसे चमकता उभरता तारा है। विसेन्ट स्मिथ ने स्वयं स्वीकार किया है कि 1857 के तमाम सेनानायकों में रानी लक्ष्मीबाई सर्वश्रेष्ठ थी। रानी लक्ष्मीबाई का जन्म और पालन-पोषण एक मराठा ब्राह्मण परिवार में हुआ जो मध्यभारत में आकर बस गया था। मात्र 4 साल की आयु में उसके सिर से माँ का साया उठ गया। इसके बाद उसका पालन-पोषण उसके स्नेही पिता की देख-भाल में हुआ। उसे सौभाग्य मिला कि उसके बचपन की शिक्षा नाना साहिब और राव साहिब के साथ हुई जो कि पेशवा के गोद लिए हुए दो पुत्र थे।

वह अपनी अल्पायु में ही नाना साहिब की मुंहबोली बहिन हो गई। इस छोटी सुन्दर बालिका को क्षत्रिय राजकुमारों के समान सर्वोत्तम प्रशिक्षण प्राप्त हुआ। नाना साहिब के साथ उसने घुड़सवारी, शिकार और युद्धकला की शिक्षा पाई। इस प्रशिक्षण ने उसे इतिहास में सर्वोच्च साहसिक भाग अदा करने के लिए तैयार किया।

एक सुन्दर जवान लड़की के रूप में, जिसमें साहसिक आत्मा थी, उस लक्ष्मीबाई का पेशवा बाजीराव की सहायता से झांसी के शासक गंगाधर राव से विवाह हुआ। वह झांसी जो बुन्देलखण्ड का एक छोटा राज्य था। यह अनाथ गरीब लड़की रातोंरात एक रानी हो गई। परन्तु और भी बड़े दुर्दिन उसकी जिन्दगी में आने बाकी थे। सन् 1851 में उसके एक सन्तान हुई जो जीवित नहीं रही। दो साल बाद गंगाधर राव की अचानक मृत्यु से यह सन्तानविहीन माता एक अन्धकारमय भविष्य लिए एक जवान विधवा हो गई। अपनी मृत्यु से एक दिन पहले उसके पति ने एक बच्चे को गोद लिया जो राज्य के मन्त्रियों, श्रेष्ठियों और राजनीतिक एजेण्ट मेजर एलिस और कैप्टेन मार्टिन की उपस्थिति में दामोदर राव के नाम से जाना गया। स्वयं राजा गंगाधर ने भी इसके बारे में ब्रिटिश गवर्नर जनरल को लिखा था। परन्तु ब्रिटिश साम्राज्य भारत में इतना ताकतवर हो चुका था कि फोर्ट विलियम के मुखिया ने अपने राजा की वफादारी को भुला देना वाजिब समझा और झांसी को अपने साम्राज्य में मिला लिया। लार्ड डलहोजी ने दामोदर राव को झांसी के उत्तराधिकारी के रूप में स्वीकार करने से मना कर दिया और सात मार्च 1854 को झांसी को ब्रिटिश साम्राज्य में शामिल करने का हुक्म दिया। रानी जो कि मुश्किल से 18 वर्ष की थी उसने साहसपूर्वक गुंजायमान किन्तु मधुर वाणी में डलहोजी के एजेण्ट से कहा—'मैं झांसी दूंगी नहीं'।

4 जून, 1857 को झांसी में विद्रोह शुरू हुआ, विद्रोहियों ने अंग्रेजों पर हमला किया और उन्हें तलवारों से काट डाला। उन्होंने झांसी पर कब्जा कर लिया। पर जल्द ही वे देहली की ओर रवाना हो गए। इसके बाद रानी ने शासन की बागडोर अपने हाथ में ले ली और सर्वोत्तम प्रशासनिक क्षमता दिखाते हुए कानून एवं व्यवस्था लागू की। मेल्सन ने अपनी पुस्तक '1857 का भारतीय विद्रोह' में लिखा—उसने अपने आपको एक योग्य शासक सिद्ध किया। उसने एक टकसाल खोल दी, अपने मजबूत महलों की किलेबन्दी की। तोपें ढाली और सैनिकों की टुकड़ियाँ खड़ी की। किनकेड ने स्वयं जांचा कि रानी शिक्षित औरत थी और अक्सर स्वयं लिखित आदेश देती थी। एक मर्द की पौशाक पहने हुए वह स्वयं दरबार में अर्जियाँ सुनती थी। वह एक सर्वोत्तम और अनथक घुड़सवार थी और निरंतर सवारी करके पूरे राज्य की सीमा निर्धारित करती थी और सभी तरह के विवादों का वहीं पर निबटारा करती थी। उसने अपने कर का प्रबंधन करना, इकट्ठा करना अतिमितव्ययिता और बुद्धिमत्ता से किया। वह अपनी घुड़सवार टुकड़ियों के लिए घोड़ों का चुनाव स्वयं करती थी। क्योंकि उसे भारत में घोड़ों की जानकारी के सम्बन्ध में सबसे बढ़िया जानकार माना जाता था। मेजर मेलकॉम ने 13 मार्च, 1855 को गवर्नर जनरल को लिखा, 'उसका चरित्र सर्वोत्तम है और उसे झांसी में प्रत्येक व्यक्ति का आदर प्राप्त है।'

इस बहादुर रानी ने झांसी पर दावा करने वाले और अंग्रेजों की सहायता प्राप्त सदाशिव नारायण के हमले का मुंहतोड़ जवाब दिया। इसके तुरंत बाद नाथे खान, जो कि झांसी का एक दूसरा शत्रु था, उसने 20,000 सिपाहियों के साथ झांसी पर हमला किया। रानी इस हमले के लिए तैयार नहीं थी, परन्तु वह डरी नहीं। तोपों को किले पर चढ़ा दिया गया। तोपों और बारूद उत्पादन का एक कारखाना खोल दिया गया। रानी ने ठाकुरों और बुन्देलों को सहायता हेतु आमंत्रित किया। औरतों को भी युद्ध में प्रशिक्षित किया और नाथे खां को एक बौखलाहट भरी इन औरतों की सेना का सामना करना पड़ा, जो बहादुरी से किले की रक्षा कर रही थी। दंतिया के शासक और दूसरे राज्यों के शासकों का सामूहिक हमला हुआ, परन्तु इस बहादुर स्त्री ने उन्हें मार-पीट कर भगा दिया। लगभग 10 माह तक, मार्च 1858 तक इस श्रेष्ठ रानी ने अपने राज्य का प्रशासन सम्हाला अपने गोद लिए पुत्र के प्रतिनिधि के रूप में, जो कि इस सिंहासन का सच्चा उत्तराधिकारी था।

नाथे खां और दूसरे शासकों ने कंपनी को सूचित किया कि रानी विद्रोहियों का साथ दे रही है। कंपनी ने जन. ह्यूरोज को झांसी विजय करने को भेजा। रानी ने अडिग साहस दिखलाते हुए, जो शायद ही किसी आदमी या औरत में पाया गया,

उसका सामना किया। रानी ने मजबूती से नेतृत्व करते हुए झांसी की ब्रिटिश सेना की घेराबंदी को चुनौती दी। रात्रि के सिवाय उसकी तोपों ने आग उगलना नहीं रोका। यहाँ तक कि औरतों को देखा गया कि वो गोला-बारूद तोपों तक पहुँचा और बांट रही थी। रानी के आमंत्रण पर तांत्याटोपे अपने 15 हजार सिपाहियों के साथ पहुँच गया किन्तु उसे ह्यूरोज के हाथों पराजय का सामना करना पड़ा। रानी ने अपने सिपाहियों के हृदय में आत्मविश्वास व साहस भर दिया। एक स्वयं गवाह रहा अंग्रेज, जो युद्ध में उपस्थित था, ने वर्णन किया, 'ज्योंही हम नगरद्वार तक जाने वाली सड़क पर पीछे हटते त्योंही दुश्मन के बिगुल अवर्णनीय भयावहता लिए बज उठते और भयानक रूप से किले की नीचे की दीवार से तोपें आग उगलने लगती जहाँ से हम लोग रास्ते पर दिखाई पड़ते। एक समय ऐसा दिखाई पड़ा जैसे इस आग उगलते धुएं से एक गोलियों का तूफान फूट पड़ा हो तथा गोले-गोलियाँ और राकेट्स हमारे को मारक रूप से घायल कर रहे थे। ऐसे लगा जैसे प्लूटो और दूसरे भयानक देवता हम पर खुले छोड़ दिये गये थे।'

पूरे 12 दिन और रात इस बहादुर औरत ने बिना किसी बाहरी सहायता के ब्रिटिश गोलों का सामना किया और अपनी तमाम विपरीत परिस्थितियों के बावजूद दुश्मन को अपने से दूर रखा। परन्तु शहर नहीं बचाया जा सका। इसे लूटा, जलाया और नष्ट कर दिया गया। एक मुस्कराते हुए झांसी शहर को एक धुआं उगलते खण्डहर में बदल दिया गया। जब रानी ने अपने किले से अपने महान् शहर के पुस्तकालय को जलते देखा तो उसकी आंखों में आंसुओं की बाढ़ आ गई। रानी का झांसी के किले से बचकर निकलने का सजीव वर्णन श्री बाल शास्त्री हरदास ने निम्न प्रकार किया—'जब समय आया तो रानी ने देखा कि झांसी के किले की अब एक मिनट और रक्षा नहीं कर सकती तो उसने अपने शिशु (बच्चे) को अपनी पीठ पर बांधा, अपने घोड़े पर सवार हुई और किले के परकोटे से छलांग लगाई। मध्यरात्रि के अन्धकार में तो इससे ज्यादा रोमांचक थर्रा देने वाली घोड़े पर सवार युद्ध की देवी का वर्णन क्या हो सकता है जिसके पीछे अनुसरण कर रहे थे 400 बहादुर सिपाही जिन्होंने बिजली की तेजी से अंग्रेजी सेना की कतारों और टुकड़ियों को चीरते हुए पार किया।'

एक बार जब वह अपने छोटे बच्चे से प्रेम कर रही थी और उस भूखे-प्यासे शिशु को पानी और भुना चना दे रही थी तभी लैफ्टिनैंट बांकर ने घातपूर्वक तलवार से उस पर हमला कर दिया। तुरंत रानी ने उस पर एक भूखी शेरनी की तरह छलांग लगाई और एक ही वार से उसकी दुधारी तलवार ने उस तलवार पकड़ी भुजा को काट फेंका जिसने तलवार की मूंठ गिरते वक्त भी पकड़ रखी थी।

जब झांसी का पतन हुआ तो रानी कालपी में तांत्याटोपे और नाना साहिब के साथ शामिल हो गई। मात्र 250 सैनिकों के साथ उसने बहादुरी से कालपी पर ब्रिटिश हमले का सामना किया, जब तक कि कालपी का पतन न हुआ और उसके सिपाही पीछे न हटे। वह इस विद्रोह की ज्वाला को कालपी से लेकर ग्वालियर पहुँची और उसने ग्वालियर को पुनः हथियाने की एक साहसिक योजना बनाई तथा उसे सफलतापूर्वक पूरा किया। परन्तु ग्वालियर पर कब्जा कर लेने के बाद राव साहिब और उसके दरबारी तुरंत जिस कार्य पर ध्यान दिया जाना चाहिए, उस पर ध्यान न देकर आराम और आनंद में व्यस्त हो गए। खुले दरबार में रानी ने उनसे कहा कि वे अपनी आंखें खोलें। जैसा उसका उचित भय था ब्रिटिश टुकड़ियों ने ह्यूरोज के सेनापतित्व में ग्वालियर को घेर लिया। इस बहादुर रानी ने टुकड़ियों का नेतृत्व करते हुए एक भयानक युद्ध उनसे लड़ा। मर्दाना पौशाक, घोड़े पर सवार तथा बिजली जैसी फुर्ती के साथ वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर सिपाहियों को उत्साहित करती हुई लड़ती रही। विशाल तथा शक्तिशाली ब्रिटिश सेना का सामना करते हुए बुरी तरह से घायल और सोलह घण्टे तक निरन्तर लड़ते हुए रानी घोड़े पर सवार हुई। अपने शिशु बच्चे को खून से भरे शरीर पर बांधा और शत्रुओं के घेरे को चीरती हुई बाहर निकल गई। ब्रिटिश टुकड़ियों ने भय से देखा कि किस भयानकता के साथ वह उनके घेरे को तोड़ती हुई बाहर निकल गई और उन्होंने बिग्रेडियर स्मिथ के नेतृत्व में उसका पीछा किया। रानी तलवार से कटने और खून के बहने से पूर्णतया अंधी-सी हो गई थी क्योंकि खून उसकी आंखों के अंदर पहुँच रहा था। दुर्भाग्यपूर्ण हालात से घिरी हुई तथा अंग्रेजों द्वारा पीछा किये जाते हुए उसने एक नाले को पार करना चाहा परन्तु उसके नये घोड़े ने नाले के पार छलांग लगाने से इनकार कर दिया। पीछे से वह कायर अंग्रेजों द्वारा घेर ली गई। कायर ब्रिगेडियर स्मिथ ने तलवार से वार किया था। रानी का दायां हाथ कट कर गिर गया और उसकी दायीं आंख बाहर निकल आई। अपने शिशु को पकड़े जाने से बचाने के लिए रानी बहादुरी से घायल शेरनी की तरह स्मिथ पर झपटी और अपनी तलवार के एक ही आघात से उसे मार डाला। तब लड़खड़ाते और ठोकरें खाते हुए उसने उस नाले को पार किया और बाबा गंगादास की कुटिया के सामने जाकर वह गिर पड़ी। कुछ इतिहासकारों के अनुसार रानी की व्यक्तिगत नौकरानी पृथ्वीबाई और कुछ दूसरे इतिहासकारों के अनुसार उसका विश्वसनीय सेवक रामचन्द्र राव देशमुख उसे युद्धक्षेत्र से उठाकर बाबा गंगादास की कुटिया पर ले गए। उसे तुरंत उसकी इच्छा के अनुसार एक घास की ढेरी में जला दिया गया था क्योंकि उसकी अन्तिम इच्छा थी कि उसके शरीर को कोई नालायक दुश्मन छू कर अपवित्र न करे। इस प्रकार एक सर्वश्रेष्ठ,

एक सर्वोच्च वीर, एक मानव इतिहास की सर्वोच्च देशभक्त और भारत माँ की दुलारी पुत्री हमेशा के लिए विदा हो गई।

सन् 1857 की क्रांति में रानी का अनोखा कार्य पिता से पुत्र तक, राष्ट्रीयता की जलती हुई मशाल की तरह दोहराया जाना चाहिए। वीर सावरकर के शब्दों में, 'वह तमाम सद्गुणों का एक निचोड़ थी। मुश्किल से 23 साल की औरत, जो गुलाब की तरह सुन्दर थी, व्यवहार में आकर्षक थी, क्रियाकलाप में शुद्ध, जिसमें अपनी प्रजा को संगठित करने की शक्ति थी, उसने वह दर्शा दिया जो बहुत विरले मर्दों में पाया जाता है। देशभक्ति की ज्वाला जिसके हृदय में धधकती थी, जिसे अपने देश के सम्मान और युद्ध निपुणता पर गर्व था। ऐसा अत्यन्त विरल पाया जाता है कि एक राष्ट्र इतना भाग्यशाली हो जो दावा कर सके एक दैवी विभूति का, एक बेटी और एक रानी के रूप में। ऐसा सम्मान इंग्लैण्ड के भाग्य में कभी नहीं रहा। इटली के विद्रोह में उच्च विचार और शौर्य के बहुत ऊँचे मानदंड पाये जाते हैं, फिर भी इस शानदार युग में इटली किसी भी लक्ष्मीबाई को जन्म नहीं दे सकी। आओ, इस शहीदी शताब्दी के अवसर पर इस श्रेष्ठ और शौर्यशालिनी स्त्री की चिता को हम याद करें जो बाबा गंगादास की कुटिया के नजदीक धधक रही है और उसे अपनी भावविभोर हृदय की सच्ची श्रद्धांजलि प्रदान करें। रानी लक्ष्मीबाई भारतीय स्वतंत्रता की देवी है।

हिन्दू धर्म कभी भी सनातन न बन पाता, यदि वह निरन्तर वर्धमान और वितरणशील बनकर, अनुभूतियों के नव-नवीन क्षेत्रों को अपने अन्दर सम्मिलित करता न रहता। प्रत्येक नवागत कल्पना को अपने अन्दर संकलित कर अपने को तदनुरूप समायोजित करने की सामर्थ्य हिन्दू धर्म का एक विशेष लक्षण है, इसलिये हिन्दू धर्म को हम एकमात्र अमर धर्म के रूप में पहचानते हैं। संसार के ज्ञात किसी अन्य धर्म के अन्दर इस प्रकार का सामर्थ्य उस मात्रा में नहीं जितना हिन्दू धर्म में है। अतः हिन्दू धर्म विश्वधर्म के वृक्ष का वह तना है जो संसार के अन्य अल्पजीवी, धर्म-मतों को बहिर्वर्ती शाखाओं के रूप में वहन करता है।

—भगिनी निवेदिता

स्वामी विवेकानन्द की धर्मबहिन : वीर बाला भगिनी निवेदिता

आयरलैण्ड के स्वातंत्र्य प्रेमी परिवार में क्रान्तिकारियों की जन्म भूमि अलस्टर नगर में 28 अक्टूबर, 1867 के दिन एक तेजस्वी बालिका का जन्म हुआ। बच्ची के पिता एक गिरजाघर के पादरी थे तथा उस की धर्मात्मा माता ने जन्म से पूर्व ही उसे ईश्वर के निमित्त अर्पण कर दिया था। उस महान् बाला का नाम मारग्रेट नोबल था जो भारत में भगिनी निवेदिता के नाम से पूजित हुई।

शिकागो धर्म सम्मेलन में विश्व विजय करने के पश्चात् जब भारतगौरव स्वामी विवेकानन्द 1895 में लन्दन गए तो वहाँ स्वामीजी के प्रथम भाषण से ही प्रभावित होकर मारग्रेट नोबल भारत दर्शन के लिए लालायित हो उठी। मारग्रेट की यह महान् लालसा 1898 में पूरी हुई जब उसने अपने पृथु नेत्रों से भारत देश के दर्शन किए। स्वामीजी ने उसे दीक्षा देकर उसे निवेदिता नाम दिया। स्वामीजी ने जो उसे आशीर्वाद दिया वह बड़ा हृदयस्पर्शी है—'एक माता का हृदय, एक योद्धा की संकल्प शक्ति, पवन की मिठास तथा अग्नि ज्वाला में अंकित बलिदान भाव सभी कुछ तुझे प्राप्त हों। तुम भारत की पुत्री, सेविका एवं मित्र—सभी कुछ बन जाओ।' स्वामीजी ने भगिनी निवेदिता को भारतीय धर्म एवं दर्शन की अत्युत्तम शिक्षा दी तथा उन्हें कुछ समय के लिये परमहंस देव की पत्नी पूज्य शारदा माता के सहवास में भी रखा।

भारत की सर्वोत्तम सेवा

निवेदिता ने अपने आप को भारत की सेवा के लिए पूर्ण रूप से निवेदित किया हुआ था। उस महान् शिष्या ने अपने गुरु स्वामी विवेकानन्द से पूछा, 'मैं भारत की सर्वोत्तम सेवा कैसे कर सकती हूँ?' मेधावी गुरु ने तुरंत उत्तर दिया—'भारत के साथ आत्मसात् होकर।' 1898 में जब कलकत्ता में प्लेग की महामारी फैली तो निवेदिता ने जिस प्रकार से सेवा की उसका वर्णन प्रसिद्ध इतिहासकार श्री यदुनाथ सरकार करते हैं, 'मैला साफ करने के लिए भंगी नहीं मिलते थे उस समय बाग बाजार की उपेक्षित गली में, जहाँ वे रहती थी; निवेदिता को हाथ में फावड़ा

लिए, गन्दगी साफ करते हुए देख असीम श्रद्धा उत्पन्न हो उठी। उसके उदाहरण ने गली के नवयुवकों को लज्जित कर दिया और वे भी कार्य में जुट पड़े।'

भारत का कण-कण पूजनीय

भगिनी निवेदिता कहा करती थी, 'भारत का कण-कण मेरे लिए पूजनीय है। यहाँ की वायु का एक-एक झोंका पवित्र है।' निवेदिता संपूर्ण भारत के तीर्थों के दर्शन के लिए गई तथा गया, सारनाथ, काशी इत्यादि तीर्थों की धूलि को मस्तक पर लगा कर आनन्द विह्वल हो गई।

भारतीय नारी की गरिमा

भगिनी के ओजस्वी शब्द हैं—'लड़कियों को शिक्षा देते समय आज की प्रथम आवश्यकता है कि हमारे सामने एक सुस्पष्ट लक्ष्य हो, जिसकी सिद्धि हमें प्राप्त करनी है। इस दिशा में भारत से अधिक सौभाग्यशाली देश संसार में कोई अन्य न होगा। यह महान् नारियों का देश है।....क्या स्त्री को शक्तिशाली, साधनसम्पन्न, स्वयंस्फूर्त तथा आपत्तिकाल के लिए जागरूक होना चाहिए? क्या हम चित्तौड़ की पद्मिनी, झांसी की लक्ष्मीबाई पर गर्व नहीं कर सकते? क्या स्त्री को सौम्य, भक्त तथा दार्शनिक होना चाहिए? क्या मीरा वह आदर्श प्रस्तुत नहीं करती? यदि नारी की गरिमा उसकी शासन क्षमता में निहित हो तो क्या अहिल्याबाई, रानी भवानी तथा मैमनसिंह जिले की जाह्नवी हमारी प्रेरणास्रोत नहीं बन सकती? क्या नारी की सम्पूर्ण तेजस्विता पत्नीत्व में प्रकट होती है? सती सावित्री एवं भारतीय गगनांचल के उज्ज्वलतम नक्षत्र के रूप में जनकनंदिनी सीता हमारी मूर्तिमत् आदर्श हैं। कौमार्यावस्था में ही जीवन की श्रेष्ठता को इंगित करने वाली उमा हमें दिव्यता की ओर प्रेरित करती हैं और स्त्रीरत्न के रूप में माता गान्धारी के समान महान् स्त्रियाँ हमें संसार के किसी कोने में भी प्राप्त न हो सकेंगी।'

सच्ची शक्ति पूजा

एक बार नागपुर के मारिस कालेज में विजयादशमी के अवसर पर क्रिकेट के खेल के उपरान्त पारितोषिक वितरण के लिए निवेदिता को बुलाया गया। निवेदिता ने ओजस्वी शब्दों में कहा—'आज तो शस्त्रपूजा का दिन है। दुर्गा भवानी की पूजा होती है। माता भवानी, उसकी खड्ग और उसका शक्तिदायी संदेश आप कैसे भूल गए? मैं भोंसलों की राजधानी में आशा करती थी कि बीते समय के पराक्रम का दर्शन करने को मिलेगा परन्तु यहाँ तो बन्दरों का नाच (क्रिकेट का खेल) देखने को मिला जिसमें विदेशी अंग्रेज हमारे तरुणों को नचा रहा है। देश को सबल देशभक्तों की आवश्यकता है।' भगिनी बाबू अरविन्द घोष से बड़ौदा में मिली और कहा, 'आप तो शक्ति के उपासक हैं। बंगाल को आपकी बहुत

आवश्यकता है।' आपका कार्यक्षेत्र वहाँ है। उन्हीं की प्रेरणा से अरविन्द उग्र क्रान्ति के मार्ग पर अग्रसर हुए।

भारत की स्वाधीनता के लिए तड़प

भगिनी ने भारत के स्वाधीनता संघर्ष में पर्याप्त भाग लिया। इसलिए वे रामकृष्ण मिशन से भी पृथक् कर दी गईं। पर वे घबराई नहीं। उनका कहना है—'स्वामी विवेकानन्द हमारे राष्ट्रीय सेनानी थे। उन के हृदय में राष्ट्रीयता का ज्वार था।'

सरकार को भी चुनौती देती हुई वह वीर नारी गर्जना करती, 'मुझे मृत्यु स्वीकार है परन्तु भारत के स्वाधीनता संघर्ष से पृथक्ता स्वीकार नहीं।'

भगिनी निवेदिता ने कुमारी मैकालियाड को एक पत्र में लिखा, 'भारत एक दिन अपने ध्यान में मग्न था। एक दिन लुटेरों के एक गिरोह ने आकर धावा बोल दिया, उसकी भूमि को पदाक्रांत कर डाला। साधना भंग हो गई। क्या डाकू उसे सिखला सकेंगे? नहीं। उनको निकाल कर बाहर खदेड़ना पड़ेगा। जब तक सरकार विदेशी मुझे सरकार एवं ईसाइयों से कोई सम्बन्ध नहीं है। जो भारत के लिये भारतीय है वह कितना ही मूर्ख और निरुपयोगी क्यों न हो, मैं उसकी चरण वंदना करने को तैयार हूँ।

भगिनी ने अरविन्द घोष के संग में मिलकर गुप्त क्रान्तिकारी परिषद् बनाई। तिलक के साथ भी वे निकट सम्पर्क में आईं। विपिन चन्द्र पाल को भी उन्होंने बड़ी प्रेरणा दी।

डॉ. जगदीश चन्द्र बोस के घर में तो वे प्रायः आया-जाया करती थी। डॉ. बोस की पत्नी की गोद में ही वे चिर निद्रा में सो गई थीं।

वे भारत की पालित पुत्री, भारत की आत्मा के साथ तदाकार हो चुकी थीं। वे स्वामी विवेकानन्द के पश्चिम के प्रचार कार्य का सर्वोत्तम पुष्प थीं। उस महान् आत्मा को हमारी कोटि-कोटि वन्दनाएँ समर्पित हैं।

3 नवम्बर 1959
दैनिक 'वीर प्रताप' जालन्धर में प्रकाशित

पश्चिमी जगत् में विवेकानन्द को जो सफलता मिली, वह इस बात का प्रमाण है कि भारत विश्व विजय करके रहेगा।

—योगी अरविन्द

डॉ. एनी बीसेंट

डॉ. एनी बीसेंट ने लिखा है—'India & Hinduism are one'. (भारत और हिन्दुत्व—दोनों एक और अभिन्न हैं)।

'....और यदि हिन्दू ही हिन्दुत्व का संरक्षण नहीं करेंगे तो कौन इसे बचाएगा? यदि भारतमाता की अपनी सन्तानें ही अपने धर्म के प्रति निष्ठावान् नहीं रहती तो कौन इसकी रक्षा करेगा? विदेशी कलेवर में कोई भी वह नहीं कर सकता जो अपने स्वदेश में कर सकता है। मेरा भारत के लिए कितना भी प्रेम, कितनी भी सेवा की पूर्णता, कितनी भी भक्ति की अनन्यता, इस विदेशी शरीर में वह नहीं कर सकती जो आप भारत के लाल कर सकते हैं। अतः हम भी, जिनके हृदय हिन्दू हैं, और जिनके पूर्वजन्म हिन्दू रहे हैं, हम केवल आपकी सहायता कर सकते हैं, मुख्य कार्य आपको स्वयं ही करना होगा।

'भूलो मत! हिन्दुत्व के बिना हिन्दुस्तान का कोई भविष्य नहीं है। हिन्दुत्व ही वह जनन-भूमि है जिसमें भारत की जड़ें स्थापित हैं, और उससे उखाड़ देने पर वह अनिवार्य रूप से मुरझाकर मर जाएगा, जैसे एक वृक्ष को उसके मूलस्थान से उजाड़ देने पर होता है। बहुत से धर्म हैं और बहुत सी जातियाँ हैं जो भारत में फल-फूल रही हैं, किन्तु उनमें से कोई भी उसके अतीत के अति दूर प्रथम सूर्योदय तक नहीं पहुँच पाती, तथा न ही वे उसके राष्ट्र के रूप में जीवित रहने के लिए आवश्यक है। उनमें से प्रत्येक जैसे आया था भले ही चला जाए, और भारत फिर भी बना रहेगा। किन्तु तनिक हिन्दुत्व को लुप्त होने दो, तो भारत क्या बचेगा? भूतकाल का एक भौगोलिक आभास मात्र, विनष्ट वैभव की धुँधली स्मृति मात्र! उसके इतिहास, उसके साहित्य, उसकी कला, उसके स्मारकों—सभी पर हिन्दुत्व ही अंकित है।

जरथ्रुस्त्र का पारसी धर्म भारत में शरण के लिए आया और उसके पुत्रों को भारत में शरण एवं स्वागत मिला; किन्तु पारसी धर्म भले ही चला जाए, तब भी भारत भारत ही रहेगा। बौद्धधर्म यहीं पर स्थापित हुआ, किन्तु बौद्ध धर्म लुप्त हो गया और भारत भारत ही है। इस्लाम एक आक्रमण की लहर बन कर आया,

और मुसलमान भारतीय राष्ट्र के अंग बने हुए हैं, तथा इसके भविष्य के निर्माण में योगदान करेंगे; फिर भी इस्लाम भले ही चला जाए, भारत भारत ही रहेगा। ईसाइयत आई है, और ईसाई भारत में शासन करते हैं तथा इसके विभिन्न पक्षों को प्रभावित करते हैं; फिर भी ईसाइयत भले ही चली जाए और भारत भारत ही रहेगा। भारत उनके आगमन से पहले भी जीवित था; और भारत उनके चले जाने के बाद भी जीवित रह सकता है। किन्तु तनिक हिन्दुत्व को जाने दो, हिन्दुत्व जो भारत का शैशव का झूला रहा है, और उसके लोप में ही भारत की मृत्यु हो जाएगी। तब भारत, भारत के धर्म के साथ, केवल स्मृति शेष बचेगा, जैसे मिस्र एवं मिस्र के धर्म आजकल हो गए हैं। तब भारत बचेगा मात्र प्राचीन इतिहास का एक विषय, पुरातत्त्व की वस्तु, चीर-फाड़ के लिए शवमात्र, किन्तु वह देशभक्ति की वस्तु नहीं बचेगा, वह राष्ट्र नहीं रहेगा।' (डॉ. एनी बीसेंट का हिन्दू आदर्शों पर व्याख्यान, सेंट्रल हिन्दू कालेज, बनारस; हिंदुइज्म थ्रूदि एजेज, जी. एल. शर्मा पृष्ठ 118-119)

अमरीकी इतिहासकार विल डयूरंट ने दस खण्डों में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'स्टोरी आव सिविलाइजेशन' के प्रथम खण्ड 'अवर ओरियंटल हेरिटेज' में इस बात का उल्लेख किया है कि आधुनिक विश्व भारत से क्या आशा कर सकता है। उन्होंने कहा है (पृष्ठ सं. 633)

'यह सत्य है कि हिमालय की सीमाओं से पार भी भारत ने हमें व्याकरण, तर्कशास्त्र, दर्शन, कथाओं, सम्मोहन और शतरंज तथा इन सबसे बढ़कर हमारे अंक और दशमलव प्रणाली की महान भेंट दी है परन्तु ये सब उसकी आत्मा का सार नहीं है। भविष्य में हम उससे जो सीख सकते हैं उसके मुकाबले में ये सब तुच्छ है। जैसे जैसे नए आविष्कार, उद्योग तथा व्यापार महाद्वीपों को एकता में बाँधेंगे या एशिया के साथ हमको संघर्ष में डालेंगे, हम उनकी सभ्यताओं का अधिक निकटता से अध्ययन करेंगे तथा शत्रुता में भी उनके कुछ आचार-विचार को अपना लेंगे। संभवतः विजय, उद्दंडता और लूटमार के बदले में भारत हमें परिपक्व बुद्धि की सहनशीलता और शालीनता, असंग्रहशील आत्मा का शान्त-संतोष, समझदार व्यक्तित्व की शान्ति और सभी जीवित प्राणियों के प्रति एकता और प्रेम की शिक्षा देगा।'

श्री अरविन्द आश्रम की प्राण संचालिका पूज्य श्री माताजी

योगिराज अरविन्द को 5 मई, 1908 के दिन अलीपुर जेल में जो सर्व कृष्णमयं जगत् की अनुभूति हुई, उसमें उन्हें जेल की काल कोठरी में, दीवारों में, पेड़ों में, झरोखों में, सन्तरी में, मजिस्ट्रेट में, सर्वत्र भगवान् कृष्ण वासुदेव के दर्शन हुए। भगवान् ने उनके हाथ में भगवद्गीता देते हुए कहा, 'मैं ही राष्ट्र हूँ, मैं ही राष्ट्रोत्थान हूँ और मैं ही वासुदेव हूँ।' भगवान् ने श्री अरविन्द को अपनी बाहुओं में लिए हुए मुस्कराते हुए कहा, 'अपने उस कार्य की ओर लग जावो जिसके लिये मैं तुम्हें जेल में लाया हूँ। मैं जो कुछ चाहूँगा वही होगा।' भगवान् के इस आदेश को मानकर श्री अरविन्द पाण्डिचेरि में अध्यात्म साधना के लिये चले गये।

फ्रांस में एक महान् देवी श्रीमती मीरा रिचर्ड पूर्व जन्म की संस्कार परम्परा से प्रेरित हो योग साधना की ओर लगी हुई थी। वे सन् 1914 में भारत की ओर आकृष्ट हुईं। इससे पूर्व वे अफ्रीका में अपनी साधना कर चुकी थी। 1914 के यूरोपीय युद्ध के समय उन्होंने भारत का प्रथम दर्शन किया। वे तभी से भारत को जगद्गुरु के रूप में देखती चली आ रही थी। 29 मार्च 1914 को आपने जब पाण्डिचेरि में योगिराज अरविन्द के दर्शन किये तो उन्हें लगा कि उनके जीवन का पथ प्रदर्शक मिल गया है। तब से वे अरविन्द आश्रम पाण्डिचेरि से परिचित एवं सम्बद्ध हो गई। इसी प्रकार अमरीका के राष्ट्रपति विल्सन अपनी पुत्री के साथ योगिराज अरविन्द के दर्शन करने आये, तब अमरीका के राष्ट्रपति की पुत्री ने भी अपना शेष सारा जीवन अरविन्द आश्रम में समर्पित करने का व्रत लिया, जिसे उन्होंने अपने जीवन पर्यन्त निभाया। श्री माताजी की आध्यात्मिक डायरी से उनके बचपन की दिव्य अनुभूति का भी आभास मिलता है, 'जब मैं तेरह वर्ष की बच्ची थी तब एक वर्ष तक रोज रात को बिस्तर पर लेटने पर मुझे प्रतीत होता कि मैं अपने शरीर से बाहर निकल गयी हूँ तथा अपने घर से, शहर से, संसार से, बहुत ऊँचे उठ गई हूँ।' ये अनुभूति सिद्ध करती है कि वे जन्मजात योग साधिका थी। श्री माँ का जीवन प्रारम्भ से ही कितना अध्यात्म पूरित था

यह इस बात से प्रमाणित होता है कि उन्होंने भारत आने से पूर्व तीन पुस्तकें लिखी थी—

1. Prayers & Meditation
2. Paroles – D – Outrefdis (पुराने प्रसंग)
3. Belles Histories (सुन्दर कहानियाँ)

उन्होंने सन् 1893 से 1912 के बीच पेरिस में आध्यात्मिक विषयों पर अनेक प्रवचन किये थे।

वे सदा अपनी आध्यात्मिक दैनिकी साथ रखती थी। उन्होंने 24 मार्च, 1914 को डायरी में (श्री अरविन्द दर्शन से पांच दिन पूर्व) लिखा, 'प्रार्थनाओं की चरितार्थता ही जीवन का विकास है। यह उनमें से एक वस्तु है जिसकी मैं अपनी भारत यात्रा से आशा करती हूँ।

1914 में माताजी (श्रीमती मीरा रिचर्ड) तथा उनके पतिदेव पाल रिचर्ड दोनों पाण्डिचेरि पधारे थे। श्री रिचर्ड ने अपनी पुस्तक Dawn over Asia में लिखा कि श्री अरविन्द एशिया के भावी पथ प्रदर्शक हैं। 29 मार्च, 1914 को जो उन्हें दर्शन अनुभूति प्राप्त हुई उस विषय में 30 मार्च की डायरी में श्रीमती मीरा रिचर्ड (श्री माताजी) ने अंकित किया, वह (श्री अरविन्द) जिसे हमने कल देखा वह धरती पर है, उसकी उपस्थिति यह प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है, कि एक दिन आयेगा जब तमस् ज्योति में परिवर्तित हो जायेगा। तब हे प्रभु! तुम्हारा राज्य सचमुच धरती पर स्थापित हो जायेगा।'

श्री माताजी की, श्री अरविन्द से इस प्रथम भेंट में ही पाल रिचर्ड के सुझाव पर 'आर्य पत्रिका' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। उसका व्ययभार कुछ वर्षों तक रिचर्ड दम्पती ही वहन करते रहे।

1915 में पाल रिचर्ड को अपने स्वदेश (फ्रांस) से बुलावा आया तथा रिचर्ड दम्पती को वापस फ्रांस आना पड़ा। वहाँ भी श्री माताजी, श्री अरविन्द के मार्गदर्शन के अनुसार अध्यात्म साधना में लगी रहीं।

1916 में श्री माताजी जापान गई। जहाँ उन्होंने योग एवं अध्यात्म का वह संदेश दिया, जो उन्होंने श्री अरविन्द से प्राप्त किया था।

24 अप्रैल, 1920 को वे पुनः पाण्डिचेरि पहुँची। जनवरी 1922 से उन्होंने श्री अरविन्द के आवास एवं आश्रम की देख-भाल प्रारम्भ की।

24 नवम्बर, 1926 को श्री अरविन्द ने परम सिद्धि का परम प्रकाश पाया। उस दिन के पश्चात् श्री अरविन्द जीवनव्यापी मौन में लीन रहे। शरीर से धरती पर जीवित रहते हुए निरन्तर ब्रह्मानन्द की ज्योति से ज्योतित सन् 1926 से 1950

तक का उनका 24 वर्ष का जीवन एक ब्रह्मनिष्ठ आप्तकाम योगी का जीवन था। श्री अरविन्द की सिद्धि के दिन (24 नवम्बर, 1926) से ही श्री माताजी आश्रम की संचालक प्राणशक्ति बनी हुई थी। श्री अरविन्द स्वयं श्री माताजी को ईश्वर प्रेरित आश्रम माता के रूप में मानते थे।

सन् 1950 में योगिराज अरविन्द की महासमाधि के पश्चात् तो अनेकानेक साधकों को श्री अरविन्द की महाविभूति के दर्शन श्री माताजी के रूप में होते रहे हैं। श्री अरविन्द की ज्योति एवं शक्ति जैसे श्री माताजी के रूप में मूर्तिमत् हो उठी थी।

श्री माताजी श्री अरविन्द के समान पूर्णयोग अथवा समन्वय योग की प्रस्तोता थीं। वे अरविन्द आश्रम में अन्तेवासियों के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास को ही अपना सर्वोच्च उत्तरदायित्व मानती थीं। वे इस वृद्धावस्था तक भी स्वयं दैनिक योग, व्यायाम, योगाभ्यास एवं सरल क्रीड़ा कार्यक्रमों में स्वयं भाग लेती रही थीं।

श्री माँ, श्री अरविन्द दर्शन का क्रियात्मक स्वरूप रही हैं। यदि श्री अरविन्द सिद्धान्त थे तो श्री माताजी उस सिद्धान्त का जीवन में क्रियात्मक प्रतिफलन थी। श्री अरविन्द ने सन् 1926 में ही अपनी परम सिद्धि के दिन घोषणा की थी, 'आज से माताजी साधक-साधिकाओं की अधिष्ठात्री होंगी।' अनेक प्रसंगों पर श्री अरविन्द उन्हें जगज्जननी महाशक्ति का ही स्वरूप मानते थे। श्री अरविन्द के शब्दों में, 'असत्यान्धकार-शोक-सन्ताप-मृत्यु-संकुले च अस्मिन संसारे सैव समर्था—समवतारयितुं सत्यम् ज्योतिः, दिव्य जीवनम् अमृतस्य च आनन्दम्।' अर्थात् 'इस असत्य, अन्धकार, शोक, संताप, मृत्यु, संकुल संसार से तारने में वही समर्थ है, वही सत्य ज्योति दिव्य जीवन, अमृत एवं आनन्द की दात्री है।'

शिक्षा पद्धति के विषय में श्री माताजी की उद्बोधक वाणी थी, 'बालक को शिक्षा देने योग्य बनने के लिए प्रथम आवश्यकता है अपने आपको शिक्षित करने की ताकि मनुष्य बालक के सम्मुख एक घटिया आदर्श न प्रस्तुत करे।' वे पुनः कहती हैं, 'एक बालक को देने योग्य कोई सुन्दरतम् उपहार यही हो सकता है कि हम उसे आत्मज्ञान एवं आत्म नियंत्रण सिखा सकें।'

भारत के जगद्गुरु स्वरूप की वन्दना करते हुए वे कहती हैं, 'भारत का भविष्य बहुत स्पष्ट है। भारत जगत् का गुरु है। विश्व की भावी रचना भारत पर निर्भर है। भारत जीवन्त आत्मा है। भारत विश्व में अध्यात्म ज्ञान को अवतरित कर रहा है। भारत सरकार को इस क्षेत्र में भारत की महत्ता को पहचान कर उसके अनुसार अपनी राष्ट्रीय योजनाएँ नियोजित करनी चाहिए।' विश्ववंद्य भारतमाता की अध्यात्मज्योति विश्व मानवता को बांटने वाली उन विश्वविश्रुत, योगसिद्धा, दिव्याश्री माताजी को हमारी शत कोटि श्रद्धांजलियाँ समर्पित हों।

श्री माँ का राष्ट्र को आह्वान

मातृभूमि की वन्दना—'हे हमारी माँ! हे भारत की आत्म-शक्ति! हे जननी! तूने कभी अत्यन्त अंधकारपूर्ण अवसाद के दिनों में भी.... यहां तक कि जब तेरे बच्चों ने तेरी वाणी अनसुनी कर दी तथा अन्य प्रभुओं की सेवा की और तुझे अस्वीकार कर दिया, तब भी.. तूने साथ नहीं छोड़ा।

'हे माँ! आज इस महान् घड़ी में जबकि वे जाग पड़े हैं और तेरी स्वतंत्रता के इस उषाकाल में तेरे मुख मण्डल पर ज्योति पड़ रही है, हम तुझे नमस्कार कर रहे हैं। हमें पथ दिखला, जिससे स्वतंत्रता का जो विशाल क्षितिज हमारे सामने उन्मुक्त हुआ है, वह तेरी सच्ची महानता का तथा विश्व के राष्ट्र-समाज के अन्दर तेरे सच्चे जीवन का भी क्षितिज बने। हमें पथ दिखला, जिसमें हम सर्वदा महान् आदर्शों के पक्ष में ही खड़े हों। और अध्यात्म-मार्ग के नेता के रूप में तथा सभी जातियों के मित्र व सहायक के रूप में तेरा सच्चा स्वरूप मनुष्य जाति को दिखला सकें।

हे भारत! ज्योति और आध्यात्मिक ज्ञान के देश! संसार में अपने सच्चे जीवन के लक्ष्य के लिए जागो। एकता और सामञ्जस्य का मार्ग दिखाओ'।

राष्ट्र चिन्तन—जैसे व्यक्ति में चैत्य पुरुष होता है, जो उसकी सच्ची आत्मा है और कम या अधिक खुले रूप में उसकी नियति पर शासन करता है, उसी तरह प्रत्येक राष्ट्र का भी अपना चैत्य पुरुष होता है, जो पर्दे के पीछे से उसकी नियति का निर्धारण करता है। वह है राष्ट्र की आत्मा, राष्ट्रीय प्रतिभा, जनता का उत्साह, राष्ट्रीय अभीप्सा का केन्द्र। राष्ट्र के जीवन में जो कुछ सुन्दर, उदात्त, महान् और उदार है उसका स्रोत। सच्चे देश भक्त उसकी उपस्थिति को ठोस वास्तविकता के रूप में अनुभव करते हैं। भारत में इसी को प्राय: दिव्य सत्ता बना दिया गया है। जिनको सचमुच अपने देश से प्रेम है, वे उसे भारत माता कहते हैं और अपने देश के हित के लिए उसी से प्रतिदिन प्रार्थना करते हैं। वे ही देश के सच्चे आदर्श का, जगत् में उसके सच्चे कर्तव्य का प्रतीक और मूर्तरूप हैं।

भारत वह देश है जहां आध्यात्मिकता का राज्य हो सकता है और होना चाहिए। और यहां उसका समय आ गया है। उस देश की मुक्ति का यह एकमात्र संभव साधन

है जिसकी चेतना दुर्भाग्यवश विदेशी राज्य और प्रभाव के कारण मिथ्या हो गई है। लेकिन फिर भी उसके पास एक अद्‌भुत आध्यात्मिक परम्परा है।

भारत इस जमीन, यहां की नदियों और यहां के पहाड़ों का नाम नहीं है। इस देश के वासियों का सामूहिक नाम भी भारत नहीं है। भारत एक जीवित सत्ता है। यह सत्ता उतनी ही जीवित-जाग्रत् है, जितने शिव आदि देवतागण।

सभी देशों की अपनी आत्मा होती है। इसलिए अगर तुम देश में परिवर्तन करना चाहो तो यह अवास्तविक होगा। उदाहरण के लिए आजकल आस्ट्रिया जर्मनी का भाग बना हुआ है और फिर भी दोनों एकदम भिन्न हैं। आस्ट्रिया की आत्मा बहुत दु:खी है।

भारत के लिए अब पहले नम्बर की समस्या है अपनी अन्तरात्मा को फिर से प्राप्त करना और उसे अभिव्यक्त करना।

एक समय था जब भारत एकदम सुरक्षित था। उसके लिए आसुरी आक्रमण का शिकार बनने का किसी प्रकार का कोई खतरा नहीं था, परन्तु अब परिस्थिति बदल गई है। भारत की प्रजा और उसकी शक्तियों ने ऐसे ढंग से कार्य किया है कि उससे आसुरी प्रभावों को उसके ऊपर आ पड़ने का निमंत्रण मिल गया है। उन्होंने एक विश्वासघाती की तरह कार्य किया है और देश के लिए जो सुरक्षात्मक स्थिति थी उसे जड़ से खोद डाला है।

बाहरी रूप में भारत के प्रदेश....स्वभाव, प्रकृति, संस्कृति और भाषा की दृष्टि से....एक-दूसरे से बहुत भिन्न हैं और कृत्रिम रूप से उन्हें एक करने का कोई भी प्रयास अनर्थकारी परिणाम ला सकता है।

लेकिन उसकी आत्मा एक है। आध्यात्मिक सत्य के प्रति तीव्र सर्जन की तात्त्विक एकता और जीवन के दिव्य स्रोत के प्रति उसकी अभीप्सा तीव्र है। इस अभीप्सा के साथ एक होकर समस्त देश एक ऐसी एकता को फिर से स्थापित कर सकता है जिसका अस्तित्व उच्चतर मन के लिए कभी लुप्त नहीं हुआ।

विश्वगुरु भारत—समस्त सृष्टि में पृथ्वी का एक विशेष स्थान है। क्योंकि दूसरे ग्रहों से भिन्न यह विकसनशील है और अपने केन्द्र में एक चैत्य पुरुष को लिए हुए है। उसमें भारत विशेष रूप से भगवान् का चुना हुआ देश है।

भारत को अपने भगवद्‌निर्दिष्ट कार्य की ऊंचाई तक ऊपर उठना चाहिए और विश्व के सामने सत्य की घोषणा करनी चाहिए।

एकमात्र भारत ही विश्व में सत्य को ला सकता है तथा भागवत संकल्प और शक्ति को अभिव्यक्त करके विश्व के सामने संदेश प्रचारित कर सकता है। पर यह कार्य पश्चिम के जड़वाद का अनुकरण करने से नहीं होगा। भागवत इच्छा का

अनुसरण करने पर भारत आध्यात्मिक पर्वत के शिखर पर जगमगा उठेगा। सत्य का मार्ग दिखलाएगा और विश्व ऐक्य का संगठन करेगा।

सचमुच, सारे संसार में भारत ही एक ऐसा देश है जो अब भी इस बात के प्रति सचेत है कि सृष्टि में भौतिक पदार्थ के अतिरिक्त कोई और चीज भी है। बाकी देश इसे भूल चुके हैं। फिर वे चाहे यूरोप के देश, अमरीका या दूसरा कोई भी देश क्यों न हो....। इसी कारण भारत के पास अभी तक एक ऐसा संदेश है जिसकी उसे रक्षा करनी है, जिसे उसे जगत् को देना है। लेकिन इस समय भारत अव्यवस्था में छितरा हुआ छटपटा रहा है।

विश्व की भलाई के लिए भारत की रक्षा करनी होगी। क्योंकि एकमात्र भारत ही विश्व को शान्ति और नवीन व्यवस्था प्राप्त करा सकता है।

भारत का भविष्य स्पष्ट है। भारत जगत् का गुरु है। विश्व का भावी संगठन भारत पर निर्भर है। भारत एक जीवंत आत्मा है। भारत आध्यात्मिक ज्ञान को विश्व में मूर्तिमान कर रहा है। भारत सरकार को इस क्षेत्र में भारत के महत्त्व को स्वीकार करना चाहिए और अपने कार्य को इसी के अनुसार सुनियोजित करना चाहिए।

भारत अपने खजाने का रहस्य केवल उन्हीं लोगों को प्रकट करता है, जो मन की अभिरुचियों पर और जाति तथा शिक्षा के पूर्वाग्रहों पर विजय पा सकते हैं। बाकी के सब लोग वांछित चीज न पाने के कारण हताश होकर चले जाते हैं। क्योंकि उन्होंने उसकी खोज गलत तरीके से की थी और दिव्य खोज का मूल्य चुकाने को तैयार नहीं थे।

आध्यात्मिक भारत—आध्यात्मिक दृष्टि से भारत जगत् में सबसे आगे है। उसकी भूमिका है—आध्यात्मिकता का उदाहरण स्थापित करना।

यह बात इतनी स्पष्ट है कि यहां का एक भोला अज्ञानी किसान भी अपने हृदय में यूरोप के बुद्धिजीवियों की अपेक्षा भगवान् के अधिक निकट है....।

लो एक छोटी-सी कहानी सुनो। मेरा एक मित्र भारत की सैर करके लौटा। किसी ने उससे अपनी यात्रा की घटनाएं सुनाने के लिए कहा। एक वयस्क और भोली महिला वहां मौजूद थी। उन्होंने उससे पूछा....'क्या भारत में आत्माएं गिनी जाती हैं?' उसने उत्तर दिया....'हां'। 'उसमें कितनी आत्माएं हैं?'....महिला ने पूछा। उसने उत्तर दिया....'बस एक....।'

भारत और पश्चिम—भारत के पास आत्मा का ज्ञान है, बल्कि था। लेकिन उसने जड़-भौतिक पदार्थ की उपेक्षा की और उसके कारण कष्ट भोगा।

पश्चिम के पास जड़-भौतिक पदार्थ का ज्ञान है, लेकिन उसने आत्मा को अस्वीकार किया और इसके कारण वह भी बुरी तरह कष्ट पा रहा है।

भारत और अमरीका—पूर्ण आध्यात्मिक ज्ञान में यह ज्ञात है कि विश्व की रक्षा के लिए तथा एक नए जगत् के निर्माण के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि भारत और अमरीका साथ आएं। क्योंकि यही वे दो देश हैं जो यह कार्य कर सकते हैं। अमरीका अपनी विशाल भौतिक समृद्धि के बल से और भारत अपनी आध्यात्मिक शक्ति से। यह दोनों तत्त्व ही अपरिहार्य हैं।

भारत और फ्रांस—फ्रांस का मतलब है भावना की उदारता, विचारों की नूतनता एवं निर्भीकता और क्रिया में शौर्य। वही फ्रांस सबके आदर-सम्मान और प्रशंसा का पात्र था। इन्हीं गुणों से वह जगत् पर छा गया था।

व्यावहारिकता में फंसा, मतलबी और व्यापारिक फ्रांस, फ्रांस नहीं रहा। ऐसी चीजें उसके सच्चे स्वरूप के साथ मेल नहीं खातीं और इन चीजों को अपने आचरण में लाकर वह संसार में अपनी भव्य प्रतिष्ठा की स्थिति को खो रहा है।

योग—अगर व्यक्ति योग करे तो क्या वह शेक्सपियर और शैली की ऊंचाइयों तक उठ सकेगा? ऐसा कोई उदाहरण रहा है?

क्यों नहीं? महाभारत और रामायण अवश्य शेक्सपियर की या किसी दूसरे कवि की रचना से निकृष्ट नहीं हैं। वे उन महापुरुषों की रचनाएं हैं जो ऋषि थे और जिन्होंने योग तपस्या की थी। गीता, जो उपनिषदों की तरह सबसे महान् साहित्यिक और आध्यात्मिक रचनाओं में से है, किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा नहीं लिखी गई, जिसे योग की कोई अनुभूति प्राप्त नहीं थी....।

भारत में सबसे श्रेष्ठ चित्र और स्थापत्य तथा शिल्पकला का अधिकतर भाग उन बौद्ध भिक्षुओं द्वारा बनाया गया था जो आध्यात्मिक ध्यान और अभ्यास में जीवन बिताते थे। वे परम कलात्मक काम करते थे, लेकिन उन्होंने अपना नाम छोड़ जाने की परवाह नहीं की।

लोग, विशेष रूप से पश्चिम के लोग, यह समझते हैं कि योग का मतलब है हठ योग या उससे बदतर कोई और चीज। भारत में भी.... मध्यकाल में बौद्ध धर्म, मायावाद इत्यादि के प्रभाव के कारण....योग का अर्थ समझा जाता था जीवन का त्याग। किन्तु प्राचीन काल में ऐसा नहीं था।

कला—अगर तुम चाहो कि कला सबसे सच्ची और ऊंची कला बने, तो उसे इस भौतिक जगत् से लाए गए दिव्य जगत् की अभिव्यक्ति होना होगा। सभी सच्चे कलाकारों में इस प्रकार की अनुभूति होती है। उनमें यह भाव होता है कि वे एक उच्चतर जगत् और इस भौतिक जीवन के बीच माध्यम हैं....।

मध्य युग में कला का यही माना हुआ कार्य था। मध्ययुगीन यूरोप के 'आदिम' कलाकारों तथा गिरजाघरों के निर्माताओं की कला के बारे में कोई और धारणा न थी। भारत में सारे स्थापत्य का, उनकी शिल्प कला का, उनकी

चित्रकला का उद्गम यही रहा है और वे इसी आदर्श से प्रेरित हुए हैं। मीराबाई के भजन और त्यागराज का संगीत और भारत के भक्तों, संतों और ऋषियों द्वारा रचित काव्यमय साहित्य जगत् के सबसे महान् रत्नों में से हैं।

सच्ची कला एक इकाई और समष्टि है। वह एक है और जीवन का अभिन्न अंग है। इस घनिष्ठता का आभास हमें पुरातन यूनान और पुरातन मिस्र से मिलता है। क्योंकि वहां चित्रों, मूर्तियों और कला के सभी विषयों को इमारत की वास्तुशिल्पीय योजना के अंश के रूप में बनाया और सुव्यवस्थित किया जाता था। हर ब्योरा समस्त का अंग होता था। जापान में भी ऐसा ही है या कम से कम अभी उपयोगी और व्यावहारिक आधुनिकता की चढ़ाई से पहले तक ऐसा था। एक जापानी घर अद्भुत कलात्मक इकाई होता है। हमेशा ठीक चीज ठीक स्थान पर होगी, कोई चीज गलत जगह न होगी, कोई चीज न बहुत ज्यादा होगी, न ही कम। हर एक चीज ठीक वैसी होगी जैसे कि होनी चाहिए और स्वयं घर इर्द-गिर्द की प्रकृति के साथ अद्भुत रूप में मेल खाएगा। भारत में भी चित्रकला, शिल्पकला और स्थापत्य एक सर्वांगीण सौन्दर्य थे, भगवान् के प्रति भक्ति की एकमेव गति थे।

यहां (भारत में)....कला की एक परम्परा है जो चली आ रही है। सारा देश ही उन चीजों से भरा है, जो देश के कलात्मक इतिहास के अद्भुत क्षणों में बनायी गई थीं। हम उनके बीच रहते हैं। बाकी जगत् में जो कुछ घट गया है, विशेष रूप से यूरोप में, उसके परिणामों को हमने बहुत ही कम अनुभव किया है। भारत के केवल वे प्रदेश सौन्दर्यबोध खो बैठे हैं, जहां अंग्रेजों का बहुत ज्यादा प्रभाव पड़ा है। मुम्बई में कुछ कला-शैलियां हैं, जो भयंकर हैं। और फिर, वह कोलकाता शैली है जिसमें भारतीय कला को पुनः जागृत करने की कोशिश की गई थी, लेकिन वह बहुत छोटे पैमाने पर थी। कला की दृष्टि से जो चीजें सबसे ज्यादा तुम्हारी पहुंच में होती, वे हैं पुरानी रचनाएं, पुराने मन्दिर, पुराने चित्र। वह सब बहुत अच्छा था। वह बनाया गया था एक श्रद्धा को अभिव्यक्त करने के लिए। वह कार्य के भाव से किया गया था, अव्यवस्था में नहीं।

मैं कला की जिस प्रवृत्ति की बात करने लगी हूं और जिसका यूरोपीय सभ्यता के साथ सम्बन्ध है, उसे यहां बहुत अनुभव नहीं किया गया....बहुत ही कम और वह भी गहरे रूप से नहीं। यहां अधिकतर रचनाओं पर, यहां तक कि लगभग सभी सुन्दरतम रचनाओं पर, कलाकारों के नाम नहीं हैं। गुहाओं के उन सभी चित्रों पर, मन्दिरों की उन मूर्तियों पर कलाकारों के नाम नहीं हैं। हमें यह बिल्कुल नहीं मालूम कि इन्हें किसने बनाया है। क्योंकि यह सब आजकल की तरह नाम कमाने के विचार से नहीं किया गया था। व्यक्ति संयोग से बहुत बड़ा शिल्पी हो जाता था, महान् चित्रकार होता था, महान् सिद्ध होता था और बस इतना ही।

लोग भूलने न पाएं इस दृष्टि से हर एक चीज पर अपना नाम लिखने का, अखबारों में जोर-शोर से घोषणा करने का सवाल ही न उठता था। उन दिनों कलाकार इसकी परवाह किए बिना कि उसका नाम अगली पीढ़ियों को याद रहेगा या नहीं जो करना होता था, करता था। हर एक चीज किसी उच्चतर सौन्दर्य को अभिव्यक्त करने की अभीप्सा की प्रवृत्ति से की जाती थी और सबसे बढ़कर इस विचार से कि जिस देवता का आह्वान किया जा रहा है उसे उचित आवास दिया जाए। मध्ययुगीन गिरजाघरों में भी यही बात थी और मुझे नहीं लगता कि वहां भी कलाकारों के नाम बचे हैं। अगर हैं भी तो बिल्कुल अपवाद स्वरूप और अचानक। जबकि आज एक छोटा-सा चित्र-फलक भी ऐसा नहीं मिलता—चाहे उस पर चित्र हों या धब्बे—जिस पर कलाकार के हस्ताक्षर तुम्हें यह न बताएंगे कि फलाने महाशय ने यह बनाया है।

श्रीमद्भगवद्गीता—जानते हो, गीता में, श्रीकृष्ण पथ-प्रदर्शक और आंतरिक प्रभु हैं, और तुम्हें अपने आपको पूरी तरह उनके हाथों में दे देना चाहिए, पूर्ण समर्पण करना चाहिए।

गीता अमर आत्मा की सुदृढ़ अटलता की माँग करती है।

जब आत्मा अमरता के प्रति, सचेतन के प्रति सचेतन हो तो वह शक्ति से बनी अटलता बन जाती है।

चूंकि भगवान् ने अपने आपको जड़-पदार्थ में दे दिया है और जड़ को भागवत् चेतना के प्रति सचेतन करने के लिए उसमें अपने आपको बिखेर दिया है, इसलिए जड़ भगवान् के प्रति यंत्रवत् समर्पित होने के लिए बाधित है। यह एक पारस्परिक यज्ञ है।

और गीता का महान् रहस्य यही है। जड़ के हृदय में भगवत् उपस्थिति का स्वीकरण। इसीलिए जड़ को यंत्रवत्, यहां तक कि अचेतन रूप से, अपने आपको भगवान् के प्रति समर्पित कर देना चाहिए.... वह यह चाहे या न चाहे, होता यही है।

केवल जब यह समर्पण अचेतन रूप से किया जाता है तो तुम्हें यज्ञ का आनन्द नहीं मिलता है, जो कि परमानन्द है।

श्री अरविन्द मानते हैं कि भगवद्गीता का संदेश उस महान् आध्यात्मिक आंदोलन का आधार है, जो मानव जाति को अपनी मुक्ति की ओर ले जाता रहा है, अधिकाधिक ले जाएगा। यानी, मिथ्यात्व और अज्ञान से मुक्ति की ओर, सत्य की ओर।

प्रकट होने के समय से ही भगवद्गीता का बहुत बड़ा आध्यात्मिक प्रभाव रहा है। लेकिन श्री अरविन्द ने जो नया अर्थ लगाया है उसके बाद उसका प्रभाव और भी बढ़ गया है और निर्णयात्मक बन गया है।

गीता का संदेश एक महान् आध्यात्मिक आंदोलन का आधार है, जिसने मानव जाति को मुक्ति का मार्ग दिखलाया है और जो मुक्ति अर्थात् मिथ्या और अज्ञान से मुक्ति एवं सत्य की ओर ले जाएगी।

राधा चेतना—कृष्ण वह दिव्य पुरुष हैं जिनको श्री अरविन्द वंशी बजैया, अर्थात् अन्तर्यामी विश्वव्यापी भगवान् कहते हैं, जो परम आकर्षण शक्ति है। और चैत्य व्यक्तित्व, यहां जिसे राधा कहा गया है, वंशी बजैया की पुकार का प्रत्युत्तर देता है....।

इस चेतना में प्रत्येक चीज को सतत आनन्द में परिवर्तित कर देने की सामर्थ्य होती है।

काली—काली, विश्व माता का अत्यधिक शक्तिशाली पक्ष है। इसके द्वारा सृष्ट शक्ति सभी देवताओं की शक्ति से अधिक महान् है। अतएव काली से युक्त होने का अर्थ है सभी देवताओं की शक्ति से अधिक विस्तृत, पूर्ण और शक्तिशाली होना।

भक्ति—भक्ति वह कुंजी है जो मुक्ति का द्वार खोल देती है।

कर्म—हम कर्म करें, मानों प्रार्थना कर रहे हैं। क्योंकि कर्म ही भगवान् के लिए शरीर की सबसे अच्छी पूजा है।

रंगभेद—सौन्दर्य-बोध की दृष्टि से मैं कह सकती हूं....गेहुआँ रंग सबसे ज्यादा अच्छा है। लेकिन यह सोचना कि कोई रंग के कारण ही अच्छा या बुरा है, एकदम वाहियात और मूर्खतापूर्ण बात है। अफ्रीका का नीग्रो सोचता है कि उसका रंग सबसे सुन्दर है। जापानी सोचते हैं कि उनके रंग की प्रजा ही अन्य रंगों से श्रेष्ठ है। रंगभेद बहुत निकृष्ट चीज है। चेतना की बहुत ही निचली अवस्था की निशानी है।....एक ऐसी चेतना की जो अभी-अभी निश्चेतना से निकल रही है। वह एक विचार नहीं है, एक भावना नहीं है, वह कुछ ऐसी चीज है जो इनसे भी नीचे है। जब तुम रंगभेद की दृष्टि से विचार करते हो तो तुम्हारा चैत्य पुरुष तुम्हारी मूर्खता पर हँसता है। वह जानता है कि उसने गोरे, गेहुएं, पीले, लाल, काले, हर तरह के शरीरों में वास किया है। जब तुम्हारे अन्दर इस तरह की भेद भावना उठे तो इसे अपनी चेतना के सामने लाओ और देखो वह गायब हो जाएगी।

गरीबी—एक दिन ऐसा आएगा जब न कोई गरीब, न ही संसार में कोई दु:खी रहेगा। यह श्री अरविन्द की शिक्षा को समझने वालों के लिए बिल्कुल

निश्चित है। हम एक ऐसा स्थान बनाना चाहते हैं जहां ऐसा हो सके, इसीलिए हम अरोविल (उषानगरी) की स्थापना करना चाहते हैं।

गरीबों की सहायता करना अच्छा है, बशर्ते कि यह दान का कार्य, दिखावा न हो। किन्तु दु:ख और कष्ट का इलाज करने की चेष्टा से कहीं अधिक बड़ा कार्य है कि पृथ्वी पर कोई गरीब ही न रहे।

समाजवाद—अन्य राजनीतिक वादों के समान ही समाजवाद भी भूतकाल की वस्तु है और यदि हम सत्य की सेवा करना चाहते हैं तो हमें इसे पीछे छोड़ देना होगा।

राजनीति—सिद्धान्त रूप से हमने कहा है कि राजनीति से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। और यह सच है कि इस प्रचलित राजनीति से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। पर यह भी एकदम स्पष्ट है कि यदि राजनीति को इसकी सच्ची भावना से लिया जाए, अर्थात् इसे मानव समुदायों के संगठन, शासन के ब्योरे, सामूहिक जीवन की व्यवस्था और दूसरे समुदायों (अर्थात् दूसरे राष्ट्रों और देशों) के साथ सम्बन्ध के रूप में लिया जाए तो अवश्य ही इसे अतिमानसिक रूपान्तर के अन्तर्गत होना होगा। क्योंकि जब तक राष्ट्रीय जीवन और राष्ट्रों का सम्बन्ध वैसा ही बना रहेगा जैसा अब है, तब तक पृथ्वी पर अतिमानसिक जीवन बिताना असम्भव है। इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि यह परिवर्तन हो। यह बहुत जरूरी है कि इस पर भी ध्यान दिया जाए। लोग चीजों का, बस, राजनीतिक आवश्यकताओं के लिए उपयोग कर लेते हैं, लेकिन यह बिल्कुल रोचक नहीं......।

श्री अरविन्द के विषय में—श्री अरविन्द राजनीति से अलग हो गए थे और उनके आश्रम के महत्त्वपूर्ण नियमों में एक यह है कि सब प्रकार की राजनीति से अलग रहा जाए। यह बात नहीं है कि श्री अरविन्द का संसार की गतिविधियों में रस नहीं था, बल्कि इसलिए कि आजकल राजनीति एक बहुत ही निम्न कोटि की और भद्दी चीज हो गई है, जो पूरी मिथ्यात्व, चालाकी, अन्याय, शक्ति के दुरुपयोग आदि से भरी है। राजनीति में भाग लेने के लिए कपट, धोखेबाजी और बेतहाशा महत्त्वाकांक्षा पैदा करने की जरूरत है।

हमारे योग का आधार है—सचाई, ईमानदारी, अहंकार का निषेध, भागवत् कार्य के लिए नि:स्वार्थ आत्मदान, चरित्र की उदात्तता और ऋजुता। जो लोग इन आधारभूत गुणों को अपने जीवन में नहीं लाते वे श्री अरविन्द के शिष्य नहीं हैं। इस आश्रम में उनके लिए स्थान नहीं है। इसलिए मैं आश्रम पर किए गए उन मूर्खतापूर्ण और निराधार आक्षेपों का उत्तर देने से इनकार करती हूं जो कि विकृत भावना और बुरे इरादे से किये जाते हैं।

श्री अरविन्द हमेशा अपनी मातृभूमि से प्रगाढ़ प्रेम रखते थे। लेकिन वे चाहते थे कि वह महान्, उदात्त, पवित्र हो और संसार में अपने महान् लक्ष्य के अनुरूप हो। उन्हें यह स्वीकार न था कि वह गन्दे, अधम, अपरिष्कृत, अन्धे, स्वार्थपूर्ण और अज्ञान भरे पूर्वाग्रहों के स्तर पर उतरे। इसलिए हम उनकी इच्छाओं के साथ-साथ चलते हुए सत्य, प्रगति और मानव रूपान्तर की ध्वजा ऊंची उठाते हैं....उन सबकी परवाह न करते हुए जो अज्ञान, मूढ़ता, ईर्ष्या और दुर्भावना के कारण गंदा करना या कीचड़ में घसीटना चाहते हैं....उसे ऊंचे से ऊंचा फहराते हैं ताकि जिन्हें उससे प्रेम हो, वे उसे देख सकें और उसके चारों ओर इकट्ठे हो सकें।'

नेतृत्व—अपने आपको भूल जाना सच्चा नेता बनने की एक आवश्यक शर्त है.... अपना कोई स्वार्थपूर्ण हित न रखना, अपने लिए कुछ न चाहना बल्कि अपने पर निर्भर के हित को, समग्र के हित को, ध्यान में रखना। इसी ध्येय को सामने रखकर कार्य करना और अपने कार्य से किसी प्रकार का वैयक्तिक लाभ न चाहना।

इस प्रकार एक छोटे दल का नेता एक बहुत बड़े दल का उत्तम नेता बन सकता है और एक सामूहिक भूमिका के लिए तैयार हो सकता है।

स्वतंत्रता—सच्ची स्वतंत्रता ऊपर की ओर उठती हुई गति है, जो निचली सहज प्रवृत्तियों के आगे नहीं झुकती। सच्ची स्वतंत्रता एक दिव्य अभिव्यक्ति है।

हम भारत के लिए सच्ची स्वतंत्रता चाहते हैं ताकि वह जगत् के आगे, मानव जाति को, जो बनना चाहिए उसका ठीक उदाहरण रख सके और पथ-प्रदर्शक बन सके।

शिक्षा—किसी भी देश में बच्चों को जो सबसे अच्छी शिक्षा दी जा सकती है, वह यह है उन्हें यह दिखाया जाए कि उनके देश का सच्चा स्वरूप और निजी विशेषताएं क्या हैं। जगत् में उनके राष्ट्र को कौन-सा कर्तव्य पूरा करना है और पार्थिव सामंजस्य में उसका सच्चा स्थान क्या है। उसमें दूसरे राष्ट्रों की भूमिका का विस्तृत ज्ञान भी जोड़ देना चाहिए, लेकिन नकल के भाव के बिना और अपने देश की प्रतिभा को आँखों से ओझल किए बिना।

देश सेवा का सर्वोत्तम तरीका चेतना की अभिवृद्धि और उदात्तीकरण है।

मानव को, ज्यों ही वह सोचने योग्य हो जाए, यह शिक्षा देनी होगी कि वह शुद्ध बुद्धि की आज्ञा का पालन करे और प्रवृत्तियों की गुलामी से इनकार कर दे।

शिक्षा का उद्देश्य आत्म-सत्ता का भौतिक जगत् पर उचित अधिकार हो, विकसित और व्यावहारिक...।

शारीरिक प्रशिक्षण—जो लोग शारीरिक प्रशिक्षण की प्रवृत्तियों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं, वे पूर्ण योग के रास्ते पर एक पग भी न चल सकेंगे, जब

तक कि पहले इस घृणा से छुटकारा नहीं पा लेते। जो शरीर तुम पर शासन करता है, वह शत्रु है, यह एक अव्यवस्था है, जिसे तुम स्वीकार नहीं कर सकते। मन की आलोकित संकल्प शक्ति का ही शरीर पर शासन होना चाहिए। यह नहीं कि शरीर मन पर अपने नियम लागू करे।

ध्यान में निमग्न रहना और अपनी तथाकथित महानता की ऊंचाई से भौतिक वस्तुओं को देखना बड़ा सुहावना है, परन्तु जो अपने घर का स्वामी नहीं वह दास ही है।

भारत उदाहरण उपस्थित करे—देखो, भारत को इसी विचार ने नष्ट-भ्रष्ट किया कि उच्चतर शिक्षा उच्चतर चीजों से ही व्यवहार करती है और निम्न दुनियावी वस्तुओं में इसकी रुचि नहीं तथा वह इन्हें नहीं समझती। इसी विचार ने भारत को नष्ट किया अतः इसे पूर्णतया उन्मूलित करना होगा।

प्रतिस्पर्धा, व्यावसायिकता, धोखेबाजी और प्रतिद्वन्द्विता के बजाय यदि देश सत्य के अनुसार जीवन में आचरण करने का उदाहरण प्रस्तुत कर सके तो यह अपने लक्ष्य को साधित कर सकेगा।

यदि कोई देश इस कार्य को कर सकता है तो भारत ही कर सकता है।

यदि एक देश अपना उदाहरण प्रस्तुत करे, सत्य के अनुसार जीये, सम्पूर्ण सचाई और खुलेपन के साथ जीये, सबके साथ मित्रता और परस्पर में सहायक होने की भावना रखे तो वह जगत् को दिखा सकता है कि जीवन सभी तरह से समृद्ध और सुखमय बन सकता है। यह सामाजिक, आर्थिक सभी समस्याओं का प्रतिस्पर्द्धा की पद्धति से अधिक अच्छी तरह समाधान कर सकता है।

यह भारत का योगदान होना चाहिए। जगद्गुरु होने के नाते भारत को अपने उदाहरण से अन्यों को शिक्षा देनी चाहिए।

आह्वान तरुणाई को—तरुणाई का अर्थ है भविष्य में निवास करना। तरुणाई का अर्थ है कि तुम जो हो, उसे छोड़ने के लिए प्रस्तुत रहना और जो बनना है वह बन जाना। तरुणाई का अर्थ है कभी स्वीकार न करना कि अब उन्नति असम्भव है।

तुम तो तरुण हो, तुम्हीं देश की आशा हो। अपने को तैयार करो ताकि तुम इस आशा और विश्वास के योग्य बन सको।

अपने तुच्छ अहंकारपूर्ण व्यक्तित्व के परे उठ जाओ और भारतमाता की सुयोग्य संतान बनो। अपने कर्तव्यों को ईमानदारी और सहजता के साथ पूरा करो और भागवत् कृपा पर अडिग विश्वास रखकर सर्वदा प्रसन्न और निश्चिंत बने रहो।

काव्य-कानन के चिर वसन्त की अमर कोकिला सरोजिनी नायडू

जब तक जीवित हूं
आत्मा की यह अभिलाषा
मैं कविता कर सकूं,
एक शाश्वत चिर सुन्दर,
एक सनातन अमर पंक्ति
जो गूंजे युग-युग।
क्या आत्मा की यह चिर
पिपासा पूरी होगी?

इन अमर पंक्तियों की गायिका भारत कोकिला सरोजिनी नायडू सचमुच भारत के काव्योद्यान की मधुवर्षिणी कोकिला है। कल ही हमने वसन्तोत्सव मनाया है। आधुनिक काल में भारतीय साहित्य को वासन्ती मधुरिमा एवं सौन्दर्य का दान देने वाली इस प्रफुल्ल सरोजिनी का प्राकट्य भी 13 फरवरी, 1879 के दिन दक्षिण भारत के हैदराबाद नगर में हुआ।

सरोजिनीजी की अपनी ही एक अमर पंक्ति है—'माता का जो हाथ झूलने को झुलाता है वह सारे विश्व को हिला सकता है।' इस शाश्वत उक्ति में स्वयं उन्हीं के शैशव एवं बाल्यकाल के विकास का रहस्य छिपा हुआ है। सरोजिनी के पिता श्री अघोरनाथ चट्टोपाध्याय पूर्वीय बंगाल के एक ब्राह्मण वंश में उत्पन्न एक उच्च विद्वान थे। वे एडिनबरा से डाक्टर ऑफ साइंस की उपाधि प्राप्त कर जर्मनी में भी विद्याध्ययन कर चुके थे। सरस्वती के उस वरद पुत्र का सारा समय विद्या विलास तथा अध्ययन, स्वाध्याय में बीतता था। कवि का हृदय तो उन्हें भी मिला था किन्तु उनकी पत्नी वरदा सुन्दरी बांग्ला भाषा की एक उच्च कोटि की कवयित्री थी। सरोजिनी के हृदय का काव्यानन्दोन्मेष मुख्यतया उनकी माता श्रीमती वरदा सुन्दरी की काव्य-प्रतिभा का ही वरदान था।

बहुत छोटी आयु में ही सरोजिनी कविता करने लगी। वे स्वयं लिखती हैं, 'एक दिन जब मेरी अवस्था 11 वर्ष की थी, मैं बीजगणित के एक प्रश्न पर बैठी खीझ रही थी। प्रश्न ठीक निकलता नहीं था। उसके बदले एक पूरी कविता मेरे मन में आ गई और मैंने उसे लिख डाला।' इस तेजस्वी बालिका ने 12 वर्ष की आयु में मैट्रिक परीक्षा पास कर ली। 13 वर्ष की अवस्था में सरोजिनी ने अंग्रेजी के कवि स्काट की कविता 'Lady of the lake' से मिलती-जुलती एक 1300 पंक्तियों वाली कविता केवल 6 दिन में ही लिख डाली। उन्हीं दिनों बीमारी के बावजूद भी उस बाल कवयित्री ने 2000 पंक्तियों का एक काव्य नाटक लिख डाला तथा दो-एक वर्ष पश्चात् एक उपन्यास भी लिख डाला।

उच्च शिक्षा प्राप्त करने के हेतु से जब वह 16 वर्ष की नन्ही सरोजिनी इंग्लैण्ड पहुँची तो उसने वहाँ के लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार एडमन्ड गास को अपनी रचनायें दिखाईं। किन्तु एडमन्ड गास के निम्नलिखित उत्तर ने सरोजिनी की जीवनधारा और भावधारा, दोनों को बदल डाला। एडमन्ड गास ने लिखा—'झूठे अंग्रेजी भावों में डूबी हुई अपनी सब रचनाओं को रद्दी की टोकरी में डाल दो। एक विचारशील भारतीय युवती से जिसने हमारी भाषा ही नहीं हमारे छन्दशास्त्र का भी ज्ञान प्राप्त कर लिया हो, हम उन्हीं पाश्चात्य भावों तथा कल्पनाओं की आशा नहीं रखते। हम उससे प्राच्य भावों एवं कल्पनाओं का परिचय प्राप्त करना चाहते हैं, धर्म के उन अनादि मन्तव्यों का दिग्दर्शन करना चाहते हैं, जिनका प्राच्य देशों में उसी समय अनुभव हो चुका था जब पाश्चात्यों को स्वयं अपना ही ज्ञान नहीं था। तुम अपनी कविता में अंग्रेजी पक्षियों रोविन और लता का वर्णन छोड़ दो। इसी प्रकार हमारे फूलों, फलों, वृक्षों तथा दृश्यों और भू-देशों के वर्णन का भी सदा के लिए परित्याग कर दो, हमारे गिरजाघरों के घंटों को भूल जाओ। अपने देश और अपने प्रान्त की नदियों, पर्वतों, मन्दिरों, उद्यानों, वनस्पतियों तथा निवासियों का वर्णन करो—इनके सहज तथा प्राकृतिक भाव व्यक्त करो। भारतीयता धारण करो। पाश्चात्य कलाकारों की अनुकृति करने की चेष्टा में अपने व्यक्तित्व का नाश न कर डालो।'

ये शब्द किसी भी भावुक हृदय को परिवर्तित करने में समर्थ थे। श्री गास की इस सामयिक एवं हृदयस्पर्शी चेतावनी के प्रभाव से विदेशीयता की नकल करने वाली सरोजिनी अब अपने स्वदेश एवं स्वातंत्र्य की सुवास से आप्लावित हो उठी। अपने स्वदेश रूपी सुधावर्षी चन्द्रमा की रजत किरणों से यह जीवन्त सरोजिनी खिल उठी तथा उसके पराग से दिग्दिगन्त सुवासित हो उठा।

अब सरोजिनी ने आत्म गौरव के गीत गाते हुए स्वर्ण देहली में प्रवेश किया। स्वर्ण देहली कविता संग्रह सन् 1905 को प्रकाशित तथा वह स्वदेश भक्ति की प्रेरणा देने वाले मि. एडमन्ड गास को ही समर्पित किया गया।

मातृभूमि की वन्दना में राष्ट्र-कोकिला गा उठी—

अन्धकार से ग्रस्त,
रुदन करती मानवता
कहती है उसको
तेरा नेतृत्व चाहिए
हे माता, उठ भारतमाता,
अब तक कोई।
मां! भावी तेरी पूजा
अर्चा करने को आकुल।

भारत के कोटि-कोटि सुतों का प्रतिनिधित्व करते हुए सरोजिनी माँ को आश्वासन देती है—

हिन्दू के पूजा फूलों से
तव किरीट है।
पारसी की पावन,
अग्नि है तेरी ज्योति
तेरी रक्षा हित मचली
तलवार यवन की।
ईसाई की सेवा तव
चरणों में अर्पित।

प्रेम एवं यौवन की इस कोकिल कण्ठी कवयित्री ने अपने यौवन को पुकार कर कहा—

हे मेरे यौवन, प्रिय संगी यौवन मेरे,
क्या तू चला जाएगा,
मुझको यहीं छोड़कर।
दीर्घकाल के साथी मेरे एक साथ हम
देश और देशान्तर में घूमे-खेले हैं
मिल कर हमने उषा का
मृदु पान किया है!
और हैं फूल एक आकाश तले मिल
चपल मित्र! मैं कल तक
लिखती भावी सपने

अब अतीत की भंगुर
सुख सपने देखूंगी।
स्थिरता का दे वचन
पुनः ओ जाने वाले,
जा तू यौवन।
झूठी प्रेम प्रतिज्ञा वाले
पर जाने से पूर्व ही
मेरे नेत्र पुटों को
एक बार ले चूम अरे
चिरसंगी यौवन!

सरोजिनी के हृदयकोष में गुम्फित काव्य पराग अपनी सम्पूर्णता में फूट कर बाहर निकलने के लिये व्याकुल हैं—

वास्तव में मैं कवि नहीं हूं!
मुझ में है कल्पना
और है अभिलाषा।
किन्तु नहीं उद्गार
कि कविता लिख पाऊं।
एक भी कविता
यदि सत्यं शिवं सुन्दरं हो
तो फिर सुख का
महामौन धारण कर लूं।।

शान्ति की प्रबल कामना में यह कोकिला भी ब्रह्मानन्द की मधु-मधुर आम्रामृत मंजरी के लिए पुकार उठती है—

अन्त स्थान है दूर
और अस्पष्ट भी
किन्तु निरन्तर अपनी
ओर बुला रहा।
सारे जीवन के दिन
रात क्षणिक भर हैं
कब पाएंगे हम
निर्वाण की शान्ति सुधा?

जीवन तथा मृत्यु की लीला के रहस्य को बताने के लिए आकुल मानवात्मा की जिज्ञासा इस कला कोकिला की एक वेदना भरी कूक में फूट निकली है—

हे जीवन के दीप!
काल के होंठों ने
अकस्मात् निज श्वास से
तुझ को बुझा दिया।
जग न सकेगा पुनः
कभी क्या हे दीपक!
क्या मुझको रहना होगा
अन्धियारे में?
हे जीवन तरु,
काल के निर्दय पैरों ने
रौंद डाला है
सूखे रहेंगे पत्ते
अब क्या सदा अरे
क्या न पुनः फूटेंगे
पल्लव फूल नए?

सरोजिनी नायडू तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुर, दोनों बंगभूमि की उज्ज्वल सन्तानें, एक ही समय में साहित्य सर्जना कर रही थीं। रवि बाबू बांग्ला भाषा में तथा सरोजिनी आंग्ल भाषा में। भारत कोकिला के उपरोक्त पद्यांशों का जो पद्यानुवाद इन पंक्तियों के लेखक द्वारा बन पड़ा है सम्भवतः उसमें उस कमनीय कोकिला की रसवन्ती कला का आनन्द प्राप्त न हो सके, किन्तु उस भारत कोकिला के जन्म दिवस के उपलक्ष पर आज भारत की राष्ट्रभाषा के माध्यम से यहाँ तुच्छ भाव प्रसून ही अर्पित करते हुए मैं अपनी श्रद्धा प्रवण भावांजलि चढ़ाता हूँ।

14 फरवरी, 1959
दैनिक 'वीर प्रताप' जालन्धर में प्रकाशित

अनन्त शयनम् आयंगर

संस्कृत एवं संस्कृति, दोनों का परस्पर अन्योन्याश्रय संबंध है। संस्कृति राष्ट्र की आत्मा है और संस्कृत उस आत्मा को प्रकाशित करने वाली राष्ट्र की बोली है, भाषा है। भारतीय संस्कृति के सभी महान् एवं ऐतिहासिक अभिलेख संस्कृत तथा संस्कृत मूलवाली भारतीय भाषाओं में ही सुरक्षित है। अतः हमारी संस्कृति संस्कृत में ही बोलती है, संस्कृत में ही सुरक्षित है, संस्कृत के माध्यम से ही युगानुयुग परंपरा हम तक पहुंची है। संस्कृति जीवन के महानतम आदर्शों की संस्कार परंपरा है किन्तु यदि कोई पूछे कि वे आदर्श क्या हैं? तो बिना भाषा के माध्यम के उन आदर्शों का निर्वचन कोई नहीं कर सकता। भाव भाषा के माध्यम से यात्रा करते हैं और भारतीय संस्कृति देवभाषा संस्कृत के दिव्यरथ में बैठकर ही देशों-कालों एवं युगों की यात्रा करती हुई अभी तक अमर बनी हुई है।

स्वर्गीय श्री अनन्त शयनम् आयंगर, जिनका 19 मार्च, 1978 को 87 वर्ष की अवस्था में, दक्षिणापथ के सर्वप्रसिद्ध विष्णुतीर्थ तिरुपति में वैंकुठवास हुआ। वे आधुनिक भारत में संस्कृत एवं संस्कृति के एक अद्वितीय अनन्य उपासिका थी। उन्होंने संस्कृति के प्रकाश एवं संस्कृत वाड्मय के वैदुष्य को भारतीय सभ्यता की सरलता, सात्त्विकता एवं शालीनता के साथ ऐसा समन्वित कर लिया था कि उनका विष्णु तिलकमंडित मस्तक, कुरता धोती एवं उत्तरीय विभूषित वपु उनकी शतप्रतिशत भारतीय निष्ठा एवं स्वाभिमानपूर्ण व्यक्तित्व है। दानशीलता के भाव से प्रेरित होकर गरीबों की सहायता करना उनका अपमान करना है और जो उनके लिए मृत्यु से भी बुरा है। कारण, धनिकों को धन का अभिमान है और रूपवानों को अपने सौंदर्य का, कवियों के पास उनकी प्रतिभा है, परन्तु गरीब के पास केवल मान है। यदि समाज सेवा करना चाहते हो तो विनय भाव से करो। इसीसे तुम्हारी सेवा को दीन-दुःखी और मरते हुए लोग स्वीकार करेंगे। इसी के कारण गरीब तुम्हारे हाथ से वह जल ग्रहण करेंगे, जिससे उनके प्राणों की रक्षा की संभावना है।'

'यह वही भारतवर्ष है जो पहली शती के आरंभ में भी पूर्ण सभ्य था और संसार को उन उज्ज्वल स्त्री रत्नों को आदर्श स्वरूप अर्पण कर चुका था जो बुद्धि

और विद्या दोनों ही के ऊँचे शिखर पर पहुंची हुई थीं।....राष्ट्रीयता का निर्माण आप लोगों के हाथ में नहीं हम लोगों (स्त्रियों) के हाथ में है।

विद्यार्थियों की सभा में

'यदि मुझसे कहा जाय कि भाषा के संपूर्ण भंडार में से तुम एक ऐसा वाक्य चुनकर कहो जो तुम्हारे अंतरतम हृदय में भविष्यानुरूप से निगूढ हो और उसके बाद चुप हो जाओ, तो मैं यही कहूंगी—

'तुम्ही भविष्य की आशा हो।'

अहमदाबाद में एक छात्र-सम्मेलन में सभानेत्री के पद से आपने कहा था— 'मैं अपने जीवन में सर्वोच्च महिमा तथा सिद्धि इसी में समझूंगी कि मेरी समाधि के शिलालेख पर ये शब्द अंकित किए जायें-भारत की नई पीढ़ी से इसे प्रेम था, उसी पर इसको विश्वास था, उसी के साथ इसने काम किया और उसी के सहयोग से इसने स्वतंत्रता प्राप्त की।'

मद्रास में छात्रों को संबोधित करते हुए कहा

'तुमने महान् आदर्शों को पूर्वजों से थाती में पाया है। तुम पर बड़े-बड़े कर्तव्यों का भार है। तुम्हारा बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है। इससे प्रयोजन नहीं कि तुम क्या हो, कौन हो और क्या काम करते हो। गली में झाड़ू देने वाला भी देशभक्त हो सकता है। उसमें भी तुम एक ऐसा उत्तेजक भाव पा सकते हो, जिससे तुम्हारे मन को उच्च प्रेरणा प्राप्त हो सके।'

काव्य और जीवन

'मुझ से लोग बार-बार पूछते हैं कि तुम कल्पना के हाथी दांत के गुंबद से उतर कर बाजार में क्यों आ गई हो? तुमने कवि की वीणा और वंशी का परित्याग करके देश के स्वातंत्र्य युद्ध के लिए उत्तेजित करने वाला बिगुल क्यों धारण कर लिया है?' इसीलिए कि कवि का कर्तव्य उद्यान में, स्वप्न के मंदिर में एकान्त निवास करना नहीं है, उसे जनता के साथ रहना चाहिए, युद्ध की कठिनाइयों के बीच में रहना चाहिए।'

'क्या हम ऐसी नींव पर स्वराज्य खड़ा करना चाहते हैं जिसमें दरारें हो? जो स्वराज्य एकता की दृढ़ चट्टान पर आश्रित न रहे, प्रत्युत पृथक् जातीय विचार पर स्थित हो वह स्वराज्य बालू की नींव पर आश्रित समझना चाहिए।

किसी जाति का बल उनकी जनसंख्या पर आश्रित नहीं है प्रत्युत उस जाति के नैतिक बल पर आश्रित है। महात्मा गांधी के शरीर में एक बच्चे का भी बल न होगा, परन्तु उसने एक महान् शासन की जड़ हिला दी।

प्रवासी भारतीयों के लिए प्रेम (प्रयाग का भाषण)

'तुम लोग जो स्वराज्य के लिए आंदोलन कर रहे हो, तुम लोग जो देशभक्ति के स्वप्न देख रहे हो, यदि तुम समुद्र पार के रात्रि दिवस सुनाई देने वाले वेदना क्रंदन का प्रतिकार नहीं कर सकते, तो क्या तुम देश भक्त कहलाने योग्य हो? यह वेदना उन देश के भाइयों की है जिनकी दशा कुत्ते की दशा से अन्य नहीं, उन बहनों की है जिनके प्रति पशुतुल्य आचरण होता है। आज मैं अपने अंदर उस यातना का अनुभव कर रही हूँ जो वर्षों से वे बहनें सहन कर रही हैं, जिनको अब मृत्यु में ही शांति मिल सकती है। मैं उस अकथन लज्जा और ग्लानि का अनुभव कर रही हूँ जो कुली प्रथा से अभिन्न है।

1919 में इंडियन होमरूल लीग की ओर से इंग्लैण्ड गई।

जलियांवाला बाग दुर्घटना- उन्होंने इंग्लैण्ड में पंजाब के हत्याकाण्ड के संबंध में जो व्याख्यान दिए उनसे अंग्रेजी राजनैतिक दलों में सनसनी फैल गई। भारत सचिव मिस्टर मांटेग्यू से सरोजिनी नायडू की लिखा-पढ़ी होती रही।

1920 में गांधीजी को लिखा—

'मेरा स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। परन्तु पंजाब और खिलाफत के युगल प्रश्नों में संपूर्ण ध्यान दे रही हूँ और उन्हीं के लिए कार्य कर रही हूँ। किन्तु ऐसी जाति से जो बल में मद के चूर और अंधी हो रही हो, जिसमें जाति, धर्म वर्ण, संबंधी तीक्ष्णतर पक्षपात भरा है, जो भारतीय दशा, विचार और आकांक्षाओं का कुछ ध्यान नहीं रखती है। किसी प्रकार की आशा रखना व्यर्थ है। अंग्रेजी न्याय तथा सहानुभूति में मुझे जो विश्वास शेष था उसे पार्लियामेंट में होने वाले पंजाब संबंधी वाद-विवाद ने पूर्णतया नष्ट भ्रष्ट कर दिया। इस विवाद में हमारे मित्रों ने अज्ञान प्रदर्शित किया, हमारे शत्रुओं ने धृष्टता—दोनों का सम्मिलन हृदय को विदीर्ण करने वाली अवस्था उपस्थित करता है। मिस्टर मांटेग्यू फटी हुई ढफली सिद्ध हुए।'

जिनेवा में होने वाले अंतर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन में भाग लिया।

असहयोग के कार्यक्रम के अनुसार उन्होंने अपना 'केसरे हिन्द' पदक सरकार को लौटाते हुए पत्र लिखा—

कई वर्षों से एक असहाय जाति अनेकों प्रकार से अपमानित हो रही है, उसका घोर दमन हो रहा है, उसके प्रति जो प्रतिज्ञाएं की गई थी, वे भी भंग की जा रही हैं। इन दो बातों के अतिरिक्त दो बड़े पाप हुए हैं—एक तो मुसलमानों को दी हुई प्रतिज्ञा का अनादर और दूसरे पंजाब का हत्याकाण्ड। यह मेरे सम्मान और मानुषिक विचारों के प्रतिकूल है कि मैं इन अत्याचारों को देखकर भी चुप रह सकूं और उस सरकार से जिसने कि न्याय का तिरस्कार किया है सहमत हो सकूं।'

1924 ई. में पूर्वी अफ्रीका में दिए व्याख्यान में कहा—'आप लोग एक स्वर से सरकार से कह दें कि यद्यपि प्राकृतिक नियम से नदियां उलटी नहीं बहा करती तथापि हम लोग आपके निर्णयों की धारा को उलटी बहा देंगे। यद्यपि हम लोग दीन और दरिद्र हैं तथापि आप यह न समझें कि आप हमारे अधिकारों को छीनने के उद्देश्य में सफल हो सकेंगे।'

नमक सत्याग्रह
1931 में गोलमेज कान्फ्रेंस में
1 मार्च 1949 में सहसा हृदय रोग से मृत्यु।

हिन्दू होने का गर्व करो

आओ! हम सब अपने आचरण से संसार को यह दिखा दें कि संसार की कोई भाषा इससे महान् शब्द का आविष्कार नहीं कर पाई।

जितनी ही मैंने भूतकाल पर दृष्टि डाली है, यह गर्व मुझे उतना ही बढ़ता गया है। उसने मुझे साहसपूर्ण निष्ठा और शक्ति प्रदान की है। उसने मुझे धरती की धूल से उठा कर ऊपर खड़ा कर दिया। भगवत्कृपा से तुम भी उस गर्व से परिपूर्ण हो जाओ। कई अन्य गौरवशाली जातियां आयीं और चली गईं। किन्तु हम आज भी जीवित हैं और आज भी हमारे पुराण-ऋषि-मुनि वापस लौट आयें तो उन्हें आश्चर्य न होगा, उन्हें ऐसा नहीं लगेगा कि वे किसी नये देश में गये। आज भी वही प्राचीन विधान (वेद, उपनिषद् व गीता) विद्यमान हैं। आज भी वे हमारे प्रेरणा के स्रोत हैं।

—स्वामी विवेकानंद

× × ×

हिन्दुत्व ही वह अंकुरण भूमि है जिसमें भारत की जड़ें गहरी जमी हुई है तथा उससे उखाड़ देने पर वह वैसे ही अनिवार्यरूपेण मुरझाकर निष्प्राण हो जायेगा जैसे एक वृक्ष को उसके स्थान से उखाड़ देने पर वह मर जाता है।

—डॉ. एनीबेसेन्ट

संस्कार

यह मनुष्य एक अनन्त पथ का यात्री है। न जाने कितनी योनियों को पार करने के पश्चात् उसको यह मनुष्य योनि प्राप्त होती है और इस योनि में आ कर उसके सामने पूर्णता की प्राप्ति का लक्ष्य रखा जाता है। भारतीय दृष्टि में गर्भाधान संस्कार से ही मनुष्य को सुसंस्कृत करने की प्रक्रिया प्रारम्भ कर दी जाती है। संस्कार का अर्थ है पूर्ण करना, सजाना, शुद्ध करना, अलंकृत करना, पवित्र करना। इस प्रकार से मनुष्य योनि में आते ही, यह एक दायित्व हम सब पर आ जाता है कि उस जीव को किस प्रकार से पूर्णता की ओर ले जाया जाए।

संस्कार का तात्पर्य होता है शुद्ध करना। परन्तु मनुष्य के अन्दर पहले से जो वासनाएँ होती हैं उनको भी संस्कार कहा जाता है। और ये वासनाएँ शुभ-अशुभ और एक मध्यम रूप से कामना रूप से भी विद्यमान रहती हैं। इनको सुसंस्कृत करने के लिये दोषापनयन, हीनांगपूर्ति और अतिशय आदान की प्रक्रिया को अपनाया जाता है। कामना को या काम को हमारे शास्त्र के अन्दर दोष नहीं कहा है। धर्म के अविरुद्ध काम की पूर्ति हमारे शास्त्र के अनुसार वांछनीय मानी गयी है। परन्तु जो धर्म के विरुद्ध काम है, उसको हटाना संस्कार की प्रक्रिया के अन्तर्गत आता है, इसलिये प्रत्येक व्यक्ति के संस्कारों का अध्ययन करके और उसके अन्दर से मल को हटाना और उसके अन्दर हीनांग की पूर्ति करना और अतिशय को आदान करना—यह षोडस संस्कारों के द्वारा सम्पन्न किया जाता है। वस्तु का भी इसमें प्रयोग किया जाता है। वस्तु का भी चयन होता है, प्रक्रिया का भी चयन होता है, साथ में मनुष्य के संकल्प का भी प्रयोग करके चित्त के शुद्धिकरण की प्रक्रिया को अपनाया जाता है। इसके द्वारा अभ्युदय और निःश्रेयस, दोनों को सिद्ध किया जाता है। यहाँ तक कि अन्त्येष्टि संस्कार के समय भी जो जीव इस शरीर को छोड़ कर निकलता है, शरीर-संस्कार द्वारा उसका संस्कार किया जाता है। उस कपालभेदन की क्रिया के द्वारा जो बाहर निकल चुका जीव है उसको भी प्रभावित किया जाता है। इस प्रकार संस्कृतिकरण की प्रक्रिया मनुष्य को दिव्यत्व की तरफ ले जाने की प्रक्रिया है।

साभार 'जीवन रहस्य'

पर्यावरण

वेदान्त दर्शन के अनुसार एक परम सत्य ही जीव और जगत् के रूप में अपने-आप को प्रकट करता है। पर्यावरण के सन्दर्भ में हम सर्वप्रथम इस पर्यावरण को चिन्मय पर्यावरण की तरह समझ सकते हैं। यही चिन्मय पर्यावरण अपने-आप को चिद् जड़ात्मक रूप से भी प्रकट करता है। यह पर्यावरण भौतिक, जलीय, आग्नेय, वायवीय और आकाशीय रूप से भी समझा जा सकता हैं। इसको हम दो प्रकार से समझ सकते हैं। परि + आ + वरण। 'परि' का मतलब पूरी तरह से, 'आ' का मतलब चारों तरफ से जो हमारा वरण करता है उसको पर्यावरण कहते हैं। एक आच्छादन को भी पर्यावरण कहते हैं। यह पर्यावरण निर्जीव पर्यावरण और सजीव पर्यावरण, दो प्रकार से विभाजित समझा जा सकता है। सजीव पर्यावरण, मानवीय पर्यावरण और अन्य प्राणियों व वनस्पतियों को लेकर भी समझा जा सकता है।

सामाजिक पर्यावरण, आर्थिक पर्यावरण, साहित्यिक, सांस्कृतिक पर्यावरण, इस प्रकार से मनुष्य के लिये जो कुछ भी इस से इतर, परे और ऊपर है वह उसके पर्यावरण का अंग है। यदि मनुष्य को केवल शरीर मात्र समझा जाये तब उससे इतर जो कुछ भी उसका बाह्य है, उसको पर्यावरण के अन्तर्गत समझ सकते हैं। परन्तु, मनुष्य को एक जीव समझा जाये तो उसका शरीर भी उसके लिये एक पर्यावरण सिद्ध होता है। पर्यावरण के साथ हमारा सम्बन्ध शरीर की दृष्टि से, जीव की दृष्टि से एवं आत्मा की दृष्टि से बदलता जाता है। शरीर की दृष्टि से हम पर्यावरण के साथ में स्वामी और सेवक का सम्बन्ध रखते हैं। जीव की दृष्टि से एक अभिभावक और उसके द्वारा पालित का सम्बन्ध रखते हैं। आत्मा की दृष्टि से हम उसके साथ तादात्म्य का सम्बन्ध रखते हैं। मनुष्य सृष्टि का केन्द्र है। उसका पर्यावरण के साथ सम्बन्ध अत्यन्त ही घनिष्ठ है। वह पर्यावरण के प्रति एक दाय के साथ में, एक कर्तव्य के साथ में, एक ऋण के साथ में जुड़ा हुआ है। इसलिये पर्यावरण के प्रति इसका व्यवहार यज्ञमय होना चाहिये और इसलिये वह पर्यावरण को अपनी कामना-पूर्ति के लिये भी काम में लेता है तो वह यज्ञ की दृष्टि से ही कामना की पूर्ति करे। पहले वह पर्यावरण का पोषण करे और उसके पश्चात्

उसको पर्यावरण का दोहन करने का अधिकार है। यदि वह पर्यावरण के प्रति शोषण की दृष्टि रखता है, कामना-पूर्ति के लिये उस पर प्रहार करता है अथवा अपने अज्ञान के कारण उसका प्रदूषण करता है तो यह पर्यावरण उसको दण्ड भी देता है। क्योंकि पर्यावरण एक विराट् चेतना है, उसकी एक भावना है, उसका एक चिन्तन है, उसका एक तात्पर्य है, इसलिये इन सब बातों को ध्यान में रखकर मनुष्य उसके साथ यज्ञमय व्यवहार करता हुआ, अपनी कामना की पूर्ति करे और साथ में यह जो पंचयज्ञ रूप से पर्यावरण के प्रति हमारा कर्तव्य है, उसको वह पूरा करे। देवयज्ञ, ऋषियज्ञ, पितृयज्ञ, मनुष्ययज्ञ, भूतयज्ञ के द्वारा मनुष्य अपने पर्यावरण के साथ, शनैः-शनैः करके तादात्म्य को स्थापित कर सकता है। ऐसा करने से जो पर्यावरण की आत्मा है वही मनुष्य की आत्मा बन जाती है।

परम पूज्य गुरुदेव स्वामी संवित् सोमगिरिजी की
पुस्तक 'जीवन रहस्य' से साभार

ब्रिटिश इतिहासकार डॉ. अरनाल्ड टोयनबी ने सम्पूर्ण मानव जाति की यात्रा कथा का सर्वेक्षण करने के बाद यह लिखा—'यह बिल्कुल स्पष्ट होता जा रहा है कि उस अध्याय का अन्त भारतीय उपसंहार से ही होगा जिसका प्रारंभ पाश्चात्य है। यदि मानव जाति का आत्म विनाश में अन्त न होना हो तो यहाँ हमारे पास वह दृष्टिकोण और भावना है जिससे मानव जाति के लिए एक परिवार के रूप में विकास की सम्भावना है और इस आणविक युग में सर्वनाश का यह एकमात्र विकल्प है।

यहाँ टोयनबी इन शब्दों में भारतीय प्राचीन ऋषियों द्वारा प्रतिपादित 'वसुधैव-कुटुम्बकम्' अर्थात् समस्त विश्व एक परिवार है, के आदर्श का प्रतिनिधित्व कर रहा है।

मन

यह मन ही बन्धन का कारण है और यह मन ही मुक्ति का कारण है। हम शान्ति क्यों चाहते हैं? शान्ति चाहने वाला कौन है? मन किसको कहते हैं? इनको समझे बिना मन की शान्ति प्राप्त करना असम्भव है। हमारे यहाँ सूक्ष्म शरीर के अन्तर्गत कर्मेन्द्रियाँ, ज्ञानेन्द्रियाँ, प्राण और अन्तःकरण आते हैं। अन्तःकरण में मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार सम्मिलित हैं।

यह मन अनेक प्रकार की वासनाओं से युक्त होता है। जब तक मन के अन्दर मलिन वासनाएँ रहती हैं तब तक मन अशान्त रहेगा, चंचल रहेगा। इसलिये मन की मलिनता को हटाने के लिये सदाचार (कर्म) करना आवश्यक है और सदाचार करने के लिये एक निश्चय आवश्यक है। निश्चय करने वाला तत्त्व बुद्धि है। इसलिये जब तक बुद्धि के सामने एक लक्ष्य नहीं आयेगा, तब तक मन को अंकुश में रखना सम्भव नहीं होगा। बुद्धि के परे भी आत्मतत्त्व है। इसलिये आत्मतत्त्व के द्वारा, जो कि मन और बुद्धि से भी श्रेष्ठ है, मन को एक सृजनात्मक अभ्यास और वैराग्य के प्रयोग द्वारा शनैः-शनैः करके उन्नत विषयों की तरफ ले जाएँ तो मन धीरे-धीरे निर्मल होता हुआ आत्म-चैतन्य को प्रतिबिम्बित करने लगेगा। शान्ति आत्मा का स्थायी भाव है, स्थायी रूप है और आत्मा सर्वव्यापक है। सृष्टि में सर्वत्र एक शान्ति झर रही है, झिलमिला रही है, हँस रही है, खिल रही है, खिलखिला रही है। मन की चंचलता के कारण उसका अनुभव हो नहीं पाता। बुद्धि के आत्मोन्मुखी होने पर मन शान्त होने लगेगा।

मन का निरीक्षण करके देखना पड़ेगा, कैसे यह जाग्रत् में व्यवहार करता है, कैसे यह इन्द्रियों से जुड़ा हुआ रहता है, कैसे यह स्वप्न में एक सृष्टि की रचना करता है और कैसे गहरी नींद में जाकर एक अव्यक्त में लीन हो जाता है। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और बचपन से लेकर आज तक मन किस प्रकार से बीज की तरह अँकुराता है, धीरे-धीरे बढ़ता है, फैलता है और धीरे-धीरे संकुचित होने लगता है, पुनः बीज बनने लगता है। मन के इस स्वभाव को समझ करके सत्कर्म के द्वारा और ईश्वर की आराधना के द्वारा, इसको शान्त किया जा सकता है। गहरी प्रशान्ति के अन्दर इसको ले जाया जा सकता है। मन का शान्त रहना उसका स्वयं का स्वभाव है। अशान्त रहना मन के अन्दर आगन्तुक भाव है। साभार 'जीवन रहस्य'

प्रारब्ध और पुरुषार्थ

यह जीव अनादिकाल से चला आ रहा है। न जाने इसने कितनी बार मनुष्य योनि को प्राप्त किया। एकमात्र मनुष्य योनि में कर्म करने की स्वतन्त्रता है और जब-जब भी मनुष्य कर्म करता है तो उसका फल उत्पन्न होता है। वह फल संचित होता-होता एक अमाप ढेरी बना हुआ है। उस संचित ढेरी में से कुछ कर्म को ले कर यह मनुष्य का शरीर प्राप्त होता है। इसको प्रारब्ध-कर्म कहते हैं। गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि संस्कार तक प्रारब्ध-कर्म अपना कार्य करता रहता है। प्रारब्ध मनुष्य को एक माता-पिता देता है, एक परिस्थिति देता है और वह लगातार अपना काम करता रहता है। फल की अनुभूति की दृष्टि से वह प्रारब्ध प्रत्येक परिस्थिति को लाता है और अन्तःकरण में उस परिस्थिति से जुड़ने के लिये एक वृत्ति को उत्पन्न करता है और उसके पश्चात् मनुष्य को सुख व दुःख की अनुभूति होती है। परन्तु मनुष्य की योनि क्योंकि एक कर्म-स्वातन्त्र्य की योनि है, इसलिये मनुष्य नूतन कर्म करता है। इसलिये शास्त्र उसके सामने पुरुषार्थ रखता है—धर्म-पुरुषार्थ, अर्थ-पुरुषार्थ, काम-पुरुषार्थ और मोक्ष-पुरुषार्थ। इनमें मोक्ष परम-पुरुषार्थ है। तो एक प्रकार से ये बहुआयामी शक्तियाँ—एक प्रारब्ध की शक्ति और एक पुरुषार्थ की शक्ति एक साथ कार्य करती रहती हैं। इनमें कौन प्रबल है, इसके बारे में कुछ कह नहीं सकते। कभी प्रारब्ध प्रबल होता है, कभी पुरुषार्थ प्रबल हो जाता है। पर मनुष्य के सामने एक दिव्य जीवन, एक दिव्य लक्ष्य, एक परम पुरुषार्थ रहता है, इसलिये इस परम पुरुषार्थ के समक्ष प्रारब्ध के द्वारा जो प्रभाव डाला जाता है उसको वह निरन्तर अपनाता रहता है।

प्रारब्ध का प्रभाव बाह्य क्षेत्र में अधिक होता है। अन्तःकरण के क्षेत्र में प्रारब्ध का प्रभाव कम होता है। इसलिये अन्तःकरण के क्षेत्र में पुरुषार्थ का विशेष प्रयोग करना मनुष्य का दायित्व है। मनुष्य को अधिक पुरुषार्थ का प्रयोग आन्तरिक चेतना के उत्थान में, दिव्य गुणों की प्राप्ति में करना चाहिये। परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि मनुष्य बाहर के क्षेत्र में, अर्थ और काम के क्षेत्र में

अपने पुरुषार्थ का प्रयोग नहीं करे। परन्तु उस क्षेत्र में वह मोक्ष पुरुषार्थ को गौण बना कर यदि अर्थ व काम को मुख्य रखेगा तो वह शास्त्र के विरुद्ध प्रयत्न हो जायेगा। इस प्रकार से प्रारब्ध को स्वीकार करते हुए मनुष्य ऐसा पुरुषार्थ करे कि वह निरन्तर अपने मुख्य लक्ष्य—परमात्म-प्राप्ति की ओर बढ़ता ही जाये। इसलिये प्रार्थनापूर्वक पुरुषार्थ करना भारतीय संस्कृति का निर्देश है। शास्त्र भाग्यवादी बनने के लिये कभी नहीं कहता। भाग्यवादी बनना भारतीय संस्कृति के नितान्त विरुद्ध है। इसलिये परम-पुरुषार्थ की तरफ निरन्तर बढ़ते हुये मनुष्य को अपने अन्दर की कामना को पकाने का आदेश भी शास्त्र देता है। कामना पूर्ति के साथ-साथ शास्त्र पंच-विध ऋण (देव-ऋण, ऋषि-ऋण, पितृ-ऋण, मनुष्य-ऋण, भूत-ऋण) चुकाने का विशेष आग्रह करता है। इस ऋण को उतारे बिना चित्त-शुद्धि नहीं आएगी, षड्-विकार क्षीण नहीं होंगे, चित्त में दैवी-सम्पत्ति प्रकट नहीं होगी, बुद्धि में परमात्म-प्राप्ति की तीव्र इच्छा उत्पन्न नहीं होगी। मनुष्य-योनि को परमेश्वर ने दिया ही इसलिये है कि जीव 'परमेश्वर' को प्राप्त कर (मैं ब्रह्म हूँ—यह अनुभव करके) मुक्त हो जाये।

काम्य कर्मों से ऊपर उठ जाने के पश्चात् मनुष्य जब कर्म-योग करने में जुट जाता है तो धीरे-धीरे उसमें ईश्वर के प्रति भक्ति भी बढ़ती जाती है। भक्ति के एक उच्च स्तर में पहुंचने पर वह अनुभव करने लग जाता है कि मैं तो एक निमित्त मात्र हूँ, कर्म करने वाले तो परमेश्वर ही हैं। इस स्तर में प्रारब्ध और पुरुषार्थ का द्वन्द्व समाप्त हो जाता है। क्योंकि साधक प्रारब्ध से प्राप्त होने वाली हर परिस्थिति को ईश्वर-प्रसाद रूप से ही स्वीकारता है, उसमें अपना कल्याण देखता है।

परम पूज्य गुरुदेव स्वामी संवित् सोमगिरिजी की
पुस्तक 'जीवन रहस्य' से साभार

विज्ञान और प्रविधि के विकास के साथ हो सकता है कि बीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण तक सारा संसार अमरीका के प्रभाव क्षेत्र में आ जाए। किन्तु इक्कीसवीं शती में, जब विज्ञान का स्थान अध्यात्म लेगा तथा तकनीक का स्थान धर्म लेगा तब भारत ही सारी मानव-जाति का आध्यात्मिक गुरु होगा।

—ब्रिटिश इतिहासकार डॉ. अरनाल्ड टोयनबी